



आगम हिंदी-संस्करण ग्रन्थमाला

ग्रन्थ १



भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में

**दशवैकालिक  
और  
उत्तराध्ययन**

भाषना - प्रभुल  
भाचार्य तुलसी

महादश-अधुवाक  
मुनि नयमल

सहयोगी  
मुनि भीठालाल  
मुनि कुतहराम

**जैन विश्व भारती**  
साङ्गू (राजस्थान)

प्रकाशक :

जैन विश्व भारती

साहू (राजस्थान)

प्रबन्ध-सम्पादक :

श्रीचन्द्र रामपुरिया

निदेशक

आगम और साहित्य प्रकाशन

(ज० वि० भा०)

प्रकाशन तिथि :

विक्रम संवत् २०३१

कार्तिक कृष्ण १३

(२५००वाँ निर्वाण-दिवस)

मूल्य : पन्द्रह रुपये

मुद्रक :

उद्योगशाला प्रेस,

किंगसवे, दिल्ली-६

## प्रकाशकीय

उन स्वेंत्राम्बर संपादकी महात्म्या (बलवत्ता) द्वारा आत्म-प्रकाशन का काम आरम्भ हुआ, तभी से वेरा यह सुझाव रहा कि अंग्रेजी के 'मनत्र बुक्स ऑफ़ दी ईस्ट मीगिज' की तरह आत्म ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद मान की एक ग्रन्थ-माला आरम्भ की जाय। इस है कि इस ग्रन्थ के साथ उक्त काम का 'जैन चिन्म सारथी' संस्थान के द्वारा भूषण हो रहा है।

दशवैज्ञानिक और उत्तराध्ययन—य दोनों आत्म-ग्रन्थ जैन आधार-गोचर और साधनिक विचारधारा का अलग प्रतिनिधित्व करने हैं और इस दृष्टि से बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। दशवैज्ञानिक में अहिंसा, श्रम, अवीर्य, ब्रह्मचर्य और अशरित्य आदि धर्म-सत्तों और आधार विचार का विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचन है तो उत्तराध्ययन में ब्रह्मपुरुष कथा-प्रवृत्ति के द्वारा धार्मिक जीवन का अति प्रभावशाली चित्रावन तथा सार्विक विचारों का हृदयग्राही सग्रह है।

उक्त दोनों आत्मग्रं में मगवान् महावीर की भाषा का वर्णन सग्रह है। इस दृष्टि से मगवान् महावीर की २३ वीं निर्माण सताब्दी के पावन अवसर पर उक्त आत्मग्रं का यह हिन्दी अनुवाद पाठकों के लिए अत्यन्त उपायोग्य होगा। इससे मगवान् महावीर के चिन्तन, विचार, दर्शन और धर्म-आग्नि आदि का सम्यक् परिचय पाठकों का उपलब्ध होगा।

दशवैज्ञानिक एवं उत्तराध्ययन इन दोनों आत्मग्रं के मूलपाठ संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद और विस्तृत टिप्पणियों से संयुक्त अलग अलग उत्तराध्ययन जैन स्वेंत्राम्बर संपादकी महात्म्या (बलवत्ता) द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। दशवैज्ञानिक का दूसरा उत्तराध्ययन 'जैन चिन्म सारथी' द्वारा प्रकाशित हो रहा है। इस हिन्दी अनुवाद के बाद उन ग्रन्थों का सम्पादन पाठकों को और भी अधिक आनन्द की रसानुभूति प्रदान करेगा।

हमें आशा है कि हमारे इस प्रकाशन का सबब स्थापन होगा।

४६८४, जम्हारी रोड  
२१, दक्षिणमन  
दिल्ली ६

श्रीधर रामपुरिया  
विदेशक  
आत्म और साहित्य प्रकाशन



## सम्पादकीय

ध्यायन-अभ्यास का कार्य बीच-बीच में चल रहा है। आचार्यजी तुलसी के मन में ध्यायन-अभ्यास का एक मकसद उठा। कुछ ही दिनों में उस की अभ्यासिनि शुरू हो गई। यह धात्र एक वाचना का रूप में रही है।

जन परम्परा में वाचना का इतिहास बहुत ही प्राचीन है। आज से दस हजार वर्ष पूर्व तक ध्यायन की चार वाचनाएँ हो चुकी हैं। एषादिमणी के बाद कोई मुनियोजित ध्यायन-वाचना नहीं हुई। उनके वाचना-नाम में जो आगम लिख गये थे, वे इस सम्बन्धी सचि स बहुत ही अध्यायित हो गये हैं। उनकी पुनर्प्राप्ति के लिए फिर एक मुनियोजित सामूहिक वाचना का प्रयत्न भी किया गया था परन्तु वह पूरा नहीं हो सका। अन्ततः इस इमी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि हमारी वाचना अनुसन्धानपुरा, गवेषणापुरा तत्त्व दृष्टि सचिबिन तथा सारिसम होगी तो वह अपने-आप सामूहिक हो जायेगी। इमी निष्कर्ष के आधार पर हमारा यह ध्यायन-वाचना का काम प्रारम्भ हुआ है।

हमारी इस वाचना के प्रमुख आचार्यजी तुलसी हैं। वाचना का प्रथम अध्यायन है। हमारी इस प्रवृत्ति में अध्यायन वम के अनेक प्रग हैं—वाट का अनुसन्धान, वाचान्तरण, सयिधायन अध्यायन, अनुनामक अध्यायन आदि-आदि। इन सभी प्रवृत्तियों में आचार्यजी का हम सचिबिन योग, माय-ज्ञान और प्रोत्साहन प्राप्त है। यही हमारा इस सुन्दर वाच में प्रबुध ज्ञान का प्रवि-बीज है।

आचार्यजी हमारी हर प्रवृत्ति में प्रबल-नीति हैं। उनसे प्रबल प्राप्त कर हम सचिबिन में भी अपना पथ खोज लेते हैं। उनके प्रति आभार प्रकट करना सम्भव में पड़े है।

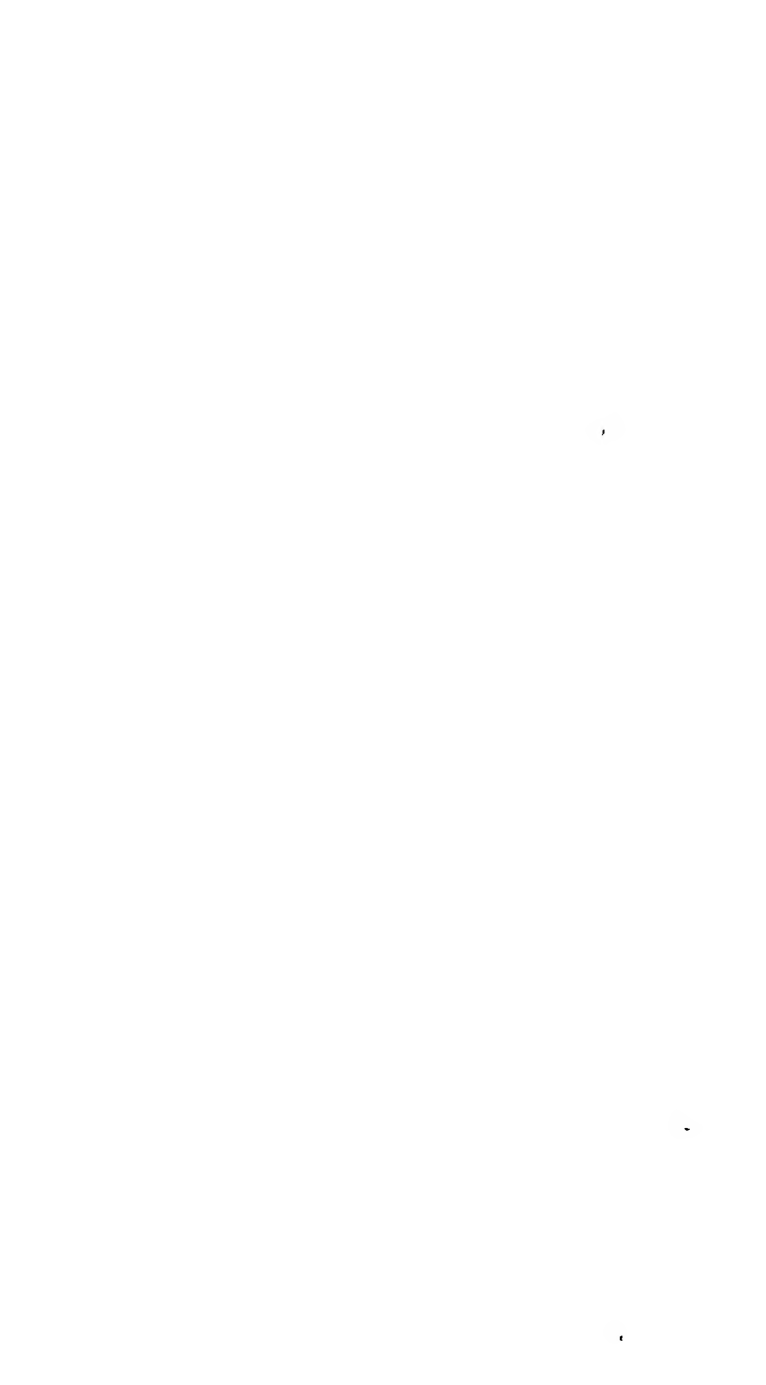
मुनि मोठावातजी, जो वनमान में गणा-मुक्त वाचना कर रहे हैं, इनके अनुवाच स महसूसी रहे हैं।

अनुवाच, सम्पादन और प्रविशोधन के वाच में मुनि तुलसीदासजी का अनवरत योग और वम रहा है।

‘एतर्कान्तिक’ और ‘उत्तराध्यायन’ ये दोनों मूल सूत्र हैं। जन-परम्परा में इनका अध्यायन, वाचना और मनन बहुतना स होता है। भगवान् महावीर की पञ्चमयी निवाण ज्ञानाणी के अवसर पर इनका अध्यायन और मनन सचिबिन वाचा में हो, यह सचेतिन है। इस अवस्था को ध्यान में रखकर केवल अनुवाच की अनुमाना पाठकों के नामने प्रस्तुत की जा रही है। इससे हिन्दी-भाषी पाठक बहुत सामान्यित होंगे।

भगवान् महावीर की सचिबिनहिनाय अनवाचा (प्राकृत) में प्रवृत्त वाणी की वनमान अनवाचा (हिन्दी) में अनुवाचावर अभ्युन करते हुए हमें हय का अनुभव हो रहा है।





## स्व कथ्य

जैन आगमा में सांख्यिक और उत्तराख्यपन का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। श्वेताम्बर और श्वेताम्बर—दोनों परम्पराओं के आचार्यों ने इनका बार-बार उल्लेख किया है। श्वेताम्बर-साहित्य में अणु-वाद्य के बीजप्रकार बतलाया गए हैं, उनमें सातवीं दशवैकालिक और आठवीं उत्तराख्यपन है।

श्वेताम्बर-साहित्य में अणु वाद्य ध्रुव व दो मुख्य विभाग हैं—

(१) कालिक और (२) उत्तराख्यपन। कालिक ध्रुव का गणना में पहला स्थान उत्तराख्यपन का और उत्तराख्यपन ध्रुव की गणना में पहला स्थान दशवैकालिक का है।

ये दोनों 'मूल' ध्रुव हैं। इन्हें मूल ध्रुव मानने के दो कारण हैं—

१ ये दोनों ध्रुवों की जीवन चर्या के प्रारम्भ में मूलध्रुव सहायक बनते हैं तथा आगमा का अध्ययन इन्हीं के पठन से प्रारम्भ होता है।

२ ध्रुवों के मूल ध्रुवों—महावज्र, समिति, ध्रुव आदि का इनमें निरूपण है।

'मूल-ध्रुव' धन की स्थापना विक्रम की १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई थी। इससे ध्रुव इस विभाग की चर्चा प्राप्त नहीं होती।

### दशवैकालिक

इस ध्रुव में दस अध्ययन हैं और इसकी रचना विशाल-वेद्या में हुई थी, इसलिए इसका नाम दस-वैकालिक=दशवैकालिक रखा गया। यह निर्युद्ध ध्रुव है, स्वतंत्र नहीं। इसके चर्चा अध्ययन ध्रुवसेवसी थे। उन्होंने चम्पा नगरी में और संवत् ७ के आगमान इसका निर्युद्ध अपने ध्रुव सिद्ध ध्रुव के लिए किया।

इसमें दस अध्ययन और दो धृतिधर्मे हैं। इनमें २१४ धापाएँ और ३१ ध्रुव हैं। पूरा विवरण इस प्रकार है —

अध्ययन	श्लोक सूत्र	विषय
१. द्रुमपुष्पिका	५	धर्म-प्रशमा और मायुक्तो-वृत्ति ।
२. श्रामण्यपूर्वक	११	मंथन में धृति और उमकी माधना ।
३. दुर्लभाचार-कथा	१५	आचार और अनाचार का विवेक ।
४. धर्म-प्रजप्ति या पद्मार्जवनिता	२८ २३	जीव-संयम तथा आत्म-मंथन का विचार ।
५. पिण्डपणा	१५०	गवेषणा, ग्रहणपणा और भोगपणा की श्रुति ।
६. महाचार	६८	महाचार का निरूपण ।
७. वाच्यश्रुति	५७	भाषा-विवेक ।
८. आचार-प्रणिधि	६३	आचार का प्रणिधान ।
९. विनय समाधि	६२ ७	विनय का निरूपण ।
१०. नभिधु	२१	भिधु के स्वरूप का वर्णन

## चूलिका

१. रतिमानया	१८ १	संयम में अस्थिर होने पर पुनः स्थिरीकरण का उपदेश ।
२. विविक्तचर्या	१६	विविक्त-चर्या का उपदेश ।

## उत्तराध्ययन

इसमें दो शब्द हैं—‘उत्तर’ और ‘अध्ययन’ । निर्युक्तिकार के अनुसार ये अध्ययन आचारांग के उत्तरकाल में पढ़े जाते थे इसलिए इन्हें ‘उत्तर अध्ययन’ कहा गया । श्रुतकेवली शाय्यभक्त के पश्चात् ये अध्ययन दशवर्कालिक के उत्तरकाल में पढ़े जाने लगे, इसलिए ये ‘उत्तर अध्ययन’ ही बने रहे ।

## रचना-काल और कर्त्तृत्व

निर्युक्तिकार के अनुसार उत्तराध्ययन किसी एक कर्त्ता की कृति नहीं है ।

इस सूत्र के अध्ययन कब और किमके द्वारा रचे गए, इसकी प्रामाणिक जानकारी के लिए माधन-सामग्री सुलभ नहीं है ।

उत्तराध्ययन की विषय-वस्तु के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते

हैं कि उत्तराख्ययन के अध्ययन ई० पू० ६०० मे ईसवी मन् ४००, लगभग हजार वर्ष की धार्मिक व दार्शनिक चारा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

कई विद्वान ऐसा मानते हैं कि उत्तराख्ययन के पिछले अग्ररह अध्ययन प्राचीन हैं और उत्तरवर्ती अग्ररह अध्ययन अर्वाचीन किन्तु इन मन की पुष्टि के लिए कोई पुष्ट साक्ष्य प्राप्त नहीं है। यह मंजूर है कि कई अध्ययन बहुत प्राचीन हैं और कई अर्वाचीन।

धीरे निर्वाण की एक महत्वावधि के साथ वैज्जिगमी समाधायन ने प्राचीन और अर्वाचीन अध्ययनों का संकलन कर उन एकत्र किया।

उत्तराख्ययन समकालीनता में परिवर्तित होता है। इनमे यह अनुमान लगता है कि इसके प्राचीन नस्तरण का मुख्य भाग दया-भाव का।

वर्तमान में प्राप्त उत्तराख्ययन में अनेक अनुयायियों का समावेश है। इसमें १४ अध्ययन समकालीन (७, ८, ९, १२, १३, १४, १८ से २३, २४ से २७) छह अध्ययन उपदेशात्मक (१, २, ४, ५, ६ और १०) ती अध्ययन आचार्यात्मक (२, ११, १२, १६, १७, २४, -६, २३ और ३२) तथा सात अध्ययन (२८, २९, ३०, ३१, ३३, ३४, ३६) वैज्ञानिक हैं।

इन सभी से यह कल्पित होता है कि यह सत्य-मूल है, एक-मूलक नहीं।

## आकार और विषय वस्तु

इस सूच के ३६ अध्ययनों में १६१८ श्लोक तथा ७९ सूत्र हैं। प्रायः अध्ययन का विषय निम्न निम्न है। उनका विवरण इस प्रकार है—

अध्ययन	श्लोक सूत्र	विषय
१ विनय-भुग	४८	विनय का विधान, प्रकार और महत्व।
२ परीपह प्रविमक्ति	४६	३ समय वर्षा म हाने वाले परीपहों का प्रकरण।
३ धनुरगीय	२०	चार दुःख भवा का आहारा।
४ अनसूयन	११	जीवन के प्रति मंजूर दृष्टिकोण का प्रतिपादन।
५ भयान-मरणीय	१२	मरण के प्रकार और स्वरूप विधान।

अध्ययन	श्लोक	सूत्र	विषय
६. धुल्लङ्क निग्रन्धीय	१७		ग्रन्थ-त्याग का निक्षिप्त निरूपण ।
७. उरन्नीय	३०		उरन्त्र, काञ्चिणी, आम्रफन, व्यवहार और नागर—पाँच उदाहरण ।
८. कापिलीय	२०		मंसार की अगारता और ग्रन्थ-त्याग ।
९. नमि प्रव्रज्या	६२		इन्द्र और नमि राजपि का संवाद ।
१०. द्रुमपत्रक	३७		जीवन की अस्थिरता और आत्म-बोध ।
११. बहृश्रुत-भूजा	३२		बहृश्रुत व्यक्ति का महत्त्व-स्थापन ।
१२. हृत्किंशीय	४७		जाति की अतीतचरता का मन्त्रोप ।
१३. चित्र-मम्भूति	३५		चित्र और मम्भूति का मन्वाद ।
१४. उपुकारीय	५३		ब्राह्मण और श्रमण मम्भूति का भेद-दर्शन ।
१५. सभिधुक	१६		भिधु के लक्षणों का निरूपण ।
१६. ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान	१७	१३	ब्रह्मचर्य के दस समाधि-स्थानों का वर्णन ।
१७. पाप-श्रमणीय	२१		पाप-श्रमण के स्वरूप का निरूपण ।
१८. मंजरीय	५३		जैन-धामन की परम्परा का संकलन ।
१९. शृगापुत्रीय	६८		श्रमण-चर्या का मागोपांग दिग्दर्शन ।
२०. मटानिग्रन्धीय	६०		अनाधना और मनाधता ।
२१. समुद्रपालीय	२४		बध्य चोर के दर्शन से मन्त्रोप ।
२२. रथनेमीय	४६		पुनस्त्यान ।
२३. केमि-गीतमीय	८६		केमि और गीतम का संवाद ।
२४. प्रवचन-माता	२७		पाँच नमिति तथा तीन गुप्तियों का निरूपण ।
२५. यजीय	४३		जयघोष और विजयघोष का मन्वाद ।
२६. सामाचारी	५२		संघीय जीवन की पद्धति ।
२७. गलुकीय	१७		अविनीन की उदृष्टता का चित्रण ।
२८. मोल-मार्ग-गति	३६		मोल के मार्गों का निरूपण ।
२९. सम्यक्त्व-पराक्रम		७३	माधना-मार्ग का निरूपण ।
३०. तपो-मार्ग-गति	३७		तपो-मार्ग के प्रकारों का निरूपण ।
३१. चरण-विधि	२१		चरण-विधि का निरूपण ।

	अध्ययन	श्लोक सूत्र	विषय
३२	प्रमाद-स्थान	१११	प्रमाद का कारण और उनका निवारण
३३	बन्ध-प्रकृति	२३	बन्धों की प्रकृति का निरूपण ।
३४	मदया-अध्ययन	६१	कम-नैष्ठिका का विस्तार ।
३५	मन्यार मार्ग		मन्यार का स्फुट आचार ।
	मति	२१	
३६	आवाजीय-विमर्श	२६०	जीव और मजीव के विभागों का निरूपण ।

दशवर्षात्मिक और उत्तराध्ययन-मन्त्रों की विधायक आनकारी के लिए निम्न ग्रन्थ प्रस्तुत है—

- १ दशवर्षात्मिक तत्त्व उत्तराध्ययन की श्रुतिका ।
- २ दशवर्षात्मिक एवं समीक्षात्मक अध्ययन ।
- ३ उत्तराध्ययन एवं समीक्षात्मक अध्ययन ।

प्रस्तुत ग्रन्थ दशवर्षात्मिक और उत्तराध्ययन का द्वितीय सम्पन्न है । जो व्यक्ति केवल द्विधा के माध्यम से आपना या अनुशीलन करना चाहता है, उसके लिए यह नक्कल बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा इसी आशा के साथ ।

आचार्य तुलसी

अनुसूत विहार

२१० राउट ७६ मू.

गई दिल्ली



## विषय-वस्तु

### वैश्वकालिक

पृष्ठ

१	द्रुमपुष्पिका	१
२	जाम्बवतपूर्वक	४
३	शुक्लिवाचर-वचा	६
४	यम प्रज्ञप्ति वा वदन्तीवर्णिका	८
५	विष्णुवचा	१७
६	महाचार	३२
७	वाचस्पति	३६
८	जाचार-प्रणिधि	४५
९	विमल-समाधि	५१
१०	सविभु	६१

### सूक्तिका

१	रविवाचका	१६
२	विश्ववत्सवती	६५

### उत्तराध्ययन

१	विमल श्रुत	७२
२	परीषद्-प्रणिधि	७७
३	चतुर्वीथ	८१
४	अवस्तुत	८९
५	अवाय मरणीय	८८
६	सुस्तक निर्गन्धीय	९५
७	उरग्रीव	९४
८	वापिलीय	९७
९	नमि प्रवृत्त्या	१००
१०	शुभरक	१०६





## ‘पहला अध्याय

### द्रुमपुष्पिका

१. यमें उत्तम मयल है। अग्नि, गरम और सब उनके लक्षण हैं।  
विमला मन मग धम में रमा रहता है, उमे देव भी नमस्कार करत है।

२. जिस प्रकार धमर द्रुम-पुष्पा के चाउ-बोउ रम पीता है, किसी भी  
पुन की ज्ञान नहीं रजता और जाने की भी मृत्त कर लेता है—

३. उमी पौर लोक में जा मुन (अरिहरी) धमल गाधु है के धान  
भारत—गंगा द्वारा दिये जानमान निर्दोष आहार—ही लपका में रत रहत है  
जैसे—धमर पुष्पा म।

४. हम इस तरह के हैं—विना—जान करेने कि किसी जीव का उ-  
हान न ह। क्योंकि धमक धवावन (महम मर में बना) आहार जते हैं,  
जैसे—धमर पुष्पा में रम।

५. जा कुछ पुन मपुनर के समान भविष्य है—किसी वन पर आधिन  
नहीं, माना पिह म रत है, और जा धाम है, व अपने इन्ही पुन में साधु  
बहुताते है।

—ऐसा है बरता है।

## दूसरा अध्ययन

### श्रामण्यपूर्वक

१. वह कैसे श्रामण्य का पालन करेगा जो काम (विषय-भाग) का निवारण नहीं करता, जो मज्जन के बन्धन होकर मन-मग्न पर विषाद-ग्रस्त होना है ?

२. जो परयत्न (या अमारप्रस्थ) होने के कारण रम्भ, गन्ध, अलंकार, स्त्री और गयन-भागनों का उद्वेग नहीं करता वह त्यागी नहीं कहलाता ।

३. त्यागी वही कहलाता है जो काम (रमणीय) और प्रिय भाग उपलब्ध होने पर भी उनसे भी और से पीछे फेर लेता है और त्यागोन्मत्ता पूर्वक भागों का त्याग करता है ।

४. समदृष्टि पूर्वक विचारने हुए भी यदि कदाचित् मन (मयम मे) बाहर निकल जाय तो यह विचार कर कि 'वह मेरी नहीं है और न मैं ही उमता हूँ' मुमुक्षु उनके प्रति होने वाले विषय-राम को दूर करे ।

५. अपने को तपा । मुकुमारता का त्याग कर । काम (विषय-भागना) का अतिग्रहण कर । इसमें दुःख अपने-आप अतिश्रान्त होगा । द्वेष-भाव को छिन्न कर । राग-भाव को दूर कर । ऐसा करने में तू मन्त्रा (इहलोक और परलोक) में मृगी होगा ।

६. अगंधन कुल में उत्पन्न सर्प जन्मिन, विदाराल, धूमकेतू—अग्नि—में प्रवेश कर जाते हैं परन्तु (जीने के लिए) वमन किये हुए दिग्ग को चापम पीने की इच्छा नहीं करते ।

७. हे यशःकामिन् ! धिक्कार है तुझे । जो तू क्षणभंगुर जीवन के लिए वसी हुई यस्तु को पीने की इच्छा करता है । इसमें तो तेरा मग्ना श्रेय है ।

८. मैं भोजराज की पुत्री (राजीमती) हूँ और तू अधकृष्णि का पुत्र (रघनेमि) है । हम कुल में गन्धन सर्प की तरह न हों । तू स्थिर मन होकर संयम का पालन कर ।

९. यदि तू मित्रियों को देय उनके प्रति इस प्रकार राग-भाव करेगा तो वायु से आहत हृद (जलीय वनस्पति) की तरह अस्थितात्मा हो जायेगा ।

१० संविनी (राजीवती) के दम कुशाग्रिष्ठ मयनों को मुगकट, रपनेमि चर्म में बंधे ही स्थिर हो गये, जैसे मयुध ने हाथी स्थिर होना है ।

११ सम्पुट, पण्डित और अविपक्षय पुट्ट देना ही करते हैं । वे भोगा से बंधे ही दूर हो जाते हैं, जैसा कि पुस्तोत्तम रपनेमि हुए ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## तीसरा अध्ययन

### क्षुल्लिकाचार-कथा

१. जो समय मे मुस्थितात्मा है, विप्रमुक्त हैं, धाता हैं,—उन निर्ग्रन्थ महर्षियो के लिए ये (निम्नलिखित) अनाचीर्ण हैं (अग्राह्य हैं, अमेव्य हैं अकरणीय) हैं ।

२. औद्देशिक—निर्ग्रन्थ के निमित्त बनाया गया, क्रीतकृत—निर्ग्रन्थ के निमित्त खरीदा गया, नित्याग्र—आदर-पूर्वक निमन्त्रित कर प्रतिदिन दिया जानेवाला, अभिहृत—निर्ग्रन्थ के निमित्त दूर से सम्मुख लाया गया आहार आदि लेना । रात्रि-भक्त—रात्रि भोजन करना । स्नान—नहाना । गन्ध—गंध सूंघना या गन्ध द्रव्य का विलेपन करना । माल्य—माला पहनना । वीजन—पखा झलना ।

३. सन्निधि—खाद्य वस्तु का संग्रह करना—रात-वासी रखना । गृहि-अमत्र—गृहस्थ के पात्र मे भोजन करना । राज-पिण्ड—मूर्धाभिषिक्त राजा के घर से भिक्षा लेना । किमिच्छक—कौन क्या चाहता है ? यो पूछकर दिया जाने वाला राजकीय भोजन आदि लेना । सवाधन—अंग-मर्दन करना । दन्त-प्रधावन—दांत पखारना । सप्रच्छन्न—गृहस्थ को कुशल पूछना (सप्रोच्छन्न—शरीर के अवयवों को पोछना) । देह-प्रलोकन—दर्पण आदि मे शरीर देखना ।

४. अष्टापद—शतरज खेलना । नालिका—नलिका से पासा डाल कर जुआ खेलना । छत्र—विशेष प्रयोजन के बिना छत्र धारण करना । चैकित्स्य—रोग का प्रतिकार करना, चिकित्सा करना । उपानत—पैरो में जूते पहनना । ज्योति-समारम्भ—अग्नि जलाना ।

५. शय्यातरपिण्ड—स्थान-दाता के घर से भिक्षा लेना । आसंदी—भञ्जिका, पर्यंक—पलंग पर बैठना । गृहान्तर-निषद्या—भिक्षा करते समय गृहस्थ के घर मे बैठना । गात्र-उद्वर्तन—उबटन करना ।

६. गृहि-वैयापृत्य—गृहस्थ को भोजन का सविभाग देना, गृहस्थ की सेवा करना । आजीव-वृत्तिता—जाति, कुल, गण, शिल्प और कर्म का अवलम्बन ले भिक्षा प्राप्त करना । तप्तानिर्द्धृत-गोजित्व—अर्द्ध-पक्व सजीव वस्तु का उप-

७ अनिहंत शुक्ल—सजीव मूली, अनिहंत श्वेतर—सजीव मूल

७ अनिहंत मूल्य—सजीव मूली, अनिहंत भूषण—सजीव धरक,  
अनिहंत इनुसण—सजीव इनु-मण भविस्यद—सजीव हं, भविस्यमूल—  
सजीव मूल, भाग्य फल—अपन फल और भाग्य बीज—अपन बीज मेना  
व लाना ।  
८ भाग्य जीवन—अपन जीवन—

[illegible]

८. धूल-नेत्र—धूल-भाव की महिला रसना । धवन—राग की समावना  
 है धवन के लिए, रूप रस आदि का स्वाद रखने के लिए धवन करना ।  
 बलिधन—अपान-भाव से लेक आदि भजना और विरोध करना । अजन्य—  
 आना के अजन्य आशय । रसधन—गोरी की रसोतल व निसला । नाय-अर्थात्—  
 शरीर के रस-वर्धन करना । विभूषण—शरीर की अलङ्कृत करना ।  
 १०. जो तबल में सीन और वायु की तरह मुक्त विहारी गृहवि निवस्य है ।  
 उनके लिए व सब अनाशील है ।  
 ११. पाँच आधरों का निरोध करनेवाले ।  
 बार के पीलों के प्रति ।

१० जो संभव में लीन और वायु की तरह मुक्त बिहारी महिषि निराल है ।  
११ पाँच आसनों का निरीक्ष करके

११ पाँच आसनों का निरोध करनेवाले, तीन पुस्तिका स पुस्त, छह  
प्रकार के पीरों के प्रति संवत्, पाँचा इन्द्रियों का निरोध करने वाले, बीर  
नित्य अनुभवी होते हैं।  
१२ पुस्तकाहित नित्य तीन में साधना  
करन एवम् है। तीन में साधना

१० पुत्रमाहित निष्काम प्रीत्य में सुख की आशापना भ्रम है। हमारा न सुख  
बल रहन है, और बर्ष में प्रतिवर्तीन होते हैं—एक स्थान न रहने हैं।  
११ परीपहकरी रिपुओं का बल करने वाले, बल करने हैं।  
१२ प्रकृति करने वाले) निवर्तित्य प्रकृति करने वाले, बल करने हैं।

१३ परीपहकपी रिपुज का वजन करने वाले, दुष्ट-मोह (अज्ञान की मशकिल करने वाले) मित्राश्रय महर्षि सर्व दुष्टों व पापों के लिए पराक्रम करते हैं।

१४ दुष्टों की करते हुए और दुष्टों के साथ रहने वाले हैं।

१४. दुपहर की करते हुए और दुपहर की गहरी करते हुए सब निर्वाचनों में मेरी दखलाने जाती है और कई औरों (कम रहित) हो सिद्ध होते हैं।

१५. स्व और घर के नाश निर्वाचन संयम और सब प्राण्य...

१६. वा लयकर, निदि-भाव को प्राण्य कर...

१५. स्व बीर घर के नाश निर्वन्धन संघन बीर का साथ-पूर्व-संघित कर्षण का दायवर, निहि-भाव को प्राप्त कर परिनिष्ठ—मुक्त होते हैं।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१ काम, सुषा, जय आदि में भीड़ित ।  
२ एक प्रकार का सन्निध —

२ एक प्रकार का सामाजिक मजक ।

## चीया अध्ययन

### पट्जीवनिका

१. आयुष्मन् ! मैंने सुना है उन भगवान् ने इस प्रकार कहा—निर्ग्रन्थ प्रवचन में निदधय ही पट्जीवनिका नामक अध्ययन कादम्य-गोत्री श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रवेदित, गु-आम्यात और गु-प्रज्ञप्ति है। इस धर्म-प्रज्ञप्ति अध्ययन का पठन मेरे लिये श्रेय है।

२. यह पट्जीवनिका नामक अध्ययन कीन-मा है जो कादम्य-गोत्री श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रवेदित, गु-आम्यात और गु-प्रज्ञप्ति है, जिस धर्म-प्रज्ञप्ति अध्ययन का पठन मेरे लिए श्रेय है ?

३. यह पट्जीवनिका नामक अध्ययन जो कादम्य-गोत्री श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रवेदित, गु-आम्यात और गु-प्रज्ञप्ति है, जिस धर्म-प्रज्ञप्ति अध्ययन का पठन मेरे लिए श्रेय है—यह है जैसे—पृथ्वाकायिक, अपृथ्वायिक, तेजस्-कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और मनकायिक।

४. दशत्र-परिणति में पूर्वं पृथ्वा चित्तवान् (मजीव) कहा गया है। यह अनेक जीव और पृथक् सत्त्वों (प्रत्येक जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व) वाला है।

५. दशत्र-परिणति से पूर्वं अप् चित्तवान् (मजीव) कहा गया है। यह अनेक जीव और पृथक् सत्त्वों (प्रत्येक जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व) वाला है।

६. दशत्र-परिणति में पूर्वं तेजस् चित्तवान् (मजीव) कहा गया है। यह अनेक जीव और पृथक् सत्त्वों (प्रत्येक जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व) वाला है।

७. दशत्र-परिणति में पूर्वं वायु चित्तवान् (मजीव) कहा गया है। यह अनेक जीव और पृथक् सत्त्वों (प्रत्येक जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व) वाला है।

८. दशत्र-परिणति में पूर्वं वनस्पतिचित्तवती (मजीव) कहा गई है। यह अनेक जीव और पृथक् सत्त्वों (प्रत्येक जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व) वाला है। उसके प्रकार ये हैं—अन्न-बीज, मूल-बीज, पर्व-बीज, स्कन्ध-बीज, बीज-रुह, सम्पूच्छिम, तृण और लता।

दशत्र-परिणति से पूर्वं बीजपर्यन्त (मूल में लेकर बीज तक) वनस्पति-कायिक चित्तवान् कहे गए हैं। वे अनेक जीव और पृथक् सत्त्वों (प्रत्येक जीव

के स्वतन्त्र आंगित्व) जाने हैं ।

६ और ये जो अनेक बहुत कम प्राणी हैं जैसे—अण्डज,<sup>१</sup> वातज<sup>२</sup> जरायुज,<sup>३</sup> रक्तज,<sup>४</sup> संस्वेदज<sup>५</sup> सम्प्लुच्छनज,<sup>६</sup> उद्भिज<sup>७</sup> और औपचार्मिक<sup>८</sup>—ये छठे जीव-निहाय में आते हैं ।

जिन किन्हीं प्राणिमा में सामने जाना, पीछे हटना, मड़ुबिउ होना, झेलना, घबड़ा करना, इधर-उधर जाना, घबराता होना, सीढ़ना—य क्रियाएँ हैं और जो आगति एवं गति के विजाता हैं, वे यज्ञ हैं ।

जो कील चलन, बुद्धि, निरीक्षित, सब ही इन्द्रिय जाने जीव, सब तीन इन्द्रिय वाले जीव, नव चार इन्द्रिय जाने जीव, नव पाँच इन्द्रिय जाने जीव, नव विषय-आनिष्ट नव नैरक्षि, सब समुप्य, नव देव और नव प्राणी कुछ के इच्छुप हैं—

यह छठा जीवनिहाय प्रसङ्ग बटनाता है ।

१० इन छह जीव निहायों के जिन स्वयं बह-अमरम्य<sup>९</sup> नहीं करना चाहिए, दुपदा न बह-अमरम्य नहीं करना चाहिए और बह-अमरम्य करने वाले का अनुमान नहीं करना चाहिए, वायव्यजीवन के लिए तीन करण तीन पाग न—मन है, बचन है वाया न— न बर्नेवा न कराऊँवा और करने जाने का अनुमोदन भी नहीं बर्नेवा ।

१ अण्डज—अण्डों में उत्पन्न होने वाले जकुर आदि ।

२ वातज—जो गिन्नु रूप में उत्पन्न होते हैं । जिन पर कोई आचरण निपटा हुआ नहीं होता—हाथी आदि ।

३ जरायुज—अण्ड के समय जो जरायु-वेष्टित रक्ता में उत्पन्न होते हैं—गाय जल, समुप्य आदि ।

४ रक्तज—छाछ, दही आदि रक्तों में उत्पन्न होने वाले जीव ।

५ संस्वेदज—धमीने में उत्पन्न होने वाले जीव ।

६ सम्प्लुच्छनज—बाहरी कपटावरण के सपोय से उत्पन्न होने वाले घातन, चींटी आदि । यह मातृ पित्रोय प्रजनन है ।

७ उद्भिज—पृथ्वी की मेढ कर उत्पन्न होने वाले वनस्पति, लकड़ी आदि ।

८ औपचार्मिक—अवस्थामा उत्पन्न होने वाले देवता और नारकीय जीव ।

९ बह का अर्थ है—मन, बचन और वाया की कुछ-जगह या परिताप जनक प्रभुति और समारम्य का अर्थ है—करना ।



मते ! मैं अनीत में किसे दण्ड-ममाख्य ने निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करना हूँ, गद्दी करना हूँ और आत्मा का द्युत्थन करना हूँ ।

११. भवे ! पहले महाग्रन्थ में प्राणानिपान के विरम्य होता है ।

मते ! मैं मर्त्य प्राणानिपान का प्रत्याग्यान करता हूँ । मृदम या मृदुन, प्रम या स्वायत्त या भी प्राणी हूँ उनके प्राणी का अनिपान में स्वरं नहीं करूँगा, दूसरों ने नहीं कराऊँगा और अनिपान करने वालों का अनुमोदन भी नहीं करूँगा, यावज्जीवन के लिए, तीन कारण तीन योग में—मन में, वचन में, कथा में—न करूँगा, न कराऊँगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा ।

मते ! मैं अनीत में किसे प्राणानिपान ने निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करना हूँ, गद्दी करना हूँ और आत्मा का द्युत्थन करना हूँ ।

मते ! मैं पहले महाग्रन्थ में उपस्थित हुआ हूँ । इसमें मर्त्य प्राणानिपान की विरति होती है ।

१२. भवे ! इसके पश्चात् दूसरे महाग्रन्थ में मृषावाद की विरति होती है ।

मते ! मैं मर्त्य मृषावाद का प्रत्याग्यान करता हूँ । शोध में या मोक्ष में, भय में या हर्षा में, मैं स्वयं अनन्य नहीं बोलूँगा, दूसरा ने असत्य नहीं सुनवाऊँगा और असत्य बोलने वालों का अनुमोदन भी नहीं करूँगा, यावज्जीवन के लिए, तीन कारण तीन योग में—मन में, वचन में, कथा में—न करूँगा, न कराऊँगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा ।

मते ! मैं अनीत के मृषावाद में निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करना हूँ, गद्दी करता हूँ और आत्मा का द्युत्थन करता हूँ ।

मते ! मैं दूसरे महाग्रन्थ में उपस्थित हुआ हूँ । इसमें मर्त्य मृषावाद की विरति होती है ।

१३. मते ! इसके पश्चात् तीसरे महाग्रन्थ में अदत्तादान की विरति होती है ।

मते ! मैं मर्त्य अदत्तादान का प्रत्याग्यान करता हूँ । गांध में, नगर में, या अरण्य में—गद्दी भी अल्प या बहुत, मृदम या मृदुल, क्षिप्त या अक्षिप्त किसी भी अदत्त-वस्तु का मैं स्वयं ग्रहण नहीं करूँगा, दूसरों ने अदत्त-वस्तु का ग्रहण नहीं कराऊँगा और अदत्त-वस्तु ग्रहण करने वाले का अनुमोदन भी नहीं

१. निन्दा—अपने आप किया जाने वाला आत्मालोचन ।

२. गद्दी—दूसरों के समक्ष किया जानेवाला आत्मालोचन ।

करेगा,—यावज्जीवन के लिए, तीन करण तीन योग से—मन से, बचन से, काया से—न करेगा न कराऊँगा और करने वाले का अनुमान भी नहीं करेगा ।

मने ! मैं अनीस के अवसादान में निवृत्त होता हूँ, उनकी निन्दा करता हूँ गद्दी करता हूँ और आत्मा का धुन्मय करना हूँ ।

मत ! मैं तीसरे महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ । इसमें मैं अन्तर्धान की विरति होती है ।

१४ मत ! इसके पश्चात् चौथे महाव्रत में संयुक्त की विरति होती है ।

मने ! मैं सब प्रकार के संयुक्त का प्रत्याख्यान करता हूँ । वेद सम्प्रदायी, मनुष्य सम्प्रदायी अथवा निर्याण सम्प्रदायी संयुक्त का मैं स्वयं सेवन नहीं करूँगा, दूसरों में संयुक्त गहन नहीं कराऊँगा और संयुक्त सेवन करने वालों का अनुमान भी नहीं करूँगा—यावज्जीवन के लिए तीन करण तीन योग से—मन से बचन से काया से—न करेगा न कराऊँगा और करने वाले का अनुमान भी नहीं करेगा ।

मने ! मैं अनीस के संयुक्त-सेवन में निवृत्त होता हूँ उनकी निन्दा करता हूँ गद्दी करता हूँ और आत्मा का धुन्मय करता हूँ ।

मने ! मैं चौथे महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ । इसमें सब संयुक्त की विरति होती है ।

१५ मने ! इसके पश्चात् पाँचवें महाव्रत में परिग्रह की विरति होती है ।

मने ! मैं सब प्रकार के परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ । गाव में, नगर में, या अरण्यादि—कहीं भी अन्न या बहुत सुख या स्नान, अक्षिप्त या अक्षिप्त—किसी भी परिग्रह का ग्रहण मैं स्वयं नहीं करूँगा दूसरा से परिग्रह का ग्रहण नहीं कराऊँगा और परिग्रह का ग्रहण करने वालों का अनुमान भी नहीं करूँगा, यावज्जीवन के लिए, तीन करण तीन योग से—मन से, बचन से, काया से—न करेगा, न कराऊँगा और करने वाले का अनुमान भी नहीं करेगा ।

मने ! मैं अनीस के परिग्रह में निवृत्त होता हूँ उनकी निन्दा करता हूँ गद्दी करता हूँ और आत्मा का धुन्मय करता हूँ ।

मने ! मैं पाँचवें महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ । इसमें सब परिग्रह की विरति होती है ।

१६ मने ! इसके पश्चात् छठे व्रत में गति भाजन की विरति होती है ।

मने ! मैं सब प्रकार के गति-भाजन का प्रत्याख्यान करता हूँ । भगवन्,

पान, खाद्य और स्वाद्य—किसी भी वस्तु को रात्रि में मैं स्वयं नहीं खाऊंगा, दूसरो को नहीं खिलाऊंगा और खाने वालों का अनुमोदन भी नहीं करूंगा । यावज्जीवन के लिए तीन करण तीन योग से—मन से, वचन से, काया से—न करूंगा, न कराऊंगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूंगा ।

भते ! मैं अतीत के रात्रि-भोजन से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गद्गल करता हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

भते ! मैं छठे व्रत में उपस्थित हुआ हूँ । इसमें सब रात्रिभोजन की विरति होती है ।

१७. मैं इन पाँच महाव्रतों और रात्रि-भोजन-विरति रूप छठे व्रत को आत्महित के लिए अंगीकार कर विहार करता हूँ ।

१८. संयत-विरत-प्रतिवृत्त-प्रत्याख्यात-पापकर्मां भिक्षु अथवा भिक्षुणी, दिन में या रात में, सोते या जागते, एकान्त में या परिपद् में—पृथ्वी, भित्ति (नदी, पर्वत आदि की दरार) शिला, टेले, सचित्त-रज से समृष्ट काय अथवा सचित्त-रज से समृष्ट वस्त्र या हाथ, पाँव, काष्ठ, तृपाच, अँगुली, शलाका अथवा शलाका-समूह से न आलेखन करे, न विलेखन करे, न घट्टन करे और न भेदन करे, दूसरे से न आलेखन कराए, न विलेखन कराए, न घट्टन कराए और न भेदन कराए । आलेखन, विलेखन, घट्टन या भेदन करने वाले का अनुमोदन न करे, यावज्जीवन के लिए, तीन करण तीन योग से—मन से, वचन से, काया से—न करूंगा, न कराऊंगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूंगा ।

भते ! मैं अतीत के पृथ्वी समारम्भ से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गद्गल करता हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

१९. संयत-विरत-प्रतिवृत्त-प्रत्याख्यात-पापकर्मां भिक्षु अथवा भिक्षुणी, दिन में या रात में, सोते या जागते, एकान्त में या परिपद् में—उदक, ओस, हिम, बूँदर, ओले, भूमि को भेद कर निकले हुए जल बिन्दु, शुद्ध उदक, (आन्तरिक जल) जल से भीगे शरीर अथवा जल से भीगे वस्त्र, जल से स्निग्ध शरीर अथवा जल से स्निग्ध वस्त्र का न आमर्श करे, न संस्पर्श करे, न आपीडन करे, न प्रपीडन करे, न आस्फोटन करे, न प्रस्फोटन करे, न आतापन करे और न प्रतापन करे, दूसरो से न आमर्श कराये, न संस्पर्श कराए, न आपीडन कराए, न प्रपीडन कराए, न आस्फोटन कराए, न प्रस्फोटन कराए, न आतापन कराए, न प्रतापन कराए । आमर्श, संस्पर्श, आपीडन, प्रपीडन, आस्फोटन, प्रस्फोटन, आतापन या प्रतापन करने वाले का अनुमोदन न करे, यावज्जीवन के लिए, तीन

कराए, तीन योग में—मन से, बचन से, काया से—न कर्मका, न कराऊंगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूंगा ।

अते ! मैं अतीत के ब्रह्म-समारम्भ से निवृत्त होता हूँ उसकी निन्दा करता हूँ, नहीं करता हूँ और आत्मा का व्युत्पन्न करता हूँ ।

२० समय-विरत-प्रतिवृत्त-वत्प्राकृत-प्राक्कर्मा मिथु भवना मिथुनी, दिन में या रात में, साते या आगते, एकान्त में या परिषद् में—अग्नि, अगारे, सुन्दर, अग्नि, अवाता, असात, (अपमयी उकरी) घुट (काष्ठ रहित) अग्नि, अवका उल्ला का न उत्प्रेषण करे, न बह्म करे, न उग्ग्रासन करे और न निर्वाण करे (न कुस्राए), न पुनरास उत्प्रेषण कराए, न बह्म कराए, न उग्ग्रासन कराए और न निर्वाण कराए । उत्प्रेषण बह्म, उग्ग्रासन या निर्वाण करने वाले का अनुमोदन न करे, प्राक्कजीवन के लिए तीन करण तीन योग में—मन से, बचन से, काया से—न कर्मका, न कराऊंगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूंगा ।

अते ! मैं अतीत के अग्नि-समारम्भ से निवृत्त होता हूँ उसकी निन्दा करता हूँ, नहीं करता हूँ और आत्मा का व्युत्पन्न करता हूँ ।

२१ समय-विरत-प्रतिवृत्त-वत्प्राकृत-प्राक्कर्मा मिथु भवना मिथुनी, दिन में या रात में, साते या आगते, एकान्त में या परिषद् में—आमर, पत्ते, बीजन पत्र, छाया छाया के टुकड़े आर-मन और-विष्की, वस्त्र, वस्त्र के पत्ते हाथ या मूँह में अपने घरीर अवका बाहरी नुनलों को फूँक न दे, हवा न करे, कुस्रास फूँक न दिलाए हवा न कराए फूँक देने वाले या हवा करने वाले का अनुमोदन न करे, प्राक्कजीवन के लिए तीन करण तीन योग में—मन से, बचन से, काया से—न कर्मका न कराऊंगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूंगा ।

अते ! मैं अतीत के वायु-समारम्भ से निवृत्त होता हूँ उसकी निन्दा करता हूँ, नहीं करता हूँ और आत्मा का व्युत्पन्न करता हूँ ।

२२ समय-विरत-प्रतिवृत्त-वत्प्राकृत-प्राक्कर्मा मिथु भवना मिथुनी, दिन में या रात में, साते या आगते, एकान्त में या परिषद् में—बीजा पर, बीजा पर रबी हुई वस्तुओं पर, स्फुटित बीजा पर, स्फुटित बीजा पर रबी हुई वस्तुओं पर, पत्ते जाने की अवस्था वाली वनस्पति पर, पत्ते जाने की अवस्था वाली वनस्पति पर स्थित वस्तुओं पर, हरित पर हरित पर रबी हुई वस्तुओं पर, स्थित वनस्पति के अलों पर स्थित वनस्पति के अलों पर रबी हुई वस्तुओं पर,

सचित्त कोल—अड़ों एवं काष्ठ-कीट से युक्त काष्ठ आदि पर न चले, न खड़ा रहे, न बैठे, न मोये, दूसरों को न चलाए, न मड़ा करे, न बैठाए, न मुलाए; चलने, खड़ा रहने, बैठने या मोने वाले का अनुमोदन न करे, यावज्जीवन के लिए तीन करण, तीन योग से—मन से, वचन से, काया से—न कहेगा, न कराहेगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करेगा।

मते ! मैं अतीत के वनस्पति-समारम्भ से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, नहीं करता हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ।

२३. संयत-विरत-प्रतिहृत-प्रत्याख्यात पापकर्मा भिक्षु अथवा भिक्षुणी, दिन में या रात में, सोते या जागते, एकान्त में या परिपद में—कीट, पर्ण, कुशु या पिपीलिका हाथ, पैर, वाङ्ग, ऊरु, उदर, मिर, वस्त्र, पात्र, रजोहरण, गोच्छद्वग, उन्दक (स्थडिल), दण्डक, पीठ, फलक, जय्या या मस्नारक पर तथा उभी प्रकार के किसी अन्य उपकरण पर चढ़ जाए तो सावधानी पूर्वक धीमे-धीमे प्रतिलेखन कर, प्रमाज्जन कर उन्हें वहाँ से हटा एकान्त में रग दे किन्तु उनका मघात न करे—आपस में एक दूसरे प्राणी को पीड़ा पहुँचे वैसे न रहे।

१. अयतनापूर्वक चलने वाला श्रम और स्थावर जीवों की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का वध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

२. अयतनापूर्वक खड़े होने वाला श्रम और स्थावर जीवों की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का वध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

३. अयतनापूर्वक बैठने वाला श्रम और स्थावर जीवों की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का वध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

४. अयतनापूर्वक सोने वाला श्रम और स्थावर जीवों की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का वध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

५. अयतनापूर्वक भोजन करने वाला श्रम और स्थावर जीवों की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का वध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

६. अयतनापूर्वक धोलने वाला श्रम और स्थावर जीवों की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का वध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

७. कैसे चले ? कैसे खड़ा हो ? कैसे बैठे ? कैसे मोये ? कैसे लाए ? कैसे बोले ? जिससे पाप-कर्म का बन्धन न हो।

८. यतनापूर्वक चलने, यतनापूर्वक खड़ा होने, यतनापूर्वक बैठने, यतना-

पुनर्क 'मीने', क्षुण्णपुनर्क माने 'बीर' बननापुनर्क माने 'बाना' गोप-जन का बन्धन नहीं करता ।

९ जो सब जीवों का आत्मवन मानता है मग जीवों को मयिकदृष्टि से देखना है जो आत्मव का निरावकरण है और जो दान्य है उनके पास हमें का बन्धन नहीं होता ।

१० १ पठम ज्ञान फिर क्या—इस प्रकार मग मूनि स्थित होते हैं । जगत् को क्या करना ? यह क्या जानेगा—क्या धर्म है और क्या पाप ?

११ जीव मुनिकर कल्याण को जानना है और मुनिकर ही पाप को जानना है । जगत् और पाप मुनिकर ही जाने जाते हैं । यह हममें जो धर्म है उसीका आचरण करे ।

१२ जो जीवों को भी नहीं जानता मगीव का भी नहीं जानता यह जीव और मगीव को न जानने वाला यदम का बने जानेगा ?

१३ जो जीवों का भी जानना है, मगीवों को भी जानना है यह जीव और मगीव दोनों को जानने वाला ही मयिक को जान लेगा ।

१४ जब मनुष्य जीव और मगीव—दोनों को जान लेता है तब यह सब जीवों की बहुविध मयिकों का भी जान लेता है ।

१५ जब मनुष्य मग जीवों की बहुविध मयिकों को जान लेता है तब यह पुण्य, पाप, कर्म और मोक्ष को भी जान लेता है ।

१६ जब मनुष्य पुण्य, पाप कर्म और मोक्ष को जान लेता है तब जो भी देवों और मनुष्यों का भी है उनमें विरक्त हो जाता है ।

१७ जब मनुष्य दक्षिक और मातृपिक भोगों से विरक्त हो जाता है तब यह आत्मनर और बाह्य भोगों को त्याग देता है ।

१८ जब मनुष्य आत्मनर और बाह्य भोगों को त्याग देता है तब यह मुह हाकर अनन्तर-वृत्ति को स्वीकार करता है ।

१९ जब मनुष्य मुह होकर अनन्तर-वृत्ति को स्वीकार करता है तब यह उत्कृष्ट मवरात्मक अनुत्तर यम का स्थापन करता है ।

२० जब मनुष्य उत्कृष्ट सर्वरात्मक अनुत्तर यम का स्थापन करता है तब यह अवाधि-अन पाप द्वारा सचित कर्म रज को प्रकल्पित कर लेता है ।

२१ जब यह अवाधि-अन पाप द्वारा सचित कर्म रज का प्रकल्पित कर देता है तब यह सर्वव्यापी ज्ञान और दान—केवलज्ञान और केवलदान का प्राप्त कर लेता है ।

२२. जब वह सर्वत्रगामी ज्ञान और दर्शन—केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है तब वह जिन और केवली होकर लोक-अलोक को जान लेता है ।

२३. जब वह जिन और केवली होकर लोक-अलोक को जान लेता है तब वह योगी का निरोध कर शैलेयी अवस्था को प्राप्त होता है ।

२४. जब वह योगी का निरोध कर शैलेयी अवस्था को प्राप्त होता है तब वह कर्मों का क्षय कर रज-मुक्त बन सिद्धि को प्राप्त करता है ।

२५. जब वह कर्मों का क्षय कर रज-मुक्त बन सिद्धि को प्राप्त करता है तब वह लोक के मस्तक पर स्थित शाश्वत सिद्ध होता है ।

२६. जो श्रमण मुख का रमिक, सात के लिए आकुल, अकाल में सोने वाला और हाथ, पैर आदि को बार-बार धोने वाला होता है उसके लिए सुगति दुर्लभ होती है ।

२७. जो श्रमण तपो-गुण से प्रधान, श्रुजुमति, शान्ति तथा संयम में रत और परिपक्व को जीतने वाला होता है उसके लिए सुगति सुलभ होती है ।

[जिन्हें तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय हैं वे शीघ्र ही स्वर्ग को प्राप्त होते हैं—मले ही वे पिछली अवस्था में प्रव्रजित हुए हों ।]

२८. दुर्लभ श्रमण-भाव को प्राप्त कर सम्यक्-दृष्टि और सतत-भाववान् श्रमण इस पङ्जीवनिका की कर्मणा—मन, वचन और काया से—विराघना न करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## पंचवीं अध्यायन

### पिण्डोपणा

(परमा उद्दण्ड)

१. मिना वा काल प्राप्त होने पर मुनि अनाहुत और अभूच्छित रहना हुआ इन—आप नष्ट जाने वाले कम-बोम न मन्त्र-योग की मन्त्राग्राही करें।
२. गाँव वा मंदिर में माचरास<sup>१</sup> के लिए निकला हुआ वह मुनि अनुष्ठित और अध्याशित बिना स धीमे-धीमे चले।
३. जाने मुख-अवाध भूमि को पैरना हुआ और बीच, हरियाली, प्राणी जल तथा मवीर बिहारी को टालना हुआ चले।
४. कुम्हरे मार्ग के होने हुए चले, ऊपर-आवड़ न मान, बटे हुए सुने पेड़ या अनाम के दण्ड और पश्चिम मार्ग को टाल तथा मंक्रम<sup>२</sup> के ऊपर न न जाए।
५. वहाँ गिरने या लड़खड़ा जाने में वह मयमी प्राणी, भूना—अस अथवा स्वाधन जीवा की हिंसा करना है।
६. इसलिए अनुमाहित मयमी कुम्हरे मार्ग के होने हुए उस मार्ग में न जाए। यदि हमरा मार्ग न हो तो अनुमायूक्त जाए।
७. मयमी मुनि मचिन दण्ड में चले हुए बीच में बोयन, रात्र, भूने और गावर के ईर के ऊपर हाकर न जाए।
८. वर्षा वरग रही हो, बुद्धि मित्र रहा हो, महापान चल रहा हो और मार्ग में नियक मयानिम<sup>३</sup> जीव हो वह हाँ ना बिभा न लिग न जाए।
९. अद्भुत का पालन करने वाला मुनि केसा-बाड़े के मभीर न चले।

१. विमुक्त मिलाचरी।

२. अथ वा गड़े को चार करने व लिए काष्ठ या पाषाण रचित पुल।

३. जो बीच निरधे उड़ने हैं उन्हें नियक संवातिव जीव कहते हैं। जैसे—  
पनंग आदि।





२१ वहाँ काष्ठक में या कोष्ठक-द्वार पर पुनः, बीजादि बिखरे हों वहाँ मुनि न जाए। काष्ठक को ललाट का भीषा और भीषा देव तो मुनि उसका परिवर्जन करे।

२२ मुनि बैठ बच्चे, कुत्ते और बछड़े को लाँच कर या हटाकर बाँध में प्रवेश न करे।

२३ मुनि भयानक दृष्टि न देवे। अति दूर न देखे। अशुभ दृष्टि से न बच। मित्रों का निषेध करने पर बिना कुछ कहे कायम बना जाए।

२४ गोबरदास के लिए घरों में प्रविष्ट मुनि अति भूमि<sup>१</sup> में न जाए, कुम्ह-भूमि<sup>२</sup> का आगकर भिन्न-भूमि<sup>३</sup> में प्रवेश करे।

२५ विचक्षण मुनि मित्र भूमि में ही उचित भू-भाग का प्रतिनिधन करे। जहाँ उस स्थान और लीच का स्थान दिखाई पड़े उस भूमि भाग का परिवर्जन करे।

२६ सर्वोत्थित-अवाहित मुनि उदक और मिट्टी आदि के साथ तथा बीज और हृत्पात्री का बर्ज कर छाड़ा रहे।

२७ वहाँ लगे हुए उस मुनि के लिए कोई काम याजक जाए या वह अशक्त न हो। कल्पित बहाने करे।

२८ यदि साधु के पास याजक लानी हुई बुद्धिहीन उसे मिराए तो मुनि उस बेटी हुई स्त्री की प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले लवणा।

२९ प्राणी, बीज और हृत्पात्री को कुछकनी हुई स्त्री अर्पणमानी होती है—यह जान मुनि उससे काष्ठ न अकट-भान न ले।

३० एक वस्तु न ले दूसरे वर्जन में निष्कात कर, उचित वस्तु पर रख कर, उचित की हिता कर, इसी तरह अमल के लिए वाचस्प सांचत बल का हिता कर—

३१ जब मैं अकलाहल कर, अमल न कुछ हुए बल की चातिष्ठ कर आहार-भानी काण्ड ता मुनि उस बेटी हुई स्त्री की प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले लवणा।

१ अतिष्ठ स्थान।

२ कुम्ह का अर्पणित स्थान।

३ अर्पणित स्थान।

३२. पुराकर्म<sup>१</sup>-कृत हाथ, कड़छी और वर्तन में भिक्षा देती हुई स्त्री को मुनि प्रतिषेध करे—उस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता ।

३३. इसी प्रकार जल में आद्रं<sup>२</sup>, सस्निग्ध<sup>३</sup>, सचित्त रज-कण, मृत्तिका, क्षार, हरिताल, हिंगुल, मैनशिल, अञ्जन, नमक—

३४. गैरिक<sup>४</sup>, वर्णिक<sup>५</sup>, श्वेतिका<sup>६</sup>, सीराष्ट्रिका<sup>७</sup>, तत्काल पीसे हुए आटे या कच्चे चावलों के आटे, अनाज के भूने या छिलके और फल के सूक्ष्म खण्ड से मने हुए (हाथ, कड़छी और वर्तन से भिक्षा देती हुई स्त्री) को मुनि प्रतिषेध करे—उस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता तथा संनृष्ट और अमनृष्ट को जानना चाहिए ।

३५. जहाँ पश्चान् कर्म<sup>८</sup> का प्रमग हो वहाँ अमनृष्ट (भक्त-पान में अलिप्त) हाथ, कड़छी और वर्तन में दिया जाने वाला आहार मुनि न ले ।

३६. संनृष्ट (भक्त-पान में लिप्त) हाथ, कड़छी और वर्तन में दिया जाने वाला आहार, जो वहाँ गणनीय हो, मुनि ले ले ।

३७. दो स्वामी या भोक्ता हो और वहाँ एक निमन्त्रित करे (देना चाहे) तो मुनि वह दिया जाने वाला आहार न ले । दूसरे के अभिप्राय को देखे—उसे देना अप्रिय लगता हो तो न ले और प्रिय लगता हो तो ले ले ।

३८. दो स्वामी या भोक्ता हो और दोनों ही निमन्त्रित करे तो मुनि उस दीयमान आहार को, यदि वह एषणीय हो तो, ले ले ।

३९. गर्भवती स्त्री के लिए बना हुआ विविध प्रकार का भक्त-पान वह खा रही हो तो मुनि उसका विवर्जन करे; पाने के बाद वचा हो वह ले ले ।

१. भिक्षा देने से पूर्व उसके निमित्त से हाथ, कड़छी आदि सचित्त पानी से धोना या अन्य किसी प्रकार की हिंसा करना ।

२. जिससे जल की बूँदें टपक रही हों ।

३. जल से गोला-सा ।

४. लाल मिट्टी ।

५. पीली मिट्टी ।

६. खड़िया मिट्टी ।

७. गोपीचन्दन । स्वर्ण पर चमक देने के लिए प्रयुक्त मिट्टी ।

८. भिक्षा देने के पश्चात् खरड़े हुए हाथ, कड़छी आदि को सचित्त जल से धोना या अन्य किसी प्रकार की हिंसा करना ।

४० काल प्राप्तवती<sup>१</sup> यमिणी चट्टी हा और समय का बिना देने के लिए कर्णाक्षित बट जाए मरणा चट्टी हा और खड़ी हा जाए तो—

४१. इसके द्वारा किया जाने वाला भक्त-पान मयमिया के लिए अद्वैत (अप्राप्त) होता है। इसलिए मुनि मैत्री<sup>२</sup> हुई स्त्री का प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार में नहीं ले सकता।

४२. भक्त या बालिका का स्नान-पान कराती हुई स्त्री उसे रोते हुए छोड़ भक्त-पान जाए—

४३. वह भक्त-पान मयमि के लिए अव्यवस्थित होता है। इसलिए मुनि मैत्री<sup>३</sup> हुई स्त्री का प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार में नहीं ले सकता।

४४. जो भक्त पान कल्प और मयमि की दृष्टि में गन्ताव्य है, उसे मैत्री<sup>४</sup> हुई स्त्री का मुनि प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार में नहीं ले सकता।

४५. भक्त-पान, भरणी, पीठ, मिनापुत्र (कादा), मिट्टा के केंप और लाल आदि लक्ष्य प्रयोगों के विभिन्न (हैं, फिर और मने हुए)—

४६. पाप का भक्षण के लिए पूर्व नाम कर, आहार मैत्री<sup>५</sup> हुई स्त्री को मुनि प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार में नहीं ले सकता।

४७. यह भक्षण, पानक<sup>६</sup>, श्राद्ध और श्राद्ध चानाय नैवार दिया हुआ है, मुनि यह जान जाए या मुन के तो—

४८. वह भक्त-पान मयमि के लिए अव्यवस्थित होता है। इसलिए मुनि मैत्री<sup>७</sup> स्त्री को प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार में नहीं ले सकता।

४९. यह भक्षण पानक<sup>८</sup> श्राद्ध और श्राद्ध पुष्पाय<sup>९</sup> नैवार दिया हुआ है, मुनि यह जान जाए या मुन के तो—

५०. वह भक्त-पान मयमि के लिए अव्यवस्थित होता है, इसलिए मुनि मैत्री<sup>१०</sup> हुई स्त्री का प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार में नहीं ले सकता।

५१. यह भक्षण पानक<sup>११</sup>, श्राद्ध और श्राद्ध कनीपक<sup>१२</sup>—मिनापुत्रों—के निमित्त नैवार दिया हुआ है मुनि यह जान जाए या मुन के तो—

१ जिसके गर्म का प्रकृतिपात या नहीं मान चल रहा हो उसे काल-प्राप्तवती (काल प्राप्त भक्तवती) कहा जाता है।

२ द्राक्षा, कर्पूर आदि से विषय बन।

३ 'पुष्प होगा' इस भावना से विषय बन भक्त-पान।

५२. यह भक्त-पान मयति के लिए अवश्यनीय होता है, इसलिए मुनि देवी हृष्ट स्त्री को प्रतिषेध करे— इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता ।

५३. यह भजन, पानक, ग्राह्य और स्वाद्य भक्षणों के निमित्त मैद्यार किया हुआ है, मुनि यह जान जाएगा मुनि ने तो -

५४. यह भक्त-पान मयति के लिए अवश्यनीय होता है, इसलिए मुनि देवी हृष्ट स्त्री को प्रतिषेध करे— इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता ।

५५. औद्देशिक<sup>१</sup>, श्रीमङ्गल<sup>२</sup>, पूतिकर्म<sup>३</sup>, आहृत<sup>४</sup>, अन्त्यजन<sup>५</sup>, प्राणिन्य<sup>६</sup> और मिश्रजात<sup>७</sup> आहार मुनि ने ले ।

५६. मयनी मुनि आहार वा उद्गम पूछे— किनलिए किया है ? किनने किया है ? — इस प्रकार पूछे । दाता ने प्रश्न वा उत्तर मुनिकर नि गयिन और मुद्र आहार से ।

५७. यदि भजन, पानक, ग्राह्य और स्वाद्य पुष्प, बीज और हरिणाली ने उन्मिध (मिला हुआ) हो तो—

५८. यह भक्त-पान मयति के लिए अवश्यनीय होता है, इसलिए मुनि देवी हृष्ट स्त्री को प्रतिषेध करे— इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता ।

५९. यदि भजन, पानक, ग्राह्य और स्वाद्य पानी, उन्मिध और पनक पर निक्षिप्त (रंगा हुआ) हो तो—

६०. यह भक्त-पान मयति के लिए अवश्यनीय होता है, इसलिए मुनि देवी हृष्ट स्त्री को प्रतिषेध करे— इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता ।

६१. यदि भजन, पानक, ग्राह्य और स्वाद्य अग्नि पर निक्षिप्त (रंगा हुआ) हो और उगका (अग्नि का) स्पर्श कर दे तो—

१. देसे—३/२

२. देसे—३/२

३. आघातकर्म—मुनि के निमित्त बने हुए आहार से मिश्रित ।

४. देसे—३/२

५. भोजन पकाने का आरम्भ अपने लिए करने के पश्चात् निर्ग्रन्थ के लिए अधिक बनाना ।

६. निर्ग्रन्थ को देने के लिए कोई वस्तु दूसरों से उधार लेना ।

७. अपने लिए या साधुओं के लिए सम्मिलित रूप से भोजन पकाना ।

८. कीटिकानगर ।

९. फफूदी ।

६२ यह भक्त-मान सर्वत्र के लिए अवस्थानीय हाथा है, इसलिए मुनि देती हुई स्त्री का प्रतिपक्ष करे—इन प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता ।

६३ इसी प्रकार (पुस्ते में) ईष्य जान कर, (पुन्हे में) ईष्य निवास कर, (पुन्हे को) मुक्या कर, प्रणीय कर, मुक्ता कर, अग्नि कर रत हुए पाप में से आहार निवास कर, पानी का छींटा देकर, पाप का टेढ़ा कर, उगार कर, है ना—

६४ यह भक्त-मान सर्वत्र के लिए अवस्थानीय है, इसलिए मुनि देती हुई स्त्री को प्रतिपक्ष करे—इन प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता ।

६५ यदि किसी बात, पिता या दत्त के दुपड़े सफाई के लिए रते हुए हाथीर के बसावत हाँ से—

६६ सर्वेन्द्रिय नवाहिन बिनु उन पर हाकर न जाए । इसी प्रकार यह प्रमाण रहित और वाक्या मुनि पर न ले जाए । भक्तान् ने वहाँ अक्षय्य देना है ।

६७ अक्षय्य के लिए हाता निर्मली, चन्द और पीढ़े की कैंबा कर, बचाने, स्वयं और प्रमाण पर (यह भक्त-मान काए वा मायु के बहान न करे) ।

६८ निर्मली बाँटि हाता बहती हुई स्त्री विर लगी है, हाथ, पैर दूट बहते हैं । उनके गिरने में नीचे दब कर बुद्धा के सवा पुखी-आधिन जय बीबी की विरापता हो सकती है ।

६९. अग पैस महादोष का जानकर संवसी महर्षि मायावहन्<sup>१</sup> भिजा नहीं लगे ।

७० मुनि अक्षय्य कर, मूल, चन्द, पिता हुआ कती का पाप, पीसा बदल न ले ।

१ चार सटों की बाँधकर बसाया हुआ कैंबा स्वयं, वहाँ धीसत सवा ओर-अगुओं से बचाने के लिए भोजन रते जाने हैं ।

२ यह उद्योग का तेहरवाँ होय है । इसके तीन प्रकार हैं—

(१) ऊँच मातावहन्—ऊपर से उतारा हुआ ।

(२) मधोमातावहन्—मुनिपूह (समय) से लाया हुआ ।

(३) निपन् मातावहन्—ऊँचे बर्तन या कोठे आदि में से धुस्कर निकाला हुआ ।

७१. इसी प्रकार मत्त, घेर का गुट, निर-गराई, गीला गुट (राय)।  
पूआ, हम नरह को हूतरी वन्तुओं को—

७२. जो वेनने के लिए युमान में रहीं हो, परन्तु न बिकी हो, रत्न ने  
स्पष्ट (लिप्त) हो गई हो तो मुनि देनी हुई स्त्री का प्रतिपेक्ष करें—उन प्रकार  
का आहार में नहीं ले सकता।

७३. बहुत अस्मि वाते पुद्गल<sup>१</sup> बहुत गदि वाते अनिमिष<sup>२</sup>, आम्बिष<sup>३</sup>,  
तेन्दू<sup>४</sup> और घेन के फल, गणेशी और पानी—

७४. जिनमें नाने का भाग होता हो और शान्ता अधिष्ठान को—देनी  
हुई स्त्री को मुनि प्रतिपेक्ष करें—उन प्रकार का आहार में नहीं ले सकता।

७५. इसी प्रकार उन्नावन पानी या गुट के घड़े का पीवन, आटे का  
पीवन, चावल का पीवन, जो अधुनापीन (नराला का पीवन) हो, उसे  
मुनि न ले।

७६. अपनी मति या दर्शन में, कुछ कर या हून कर जानें—यह पीवन  
निराला का है, और निःशक्ति हो जाना—

७७. जो उसे पीव-नीति और परिश्रम जानकर लगती मुनि ले ले। वह  
जल में लिए उपराशी होना या नहीं—ऐसा मन्त्रेष्ट हो या चम कर लेने का  
निष्पन्न करें।

७८. दाता न करें—‘घरने के लिए खोजना कर में शेष में दो।  
बहुत गददा, दुर्गन्ध-गुता और प्यास वृत्ताने में लगने जल लेकर में  
क्या करेगा?’

७९. यदि वह जल बहुत गददा, दुर्गन्ध-गुता और प्यास वृत्ताने में  
अममय हो तो देनी हुई स्त्री को मुनि प्रतिपेक्ष करें—उन प्रकार का जल भी  
नहीं ले सकता।

८०. यदि वह पानी अनिच्छा या अमात्रधानी में लिया गया हो तो उसे  
न स्वयं पीए और न दूसरे मादुओं को दे।

८१. परन्तु एतन्त में जा, अचित्त भूमि को देन, वचनापूर्वक उसे

१. बहुत बीजों वाला फल।

२. बहुत कांटों वाला फल।

३. आस्थिक वृक्ष का फल।

४. तेन्दू वृक्ष का फल। इस वृक्ष की लकड़ी को आचनूम कहते हैं।

परिस्मादिन<sup>१</sup> करे। परिस्मादिन करने के पश्चात् स्थान में जा कर प्रणिश्रमण<sup>२</sup> करे।

८२ मोक्षराश के लिए महा हुमा मुनि ब्रह्मचिन आहार करना चाहे तो प्रासुव नाष्ठक वा मिश्रिमुन<sup>३</sup> को देखकर—

८३ उनका स्वाधी की अनुज्ञा मकर छाप हुए एवं महान् स्थान में बैठे, हस्तवर्ध से शरीर का प्रमादन कर येजामी नयति वहाँ भीशन करे।

८४ वही भीशन करते हुए मुनि व आहार में गुच्छी, बाँटा, निमका, काठ वा दुपका कपड वा इभी श्वार की कोई हमरी मन्तु निमये ता—

८५ उभे उठा कर म केरे, मुहु छ म चुरे किन्तु हाथ में ल कर पश्चात् में चला जाए।

८६ स्थान में जा आचित भूमि वा देख मनमात्रुव उस परिस्मादिन करे। परिस्मादिन करने के पश्चात् स्थान में जा कर उठिचमन करे।

८७ ब्रह्मचिन् विजु मन्वा (उपाधय) में जाकर भाजन करना चाहे तो मिश्रा मणि बाँटा जाकर स्वाध की प्रणिमयना करे।

८८ उनके पश्चात् विमेषुवद उपाधय में प्रवेश कर गुप्त के ममीन उपास्थि हा सर्वविषयी गुप्त को पशुवर प्रणिश्रमण (कायासाध) करे।

८९ भान भान और भक्त-वान् मने म कदे मयस्त भविषारा को मयाजने माह कर—

९० मन्त्र-प्रम अनुमिन् नयति व्यापन रतिन वित्त न गुप्त के ममीन आलाचना करे। तिम प्रकार में मिश्रा भी हा उमी प्रकार म गुप्त का वड।

९१ सम्पूर्ण प्रकार से आलोचना म हुई हा भववा पहन पाये वी हो (आलाचना वा मय मग हुआ हा) वा उमवा फिर प्रणिश्रमण करे शरीर को विश्र मना मन्त्र चिन्मन करे—

१ अवीर्य वा नवीर्य आहार आदि वस्तु वा जाने पर धृक्ता और निर्जीव भूमि में उत्तवा परित्याग।

२ भान-भनमान में हुई भूलों की विगुह्ति के लिए किया जाने वाला प्रायश्चित्त।

३ वी घरों वा मय्यकर्मी भान कुटीर वा मीन।

४ पार्व भान से बचा हुआ।

५ मन्त्र-मन्त्र।



६२. ओह ! भगवान् ने साधुओं के मोक्ष-साधना के हेतु-भूत गयमी-शरीर की धारणा के लिए निम्बल-वृक्षों का उपदेश किया है ।

६३. उस निम्बलमय कायोन्मेष की नमस्कार-मंत्र के द्वारा गृह्य कर तीर्थंकरों की स्तुति करें, फिर स्वाध्याय की प्रव्यापना (प्रारम्भ) करें, फिर क्षण-भर विश्राम करें ।

६४. विश्राम करना हुआ लाभार्थी (मोक्षार्थी) मुनि हम दिनकर अर्थ का चिन्तन करें - यदि जाचार्य और साधु मृत पर अनुग्रह करें तो मैं निहाल हो जाऊँ-मानूँ कि उन्होंने मुझे भयमान में पार दिया ।

६५. वह प्रेमपूर्णक साधुओं का यथाक्रम निमन्त्रण है । उन निमन्त्रित साधुओं में मैं यदि कोई साधु भोजन करना चाहे तो उनके साथ भोजन करें ।

६६. यदि कोई साधु न चाहे तो अफेला ही मुझे पात्र में यत्नानुषंग नीचे नहीं डालना हुआ भोजन करें ।

६७. गृहस्थ के लिए घना हुआ—मीठा (तिप्त) या कटुवा, चर्मला या चट्टा, मीठा या नमकीन जो भी आहार उपलब्ध हो उसे गयमी मुनि मनु-मृत की भाँति खाए ।

६८. मुधाजीवी (निष्काम जीवी) मुनि जरम या फिरम, व्यंजन सहित या व्यंजन रहित, आद्रं या शुष्क, मन्दु<sup>१</sup> और कुम्भाप<sup>२</sup> का जो भोजन—

६९. विधिपूर्वक प्राप्त हो उनकी निन्दा न करें । निर्दोष आहार अल्प या भरत होते हुए भी मृदुत या गरम होगा है । इसलिए उन मुधालब्ध (निष्काम प्राप्त) और दोष-वर्जित आहार को ममभाव में ला लें ।

१००. मुधादायी (निष्काम दाता) दुर्लभ है और मुधाजीवी भी दुर्लभ है । मुधादायी और मुधार्जीवी दोनों गुणों को प्राप्त होते हैं ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. विमृष्ट जीवनचर्या ।

२. वंद आदि का चूर्ण ।

३. अघपके जी, भूंग आदि ।

## पवित्रां चर्ययन

### पिण्डेयणा

(द्वितीय अर्धक)

१. सयमी मुनि नेत्र समा रह तब तब पाप का पाछ कर सब का न, रोष न छोड़े, मन फिर बड़ दुःख-युक्त हा या मुन-मनुक्त ।
२. उपायस या स्वाध्याय-भूमि में अवना वापर (जिता) के लिए गया हुआ मुनि (मठ, काठे आदि में) उपवास छा कर यदि न रह सके तो—
३. सुधा आदि का चरण स्पर्शन हुआ पर पूर्वोक्त विधि के और हम उत्तर (वक्ष्यमाण) विधि में यज्ञ-भाव का संकल्प करें ।
४. किन्तु समय पर विद्या के लिए निवृत्ति और समय पर लौट जाए । यज्ञाज का बन्ध कर का कार्य जिस समय का हो, उस उनी समय करें ।
५. विद्या ! तुम अकाल में जाने ह<sup>१</sup> । काम की प्रतिवेचना नहीं करनी प्रतीति<sup>२</sup> मुन भाने-आव का कपास (विष्णु) चरस हा और अभिवेध (धाम) की मित्रा वरस हा ।
६. किन्तु समय होने पर विद्या के लिए जाए, पुण्यकार (धम) को जिज्ञा न मित्रे पर साक न करे । मंडल छप ही नहीं—या मान भुन का सहन करे ।
७. हनी प्रकार काय प्रचार के प्रार्थी, जीव आदि भाजन के निमित्त एकत्रिहू हा, उनके सम्मुख न जाए । उन्हें वास न देना हुआ मननापूवक जाए ।
८. गोचरास के लिए गया हुआ सयमी कहीं न बैठे और प्रश रहकर भी भया का प्रवण न करे—विस्तार न करे ।
९. गोचरास के लिए गया हुआ सयमी भाषण, परिष<sup>३</sup>, द्वार या विवाह का सहारा मेजर तथा न रह ।
- १०-११. भक्त या पाप के लिए उपमथमथ करत हूँ (पर के बाते हुए) धमस, वादण, हृषण<sup>४</sup> का कनीयस का चौपकर सयमी मुनि शुद्ध के पर न प्रवण न करे । शुद्धवासी और धमस आदि की जाती न मानन नडा भी न रहे । किन्तु एषाज में जा कर राहा हो जाए ।

१. नगर-द्वार की जायस ।

२. विप्रोक्त । परसत आहार से जीवन निर्वाह करने वाला ।

१२. निधापरो को लाध कर घर में प्रवेश करने पर धनीपक या गृहस्वामी को अवया दोनों को अप्रेम हो सकता है अवया उसमें प्रवचन (वर्मभावन) की लज्जा होती है।

१३. गृहस्वामी द्वारा प्रतिषेध करने या दान दे देने पर, लक्ष्मी ने उनके वापस लाने के लिये मयमी मुनि नक्त-गान के लिए प्रवेश करे।

१४. लोहें उल्लाह,<sup>१</sup> पद्म,<sup>२</sup> कुमुद,<sup>३</sup> मातली या अन्य किसी मणिल पुष्प या शृंगन कर भिक्षा दे

१५. यह भवन-गान मयमि के लिए अस्वर्गीय होता है, समस्त मुनि देवी रुद्ध स्त्री को प्रतिषेध करे—उस प्रकार का आहार में नहीं ले सकता।

१६. लोहें उल्लाह, पद्म, कुमुद, मातली या अन्य किसी मणिल पुष्प को गृहस्वामी भिक्षा दे।

१७. यह भवन-गान मयमि के लिए अस्वर्गीय होता है, समस्त मुनि देवी रुद्ध स्त्री को प्रतिषेध करे—उस प्रकार का आहार में नहीं ले सकता।

१८. कमल-पत्र,<sup>४</sup> पद्म-पत्र,<sup>५</sup> कुमुद-पत्र, उल्लाह-पत्र, पद्म-पत्र,<sup>६</sup> मयमी की लाल, लाल-पत्रों में से।

१९. श्याम लाल या लाल प्रतिष्ठा की लक्ष्मी रुद्ध स्त्री को न ले।

२०. लक्ष्मी शीत लाल दान भोजी रुद्ध स्त्री देवी रुद्ध स्त्री को मुनि प्रतिषेध करे—उस प्रकार का आहार में नहीं ले सकता।

२१. लक्ष्मी प्रकार जो उल्लाह लाल न हो वह चंद्र, चंद्र-करी,<sup>७</sup> कायल-नायिका तथा अवयव निद्रा-पत्री और रुद्ध-कन्य न ले।

२२. लक्ष्मी प्रकार लाल का पित्र, पुत्र न उल्लाह हुआ मयमि जल, निल या मित्र, लोहें माग और मयमी की लक्ष्मी—अपान न ले।

१. लाल कमल।

२. नील कमल।

३. श्वेत कमल।

४. कमल की जड़।

५. विदारका, जीवन्ती।

६. यह पद्मिनी के कन्द से उत्पन्न होती है। इसका आकार हाथी-दाँत जैसा होता है।

७. बाँस का अंकुर।

८. शीपणी पत्र, कनाह।

२३ अथवा और अन्य न अतिथि वीर विभीषण, मूला और मुने के गोत्र दृष्टे का मन कर भी न चाहे ।

२४ दूसी प्रकार अथवा वनभूत, वीरभूत महारा और विशाल-रत्न न मे ।

२५ किन्तु मन्त्र मयदान विद्या कर, उच्च और नीच मभी भूतों में आग, नीच भूत का छाड़कर उच्च भूत में न आए ।

२६ आश्विन व अशुक्लिष्ठ, मासा को आश्विन चान्दा, मन्त्रारण, मन्त्रिण भुनि अनीन माह व रति (विद्या) को मन्त्रा कर और विद्या न विर्जन कर विद्या न कर ।

२७ दृष्ट्य के क्षण में जाना प्रकार का प्रचुर गाय स्वार्थ होता है, किन्तु न मेने पर धारण भुनि काय न करे । वर्यानि उनका अरसी इच्छा है व या न कर ।

२८ मन्त्र आश्विन वन अथवा का वात मन्त्रिण मन्त्रिण नीम गठ है किन्तु दृष्ट्य उन्हें नहीं देना चान्दा ता भी मन्त्रिण भुनि न देने काय पर काय न करे ।

२९ भुनि मन्त्रिण काय काय काय वीर वान्दा (भुनि) वान्दा दृष्ट्य कायका न करे और न उच्च मन्त्रिण मन्त्रिण वीर ।

३० जो चान्दा न करे उच्च परकाय न करे, वान्दा करने पर उच्च न कर । उच्च प्रकार विद्या का मन्त्रिण करने वाले भुनि का आश्विन विभीषण काय न विद्या है ।

३१ वर्यानि वर्या निव भुनि मन्त्रिण आश्विन वा कर उच्च, आश्विन मन्त्रिण की विद्याने कर वर्या मन्त्रिण न कर, उच्च मन्त्रिण के विद्या देना है—

३२ आश्विन वर्या का प्रचुरकाय देने काय कर मन्त्रिण भुनि कायका वर्या है निव विभीषण काय मन्त्रिण मन्त्रिण मन्त्रिण मन्त्रिण कायका ।

३३ वर्यानि वर्या निव भुनि विभीषण प्रचुर व वान और मन्त्रिण पाकर वही वर्या मन्त्रिण वर्या मन्त्रिण मन्त्रिण मन्त्रिण है विद्या और विद्या को मन्त्रिण पर मन्त्रिण है—

३४ व वर्या भुने का मन्त्रिण वि वर भुनि मन्त्रिण मन्त्रिण है मन्त्रिण है

ग्रान्त (असार) आहार का सेवन करता है, रुद्रवृत्ति और जिस किसी भी वस्तु में नन्तुष्ट होने वाला है।'

३५. वह पूजा का अर्थी, यश का कामी और मान-सम्मान की कामना करने वाला मुनि बहुत पाप का अर्जन करता है और माया-शल्य<sup>१</sup> का आचरण करता है।

३६. अपने समय का मरक्षण करता हुआ भिक्षु मुरा, मेरक<sup>२</sup> या अन्य किसी प्रकार का मादक रस आत्म-साक्षी से न पीए।

३७. जो मुनि—भुके कोई नहीं जानता (यो सोचता हुआ) एकान्त में स्तेन-वृत्ति से मादक रस पीता है, उसके दोषों को देखो; उसके मायाचरण को मुझने सुनो।

३८. उस भिक्षु के उन्मत्तता, माया-रूपा, अवश, अतृप्ति और सतत अमाधुता—ये दोष बढ़ते हैं।

३९. वह दुर्मति अपने दुष्कर्मों से चोर की भाँति सदा उद्विग्न रहता है। मद्यप-मुनि मरणान्त-काल में भी सवर<sup>३</sup> की आराधना नहीं कर पाता।

४०. वह न तो आचार्य की आराधना कर पाता है और न श्रमणों की भी। गृहस्थ भी उसे मद्यप मानते हैं; इसलिए उसकी गद्दी करते हैं।

४१. इस प्रकार अगुणों की प्रेक्षा (आसेवना) करने वाला और गुणों को वर्जने वाला मुनि मरणान्त-काल में भी संवर की आराधना नहीं कर पाता।

४२. जो मेघावी नपस्वी तप करता है, प्रणीत-रस को वर्जित है, मद्य-प्रमाद से विरत होता है, गर्व नहीं करता—

४३. उसके अनेक साधुओं द्वारा प्रशंसित, विपुल और अर्थ-सयुक्त कल्याण को स्वयं देखो और मैं उसकी कीर्तना करूँगा वह सुनो।

४४. इस प्रकार गुण की प्रेक्षा (आसेवना) करने वाला और अगुणों को वर्जने वाला, शुद्ध-भोजी मुनि मरणान्त-काल में भी सवर की आराधना करता है।

४५. वह आचार्य की आराधना करता है और श्रमणों की भी। गृहस्थ भी उसे शुद्ध-भोजी मानते हैं, इसलिए उसकी पूजा करते हैं।

१. शल्य का अर्थ है—सूक्ष्म काँटा। माया, निदान और मिथ्या दर्शन—ये तीन शल्य हैं। ये तीनों सतत चुभने वाले पाप कर्म हैं।

२. एक प्रकार की मदिरा।

३. समय, प्रत्याख्यान।

४६ जो मनुष्य तब का चार, बायीं वा दायीं, ऊपर वा नीचे, आचार का चोर और भाव का चोर होता है वह द्विर्विचित्र<sup>१</sup> अशुभ-कर्म करता है ।

४७ द्विर्विचित्र देश के लोको में उत्पन्न जीव देवत्व का चार भी नहीं बन नहीं जानता कि 'यह मेरे चित्त का चरित्र का चरित्र है ।'

४८ वही से बहुत शहर वह मनुष्य-मनि से आ उत्पन्नता (दूषण) अवस्था मरक या तिर्यकत्वानि को पादता, वही बोधि उत्पन्न दुःख होती है ।

४९ इस दोष का दोष कर जानतुम न बड़ा—मेधावी मुनि अनुभाव भी आपातता न करे ।

५० मंदत और कुछ (तत्त्वज्ञ) धर्मवा के मनीष निर्णयता की विमुक्ति सीन कर तबमें मुनिर्हित द्विर्विचित्रतामः विष्णु उन्मत्तमयम और गुण न लगाना है। कर विचरे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## छठा अध्याय

### महाचार कथा

१. ज्ञान-दर्शन में गणन, मनन और वप में सब, आत्म-सत्यता में मुक्त गणों की उपाय में समवर्तन है --
२. गदा और उनके अनाद्य, कायन और अक्षय उन्हें नष्टनाशपूर्वक प्रदान है—आगे आचार का नियम क्या है ?
३. ऐसा गुण होने पर वे स्विकारना, दान, सब प्राप्ति में के लिए मुखादा, निष्ठा में समान और विचक्षण गणों उन्हें बनाने है--
४. मोक्ष चाहने वाले निष्कलां के मोक्ष, दुर्धर और पूर्ण आचार का नियम मुक्त में गुणों ।
५. गणन में सब प्रकार का अरुण दुष्ट आचार निष्कलां-दर्शन के अनन्तता नहीं नही बना गया है । गणन-मान की आगधना करने वाले के लिए ऐसा आचार धर्मीन में न बनी था और न बनी भविष्य में होगा ।
६. बाण, दूध, अक्षय या सत्य—गनी मृदुभुजों की तिन गुणों की आगधना अष्ट और अष्टुटिन रूप में करने चाहिए, उन्हें यथार्थ रूप में गुणों ।

१. धम्मस्यवान—धर्म का अर्थ—प्रयोजन है—मोक्ष । उसी कामना करने वाले धर्मान् मोक्ष चाहने वाले ।

२. ज्ञानिक विराधना न करना 'अलण्ड' और पूर्णन. विराधना न करना 'अम्फुटित' कहलाता है ।

७ आचार के अक्षरहू स्थान हैं ।<sup>१</sup> जो वन उनमें से किसी एक भी स्थान की विरायना करता है, वह स्वयं से च्युत हो जाता है ।

८ महावीर ने उन अक्षरहू स्थानों में रहता स्थान अधिमा का कहा है । इनमें उन्होंने मृग्य रूप से देखा है । सब जीवों के प्रति मयम रहना अधिमा है ।

९ लोच में जिनने भी वन और अक्षरहू प्राणी हैं, निग्रह जान या अज्ञान में उनका हनन न करे और न कराए ।

१० नभा जीव जीवा चाहते हैं मरना नहीं । इसलिए प्राण-वध की भयानक जातकर निग्रह उसका वजन करते हैं ।

११ निग्रह अपने या दूसरा के लिए काच में या वन में पीड़ाकारक मार और अमृत्य न माने, न दूसरी से दुष्काण ।

१२ इन मनुष्ये लोच में दुषा-वार सब नापुखों द्वारा गहित है और वह प्राणिषों के लिए अधिस्वस्तीय है । अतः निग्रह अमृत्य न माने ।

१३ संयमी धुनि मजीव या निर्जीव, अल्प या बहुल, वस्तुमान मान वस्तु वा भी उसके अधिकारी की आज्ञा लिए बिना—

१४ स्वयं ग्रहण नहीं करता, दूसरी से ग्रहण नहीं कराता और ग्रहण करने वाले वा अनुमोदन भी नहीं करता ।

१५ अक्षरहू लोच में और, प्रकाश-अवक और दुष्कल व्यभिचर्य द्वारा आनेबिना है । अरिष्ट-भङ्ग के स्थान में अचन माने धुनि उनका आनेबन नहीं करते ।

१६ यह अक्षरहू अल्प वा बृहत् और महान् जीवों की राशि है । इसलिए निग्रह मृग्य के लक्षण का वर्जन करते हैं ।

१७ या महावीर के वचन में रत हैं वे धुनि दिङ्-मयन<sup>२</sup>, सामुद्र-मयण, लीक भी और इव-मुह वा संग्रह करने की इच्छा नहीं करते ।

१ ११ अहं वन—

अहिमा, ललट, आतेय, अक्षरहू, अक्षरहू और राजिभोजन-वजन ।

७-१२ अहं काय—दुष्करीय-सयम, अक्षरहू-सयम, तेजम्हाय-संयम, वायुकाय-संयम, वनस्पतिकाय-सयम और प्रसक्तय-सयम ।

१३ अक्षर-वर्जन १४ मृदि-आत्मन-वजन, १५ पर्वत-वर्जन, १६—गुहात्मन-निवृत्त-वजन, १७ स्नान-वजन, १८ विमुखा-वजन ।

२ अक्षरहू वजन ।



१८. जो कुछ भी संग्रह किया जाता है वह लोभ का ही प्रभाव है—ऐसा मैं मानता हूँ। जो श्रमण सन्निधि का कामी है वह गृहस्थ है, प्रव्रजित नहीं है।
१९. जो भी वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण हैं, उन्हें मुनि संयम और लज्जा की रक्षा के लिए ही रखते हैं और उनका उपयोग करते हैं।
२०. सब जीवों के श्राता जातपुत्र महावीर ने वस्त्र आदि को परिग्रह नहीं कहा है। मूर्च्छा परिग्रह है—ऐसा मर्हण (गणघर) ने कहा है।
२१. सब काल और सब क्षेत्रों में तीर्थकर उपधि (एक दूष्य—वस्त्र) के साथ प्रव्रजित होते हैं। प्रत्येक-बुद्ध<sup>१</sup>, जिनकल्पिक<sup>२</sup> आदि भी संयम की रक्षा के निमित्त उपधि (रजोहरण, मुख-वस्त्र आदि) ग्रहण करते हैं। वे उपधि पर तो क्या अपने शरीर पर भी श्रमत्व नहीं करते।
२२. अहो! सभी तीर्थकरों ने श्रमणों के लिए संयम के अनुकूल वृत्ति और देह-पालन के लिए एक बार भोजन (या राग-द्वेष रहित होंकर भोजन करना)—इस नित्य तप-कर्म का उपदेश दिया है।
२३. जो श्रम और स्थावर सूक्ष्म प्राणी हैं, उन्हें रात्रि में नहीं देवता हुआ निर्ग्रन्थ एषणा कैसे कर सकता है ?
२४. उदक से आर्द्र और बीज युक्त भोजन तथा जीवाकृत मार्ग—उन्हें दिन में टाला जा सकता है पर रात में उन्हें टालना शक्य नहीं—इसलिए निर्ग्रन्थ रात को भिक्षाचर्या कैसे कर सकता है ?
२५. जातपुत्र महावीर ने इस हिंसात्मक दोष को देखकर कहा—“जो निर्ग्रन्थ होते हैं वे रात्रि-भोजन नहीं करते, चारों प्रकार के आहार में से किसी भी प्रकार का आहार नहीं करते।”
२६. सुसमाहित संयमी मन, वचन, काया—इस त्रिविध करण और कुन, कारित एवं अनुमति—इस त्रिविध योग से पृथ्वीकाय की हिंसा नहीं करते।
२७. पृथ्वीकाय की हिंसा करता हुआ उनके आश्रित अनेक प्रकार के चाक्षुष (दृश्य), अचाक्षुष (अदृश्य) जन्म और स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है।
२८. इसलिए इसे दुर्गति-वर्धक दोष जानकर मुनि जीवन-पर्यन्त पृथ्वीकाय के समारम्भ (हिंसा) का वर्जन करे।

१. किसी एक निमित्त से संबुद्ध होने वाले साधक।

२. साधना की विशिष्ट अवस्था।

२९. मुक्तमाहिन सबकी धन, वचन, काया—इन विविध करण तथा कृत, वारित और अनुमति—इन विविध योग से अपूजाय की हिंसा नहीं करते ।

३०. अपूजाय की हिंसा करता हुआ उनका अधिकृत अनेक प्रकार के चातुष्य (हर्म्य), अवाप्तुष्य (महर्ष्य) वन और स्थावर प्राणिमा की हिंसा करता है ।

३१. इसलिए इसे दुर्मेति-वचक होय जानकर मुनि जीवन-वर्धन अपूजाय के समारम्भ (हिंसा) का वजन करे ।

३२. मुनि वाततम<sup>१</sup> ज्ञानि जलनि की इच्छा नहीं करते । क्योंकि वह हमारे समान स तीव्र वस्त्र और सत्र जोर से दुरात्म्य (दुःख) है ।

३३. वह पुत्र, पश्चिम, पश्चिम उत्तर, ऊपर, भक्त विना और विनिर्मायी में भी रहन करती है ।

३४. निःसन्देह वह हृदयार्थ (अग्नि) जीवों के निध आधान है । समयी प्रमाण और तारक निध इसका कुछ भी आरम्भ न करे ।

३५. (अग्नि जीवा के निध आधान है) इसलिए इसे मुक्ति-वचक होय जानकर मुनि जीवन-वर्धन अग्निवाय के समारम्भ का वजन करे ।

३६. तीर्थंकर वायु ने समारम्भ का अग्नि-समारम्भ के मुख्य ही मानते हैं । वह प्रचुर मात्रा-बहुल (वायु-पुत्र) है । वह अहंकार के वाता मुनिमा के द्वारा आमन्त्रित नहीं है ।

३७. इसलिए के जीवन, वन, वाता और वने से हवा करता तथा दूसरों से हवा करवाना नहीं चाहते ।

३८. जो भी वन, वायु कम्बल और दमाहरण है उनके द्वारा व वायु की उदीरणा नहीं करते, विष्णु वनमायुषक उनका परिभाष करते हैं ।

३९. (वायु-समारम्भ तावत्त-वृत्त) इसलिए इसे दुर्मेति-वचक होय जानकर मुनि जीवन-वर्धन वायुकाय के समारम्भ का वजन करे ।

४०. मुक्तमाहिन सबकी धन, वचन, काया—इन विविध करण तथा कृत, वारित और अनुमति—इन विविध योग से वनस्पति की हिंसा नहीं करते ।

४१. वनस्पति का हिंसा करता हुआ उनके अधिकृत अनेक प्रकार के चातुष्य (हर्म्य), अवाप्तुष्य (महर्ष्य) वन और स्थावर प्राणिमा की हिंसा करता है ।

४२. इगन्ति, इसे दुर्गन्ध-वर्धक दोष जानकर मुनि जीवन-पर्यन्त वनस्पति के समारम्भ का वर्जन करे ।
४३. मुममाहित रोगभी मन, वचन, वाया—इस प्रविष्य करण तथा कृम, कारित और अनुमति—इस प्रविष्य याग में व्रमकाय की हिमा नहीं करने ।
४४. व्रमकाय की हिमा करना हुआ उमके साथिन अनेक प्रकार के चाक्षुष (दृश्य), अचाक्षुष (अदृश्य) तम और स्थावर प्राणियों की हिमा करता है ।
४५. इगन्ति, इसे दुर्गन्ध-वर्धक दोष जानकर मुनि जीवन-पर्यन्त व्रमकाय के समारम्भ का वर्जन करे ।
४६. ऋषि के लिए जो आहार आदि चार (निम्न इनोकोवन) अव्यवर्ज्य है, उनका वर्जन करता हुआ मुनि मयम का पालन करे ।
४७. मुनि अपरपनीय पिष्ट, दम्या—व्रमति, घट्ट और पात्र को ग्रहण करने की इच्छा न करे किन्तु कारपनीय ग्रहण करे ।
४८. जो नित्याग्र<sup>१</sup>, क्रीत, ओद्देशिक और आहूत आहार ग्रहण करते हैं वे प्राणी-वध का अनुमोदन करने हैं—ऐसा महर्षि महावीर ने कहा है ।
४९. इसलिए धर्मजीवी, स्थितात्मा निर्ग्रन्थ श्रीत, ओद्देशिक और आहूत अदान, पान आदि का वर्जन करने है ।
५०. जो गृहस्थ के कामे के प्याने, कांसे के पात्र और कुण्डमोद<sup>२</sup> में अदान, पान आदि खाता है वह भ्रमण के आचार से भ्रष्ट होता है ।
५१. वर्तनों को संचित जल में धोने में और वर्तनों के धोए हुए पानी को डालने में प्राणियों की हिंसा होती है । तीर्थंकरों ने वही अवग्रम देखा है ।
५२. गृहस्थ के वर्तन में भोजन करने में 'पञ्चान्कर्म' और 'पुरःकर्म' की सम्भावना है । वह निर्ग्रन्थ के लिए कल्प्य नहीं है । इगन्ति, वे गृहस्थ के वर्तन में भोजन नहीं करते ।
५३. आर्यों (मुनियों) के लिए आसन्दी (मञ्चिका), पलंग, मञ्च (मवान) और आमालक (आराम कुर्सी) पर बैठना या सोना अनाचीर्ण है ।
५४. तीर्थंकरों के द्वारा प्रतिपादित विधियों का आचरण करने वाले निर्ग्रन्थ आसन्दी, पलंग, निपद्या (आगन) और पीडेका (विशेष स्थिति में उपभोग करना पडे तो) प्रतिलेखन किये बिना उन पर न बैठे और न सोए ।

१. आदरपूर्वक निमन्त्रित कर प्रतिदिन दिया जाने वाला ।

२. कांसे के बने कुण्डे के आकार वाले वर्तन ।

२२ भागन्दी आदि घन्टीर छिड़वाते होते हैं। इनमें प्राणिमों का प्रतिक्षण धरना कठिन होता है। इसलिये आठनी, वनम आदि पर बैठना या माना बजिन दिया गया है।

२६ विद्या के लिए प्रविष्ट जो मुनि गुरुत्व के घर में बैठता है वह इन प्रकार के ज्ञान बहु ज्ञाने बाल, अशोधि-धारण अनाचार को प्राप्त होता है।

२७ गुरुत्व के घर में बैठने से ब्रह्मचर्य—आचार का विनाश, प्राणिमों का अवधारण में बंध, विद्याधरों के अंतरात्मा और धरमात्मा की शोध उत्पन्न होता है—

२८ ब्रह्मचर्य अनुसंधान होता है और मनों के प्रति जका उत्पन्न होता है। यह (ब्रह्मचर्य विद्या) कृतीक बंधक स्थान है, इसलिये मुनि इनका दूर से बचन करते।

२९ ब्रह्मचर्य, धारणी और नास्ती—“न नीला म मे वा” का मायु गुरुत्व के घर में ही उत्पन्न होता है।

३० आरोग्यी या विराज मायु उत्पन्न करने का अधिवास बनता है उसके आचार का उत्पन्न होता है। उत्पन्न समय परिवर्तन होता है।

३१ यह बहुत स्पष्ट है कि ज्ञान भूमि और ब्रह्म-भूमि भूमि में गुरुत्व प्राणी होते हैं। ब्रह्मचर्य जका से स्थान करने वाला भिक्षु या उर्ध्व जका से स्थापित कर देता है।

३२ इसलिये मुनि शीघ्र या उत्पन्न जका से स्थान नहीं करते। वे धारण स्थान और अस्मात्-ज्ञान का धारण करते हैं।

३३ मुनि धारण का उत्पन्न करने के लिए गुरुत्व-भूमि ब्रह्म, नास्ती, ब्रह्मकेसर आदि का प्रयोग नहीं करते।

३४ ज्ञान, गुरुत्व, दीप्त-दीप्त और नभ धारण तथा संपूर्ण के निम्न मुनि को विमूढ से क्या प्रयोग होता है ?

३५ विमूढा के द्वारा भिक्षु विच्छेद (दाहक) जका का वर्णन करता है। उनसे वह दुग्धर संसार-सागर में विरता है।

१ गुरुत्व-भूमि का आकार, विवेचन इत्यादि।

२ गुरुत्व-भूमि।

३ ब्रह्म और केसर, विवेचन सुव्यवस्थित इत्यादि।

६६. विभूषा में प्रवृत्त मन को नीरवकाश विभूषा के मूल्य ही विजने कर्म के नष्टन का हेतु मानने हैं । यह प्रचुर मायज-वस्तु (पाप-पुण्य) है । यह छह पाप के पाता मुनियों द्वारा आमेयित नहीं है ।

६७. अमोहदर्शी, नग-मयम और ऋजुताम्य मूल में रत्न मुनि दरीर को कृप्य कर देने हैं । पुनस्तूत पाप का नाश करने हैं और नये पाप नहीं करने ।

६८. नदा उपसान्त, समना-रत्न, अकिञ्चन, आत्म-विद्यायुक्त यक्ष्मणी और पाता मुनि परहू ऋषि के नष्टना को नष्ट मरु रत्न टाकर मित्रि या सौधमार्जतंतक आदि विमानों को प्राप्त करने हैं ।

—ऐनामै कहता हूँ ।

## सातवा अध्याय

### वाक्यशुद्धि

१ प्रज्ञावान् मुनि चारों भाषाओं का जानकर वा के द्वारा विनय (शुद्ध प्रमाण) सीखे और दो सववा न बोले ।

२ वा अक्षयज्य-सत्य, सत्यस्य (विषय), स्यवा और अनत्याश्रया (अवधार) भाषा बुद्धा के द्वारा बनायीं हो, उसे प्रज्ञावान् मुनि न बोले ।

३ प्रज्ञावान् मुनि अनत्यास्यवा (अवधार भाषा) और सत्य भाषा—जो जनस्य स्यु और सत्येह रहित है उसे सीख विचार कर बोले ।

४ वह और मुख्य उस अनुज्ञात अक्षयज्यवा को भी न बोले जो अपने सामय वा यह अक्ष है वा दूसरा—दस प्रकार संविध्य बना देनी हो ।

५ जो मुख्य सत्य सीखने वाली असत्य वस्तु का साधय लेकर बालता है (मुख्यव्यपारी स्त्री को मुख्य कहना है) उनसे भी वह वाच से स्पृष्ट होता है तो फिर उसका क्या कहना जो माताम् स्यवा बोले ?

६ इसलिए—‘हम जानें,’ कहें, ‘हमारा अनुक कार्य हो जाएगा’ कि यह कहेंगा’ अथवा ‘यह (व्यक्ति) यह (कार्य) करेगा’—

७ यह और इस प्रकार की दूसरी भाषा जो भविष्य-सम्बन्धी होने के कारण (सफ़लता की दृष्टि से) पणित हो अथवा वतमान और अतीतकाल-सम्बन्धी अक्ष के बारे में पणित हो, उस भी औरमुख्य न बोले ।

८ अतीत, वतमान और अनागत काल सम्बन्धी विषय अर्थ की (सम्बन्ध प्रकार से) न जाने, उसे ‘यह इस प्रकार ही है’—ऐसा न बहे ।

९ अतीत, वतमान और अनागत काल के विषय अर्थ में शक्य हो, उसे ‘यह इस प्रकार ही है’—ऐसा न बहे ।

१० अतीत, वतमान और अनागत काल-सम्बन्धी जो अर्थ निश्चित हो (उत्तरकार म) ‘यह इस प्रकार ही है’—ऐसा बहे ।

११ इसी प्रकार पश्य और गहान् त्रुतीकपाठ करने वाली सत्य भाषा भी न बोले । क्योंकि इससे वाच-व्य, वा बह होता है ।

१२ इसी प्रकार जाने की जाना, अनुसक्त को नर्तक, रोगी को रोगी और चार वा और न बहे ।

१३. आचार (वचन-नियमन) सम्बन्धी भाव-दोष (चित्त के प्रद्वेष या प्रमद) को जानने वाला प्रज्ञावान् पुरुष पूर्व श्लोकोक्त अथवा इसी कोटि की दूसरी भाषा, जिसने दूसरे को चोट लगे—न बोले ।

१४. इसी प्रकार प्रज्ञावान् मुनि रे होल !, रे गोल !, ओ कुत्ता !, ओ बृषल !, ओ द्रमक !, ओ दुर्भंग !, —ऐसा न बोले ।

१५. हे आर्यिके ! (हे दादी !, हे नानी !), हे प्रार्यिके ! (हे परदादी ! हे परनानी !), हे अम्ब ! (हे मा), हे मौनी !, हे बुआ !, हे भानजी !, हे पुत्री !, हे पोती !—

१६. हे हले !, हे हली !, हे अन्ने !, हे भट्टे !, हे स्वामिनि !, हे गोमिनि !, हे होल !, हे गोल !, हे बृषल !—इस प्रकार स्त्रियों को आमन्त्रित न करे ।

१७. किन्तु प्रयोजनवश यथायोग्य गुण-दोष का विचार कर एक बार या बार-बार उन्हें उनके नाम या गोत्र में आमन्त्रित करे ।

१८. हे आर्यक ! (हे दादा !, हे नाना), हे प्रार्यक ! (हे परदादा !, हे परनाना !), हे पिता !, हे चाचा !, हे मामा !, हे भानजा !, हे पुत्र !, हे पोता !—

१९. हे हल !, हे अन्न !, हे भट्ट !, हे स्वामिन् !, हे गोमिन् !, हे होल !, हे गोल !, हे बृषल !—इस प्रकार पुरुष को आमन्त्रित न करे ।

२०. किन्तु (प्रयोजनवश) यथायोग्य गुण-दोष का विचार कर एक बार या बार-बार उन्हें उनके नाम या गोत्र में आमन्त्रित करे ।

२१. पचेन्द्रिय प्राणियों के बारे में जब तक—यह स्त्री है या पुरुष—ऐसा न जान जाए तब तक गाय की जाति, घोड़े की जाति—इस प्रकार बोले ।

२२. इसी प्रकार मनुष्य, पशु-पक्षी और सर्प की (देख यह) स्थूल, प्रमेदुर-वध्य (या बाह्य) अथवा पाक्य है, ऐसा न कहे ।

१. ये सब अवज्ञा-सूचक-आमन्त्रण शब्द हैं—होल—निष्ठुर आमन्त्रण ।

गोल—जारपुत्र । बृषल—शूद्र । द्रमक—रंग । दुर्भंग—भाग्यहीन ।

२. महाराष्ट्र में 'हले' और 'अन्ने' ये तरुण स्त्री के लिए सम्बोधन शब्द हैं । लाटदेश में उसके लिए, 'हला' शब्द का प्रयोग होता था । 'भट्टे'—

पुत्र-रहित स्त्री के लिए । 'सामिणी' 'गोमिणी'—सम्मान सूचक सम्बोधन शब्द । 'होले' 'गोल' और 'बृषले'—गोल देश में प्रयुक्त प्रिय-आमन्त्रण वचन

२३ (प्रयोजनवश कहना हो ता) उस परिकल्प कहा जा सकता है, उपविष्ट कहा जा सकता है अथवा संज्ञान (बुद्धि), प्रीति (आहार आदि में लगे) और महाकाय कहा जा सकता है ।

२४ इसी प्रकार प्रजावान् मुनि मार्गें सूझने योग्य हैं, वेद धर्मन करने योग्य है, बह्म करने योग्य है और स्व-योग्य है—इस प्रकार न बोले ।

२५ (प्रयोजनवश कहना हो ता) एक बुद्धि है, चतुर्बुद्धि देने वाली है, वेद छात्र है, कहा है अथवा महान्—पुण्य की बह्म करने वाला है—यों कहा जा सकता है ।

२६ इसी प्रकार उद्यान पक्ष और वन में जा बहुत बड़े वृक्षों की देव प्रजावान् मुनि वा न बड़े—

२७ (वे वृक्ष) प्राणाद, स्पर्श, ग्राह्य (नगर-द्वार) घर, परिधि, अग्राही नीचा और अन्य की कड़ी के लिए उपयुक्त (पर्याप्त या समर्थ) हैं ।

२८ (वे वृक्ष) पीठ बाण्डाणी इन गरिष्ठ, काष्ठ, नाभि (गहिरा का अथवा भाग) अथवा अंतरा के उपयुक्त है ।

२९ (इन वृक्षों में) आसन गवन, पा और उपयुक्त के उपयुक्त कुछ (बाण्ड) है—इस प्रकार प्रजावान् मुनि या प्रजावान् निम्न न बने ।

३० इसी प्रकार उद्यान पक्ष और वन में जा बहुत बड़े वृक्षों का देव (प्रयोजनवश कहना हो ता) प्रजावान् निम्न यों बड़े—

३१ वे वृक्ष उलथ जाते हैं, पाते हैं महाकाय (बह्म विस्तार वाले अथवा स्व-वृक्ष) हैं योग्य बाने हैं और वनीय हैं ।

३२ तथा वे वृक्ष पक्ष हैं तथा वर लाते योग्य हैं—इस प्रकार न बड़े ।

(तथा वे वृक्ष) वेनीय (अधिकतर लाते योग्य हैं), इनमें वृक्षों नहीं पड़ी हैं, व की वृक्ष करने योग्य हैं (कॉक करने योग्य हैं)—इस प्रकार न बड़े ।

३३ (प्रयोजनवश कहना हो ता) व आश्रय अथवा वर वरने में अतिसर है वृत्तिर्विल (प्रत्येक निष्पन्न) एक बाने हैं, बह्म-मय (एक भाग

१ परिधि—नगरद्वार की आसन्न ।

२ अग्राही—महोद्वार की आसन्न ।

३ भविष्य—बोले हुए वृक्ष को लग करने के लिए उपयोग में आने वाला वृक्ष का एक उपकरण ।









## आठवीं अध्यायन

### आचार-प्रणिधि

- १ आचार-प्रणिधि<sup>१</sup> को वाकर मित्रु को विम प्रकार (वा) करना चाहिए वह में नहोना । अनुक्रमपूर्वक मुखस मुखो ।
- २ पुष्पी, उदक अग्नि वायु सोमपर्वण (मूल से बीज तक) वृण-वण और वन प्राणो—य बीच है—तेना महवि महावीर ने कहा है ।
- ३ मित्रु का मन, वचन और वाचा से उनके प्रति मन्त्र अहिमक होना चाहिए । इस प्रकार अहिंसक रहने वाला सद्यः (मनवी) होता है ।
- ४ भुनमाहिन सद्यसी तीन परण और तीन योग के पुष्पी, मिति (वराह) विना और हेम का भेदन न करे और न उन्हें दूरे दे ।
- ५ भुनि मुख पुष्पी<sup>२</sup> और सचित्त रज न ममृष्ट आसन पर न बैठे । अचित्त पुष्पी पर प्रमादन भर और वह मित्रवी हा उसवी अनुमति लेकर बैठे ।
- ६ संयमी धीमान्ध, आन, बरसात के वन और हिम का सेवन न करे । सप्त होने पर वा प्रायुक्त हो गया हा बीस अक से ।
- ७ भुनि मन में भीम अपने घरीर को न बाधे और न मन । घरीर की स्याभून (भीगा हुआ) देत कर उसका स्पर्श न करे ।
- ८ भुनि भगार, अग्नि, अवि और ज्योतिर्माहिन असात (जनती लकड़ी) को न प्रदीप्त करे, न स्पष्ट कर और न बुझाए ।
- ९ भुनि बीजन, वन, धाना या वन से अपने वराह अपना बाहरी पुद्गला पर हवा न डाले ।
- १० भुनि मुख बृत्त सवा किसी भी (बृत्त आदि क) पल या मुख का छेदन न करे और विविध प्रकार क सचित्त बीमा भी मन से भी इच्छा न करे ।
- ११ भुनि वन-निपुञ्ज के बीच-बीच, हरित, उदक—वनस्पतिविष वनस्पति, उत्तिग—सपदान और काई पर चढ़ा न रहे ।

१ आचार की निधि, आचार में हुई मानसिक व्यवस्था ।—

२ मास से अनुपहन पुष्पी या मुख भूषण ।

१२. मुनि वचन अथवा काया ने उस प्राणिमयी की हिंसा न करे। सब जीवों के बंध से उबरत होकर विभिन्न प्रकार वाले जगत् को देने—आत्मोपम्य दृष्टि से देने।

१३. मयमी मुनि आठ प्रकार के सूक्ष्म (गरीर वाले जीवों) को देख कर बैठ, खड़ा हो और सोये। इन सूक्ष्म-गरीर वाले जीवों को जानने पर ही कोई सब जीवों की दया का अधिकारी होता है।

१४. वे आठ सूक्ष्म कौन-कौन हैं? मयमी शिष्य यह पूछे तब मेवावी और विचक्षण आचार्य बहे कि वे ये हैं—

१५. स्नेह, पुष्प, प्राण, उत्तिग<sup>१</sup>, काई, बीज, हरित और अण्ड—ये आठ प्रकार के सूक्ष्म हैं।

१६. सब इन्द्रियों ने ममा<sup>२</sup> हेतु साधु इस प्रकार इन सूक्ष्म जीवों को सब प्रकार से जानकर अप्रनस्त-भाव से मदा यतना करे।

१७. मुनि पात्र, कम्बल, धन्या, उच्चार-भूमि, संस्तारक अथवा आसन का यथासमय प्रमाणोपेत प्रतिलेखन करे।

१८. मयमी मुनि प्रामुक (जीव रहित) भूमि का प्रतिलेखन कर वहाँ उच्चार-प्रस्रवण, श्लेष्म, नाक के मूँल और शरीर के मूँल का उत्सर्ग करे।

१९. मुनि जल या भोजन के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करके उचित स्थान पर खड़ा रहे, परिमित बोले और रूप में मन न करे।

२०. मिथु कानों से बहुत नुनता है, आँखों से बहुत देखता है। किन्तु मत्र देखे और मुने का कहना उनके लिए उचित नहीं।

२१. नुनी हड्डि या देखी हुई घटना के बारे में साधु औपधातिक (पीडा-कारक) वचन न कहे और किसी उपाय से गृहस्थोचितकर्म का समाचरण न करे।

२२. किसी के पूछने पर या बिना पूछे यह नरस है, यह नीरस है, यह अच्छा है, यह बुरा है—ऐसा न कहे और सरस या नीरम आहार मिला या न मिला यह भी न कहे।

२३. भोजन में गृह होकर विशिष्ट घरों में न जाए किन्तु वाचालता से रहित होकर उछ (अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा) ले। अप्रामुक, क्रीत, औद्देशिक और आहत आहार प्रमादवश या जाने पर भी न खाए।

२४. मयमी अणुमात्र भी नन्निवि (मन्त्रय) न करे। वह सुवाजीवी

(निराश-जीवी) ब्रह्मचर्य (बलिष्ठ) और अन्ध के आश्रित रहे—कुछ  
या धर्म के आश्रित न रहे ।

२१ बुद्धि व्यक्तित्व सुसंगत, अन्य इच्छा-बाना और बन्धुगार से मूल  
ज्ञाने बाना ।। यह जिन-बानन की मूलरूपे बान न करे ।

२६ बानी व निग मुपकर पद्यों में प्रेम न करे । दासगु भीर बना  
स्वर्ग वा काया न महन कर ।

२७ सुषा व्यास, कुम्भ्या (विषम भूमि पर मोना) चीन, उष्ण, भरति और यय को अर्धरात्रि चित्त से सहन कर। स्वादि मेह में उष्ण कष्ट का महान करना महात्म्य का हनुमान है ।

२५ भूर्गोष्म श मेहरकुम मुखपुत्र में न निजक मात सह लक्ष्म प्रहार के माहार की मन न थी हृष्ट न गये ।

२६ आहार न विनये वा अरम आहार विनये पर प्रणाम न कर, वरन न बने । अन्नाभ्यामी विनयामी और कहर वा दमन करन बाधा हू । पोड़ा आहार पावद बाधा की निम्न न बने ।

३०. कृषि का निरन्धार न करे । अपना उत्पन्न न खिचाए । धन, मान, ज्ञान, प्रशिक्षण और बुद्धि का सदुपयोग करे ।

११. जान वा अज्ञान के कोई अन्धम-भाव कर बैठे तो अपना आत्मा वा उन्नत भूला हुआ है, फिर दुमरी बार-बार बज रहे ।

१२ अनाचार का नेपथ्य कर उस न सिखाय और न अन्धीराग करे किन्तु सदा दक्षिण हाथ अलिप्त और त्रिभुजित रहे ।

३१. मुनि ब्रह्मन् आत्मा आचार्य के शब्द की श्रद्धा कर। (आचार्य जो बड़े) उसे वाग्दा के ग्रहण कर सर्व के जगत्वा आचरण करे।

३८ मुमुक्षु जीवन का अनिरय और अन्तही जानु की परिमित ज्ञान तथा निश्चिन्ता-मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर भीषा से निवृत्त बन ।

(मानव बल, पशुबल, यन्त्रा और आधुनिक बने हुए हर क्षेत्र और बाल का मानवर अपनी भाषा का सक्ति क अनुसार तब आदि न निवादिन बने।)

३२. जब एक कुत्ता बाइलिंग न कर स्याबि न करे और इच्छा रीति न हो, जब एक बिल बा आधरण करे ।

१६ "बाप माय माय" और लोभ—ये बात वा कहानि सार है । आत्मा वा शिव चाहते बाधा इन चारा दूषा को छेड़े ।

३७. क्रोध प्रीति का नाश करना है, मान विनय का नाश करने वाला है, माया मैत्री का विनाश करती है और लोभ सब (प्रीति, विनय और मैत्री) का नाश करने वाला है।

३८. उदय से क्रोध का हनन करें, मृदुता से मान को जीन, ऋजुभाव से माया को और मन्तोष से लोभ को जीते।

३९. अनिगृहीत क्रोध और मान, प्रवर्द्धमान माया और लोभ—ये चारों मंजिल्लट कषाय पुनर्जन्मरूपी बृक्ष की जड़ों का मिचन करते हैं।

४०. पूजनीयों (आचार्य, उपाध्याय और दीक्षापर्याय में ज्येष्ठ नाधुओं) के प्रति विनय का प्रयोग करे। ध्रुवशीलता (अष्टादशमङ्गल शीलाङ्गों) की कभी हानि न करे। शूर्म की तरह आलीन-गुप्त<sup>१</sup> और प्रलीनगुप्त<sup>२</sup> हो तप और सयम में पराक्रम करे।

४१. मुनि निद्रा को बहुमान न दे, अट्टहास का वर्जन करे, मैथुन की कथा में रमण न करे, सदा स्वाध्याय में रत रहे।

४२. मुनि आलस्यरहित हो श्रमण-धर्म में योग (मन, वचन और काया) का यथोचित प्रयोग करे। श्रमण धर्म में नगा दृजा मुनि अनुत्तर फल को प्राप्त होता है।

४३. जिस श्रमण-धर्म के द्वारा दृहलोक और परलोक में हिन होना है, मृत्यु के पश्चात् मुक्ति प्राप्त होती है, उसकी प्राप्ति के लिए वह बहुश्रुत को पर्युषामना करे और अर्थ-विनिदधय के लिए प्रश्न करे।

४४. जितेन्द्रिय मुनि हाथ, पैर और शरीर को समयित कर, आलीन (न अतिदूर और न अतिनिकट) और गुप्त (मन और वाणी में सयत) हो कर गुरु के समीप बैठे।

४५. आचार्य आदि के बराबर न बैठे, आगे और पीछे भी न बैठे। गुरु के समीप उनके उस से अपना उस सटाकर न बैठे।

४६. दिना पूछे न बोले, बीच में न बोले, चुगली न राए और कपटपूर्ण असत्य का वर्जन करे।

४७. जिससे अप्रीति उत्पन्न हो और दूसरा शीघ्र कुपित हो ऐसी अहितकर भाषा सर्वथा न बोले।

१. काय-चेष्टा का निरोध।

२. प्रयोजनवश यतनापूर्वक काया की प्रवृत्ति।

४८ आत्मवान इष्ट परिचित अनन्ति, प्रतिपुर्ण, स्वस्थ, परिचित, वाचालनारहित और अवरहित माया मान ।

४९ आचारान और प्रवेष्टि—अद्वैती का कारण करने माना तथा दृष्टिवाद का वदन माना मुनि मोक्षों में स्वानि दुभा है (उनने बचन, निग और वन का विपरीत विद्या है) यह जानकर मुनि उभरा उदाहरण न करे ।

५० नवम स्वप्नरूप बनीकरण, मग्न और वेपथु—वे बीचों की हिता के स्वान हैं, इमनिष्ट मुनि गुरुधर्मों को इनके वनाकन न बनाए ।

५१ मुनि दुमरा क लिए वन हुए गुरु, वपन और आत्मन का लेवन करे । वह गुरु मग्न-भूत-विमग्न की भूमि से मुक्त तथा स्त्री और वपु में रहित हा ।

५२ वा गच्छाम् स्वान ह् वही मुनि वेचन निव्या के बीच व्याप्याम न है । मुनि गुरुधर्म न दग्धिव न करे पश्चिमभाषुओं न करे ।

५३ निम प्रकार मुने के वपने का मग्न विस्ती में भव हाता है, उही प्रकार कच्छाचारी को स्त्री के गरीर न भव हाता है ।

५४ विम विमि (निव्या के विद्या न विमि विमि) या आधुपनी से मुनिग्नित स्त्री का दृष्टकी स्थापन न हैन । उनपर दृष्टि वह वाये ही उने वैसे गीच में वीने मच्छाह के मूव पर बनी हुई दृष्टि स्वय निव जाती है ।

५५ विमके हाच-वेर बटे हुए हों को माक-मान से विमन हा वीही ही वप की बुरी मारी से भी कच्छाचारी हुए रह ।

५६ आत्मनवरी पुरुष के लिए विमुषा, स्त्री का वपन और शरीररन का आत्मन गच्छाचारी के समान है ।

५७ निव्या क अन प्रवेष्टन, मग्नान, वाच-आदिन (वपुर्ण बीली) और वपन की नवन—उनकी आर व्याम न है, क्योंकि ये सचवाच राग को बहाने माने हैं ।

५८ घटा मग्न वप, रन और रान—उन गुरुधर्म के परिचयन को अनिष्ट जानकर कच्छाचारी मनीष विपरीत में राव मान न करे ।

५९ दृष्टिवाद के विषयमूत्र पुरुषों के परिचयन को जैसा है वैया भाषकर अनो भाषा का नग्याम कर मुष्कारहित हा विहार करे ।

६० निम घटा में उनम प्रवेष्टा-व्याम के लिए वर में निव्या है उस घटा का पुरुषन वपन मग्न और आचय समन मुषों का अनुपानन करे ।

६१ वा मुनि इन वर, नवन-वार और व्याप्याम-मान से मग्न प्रवेष्टन



रहता है वह अपनी ओर दूसरों की रक्षा करने में उनी प्रकार ममत्वं होता है जिस प्रकार सेना से घिर जाने पर आयुधों में नुगज्जित बौर ।

६२. स्वाध्याय और नदध्यान में लीन, श्रान्ता, निष्पाप मन वाले और तप मे रत मुनि का पूर्व उचित मन उगी प्रकार त्रिशुद्ध होता है जिन प्रकार अग्नि द्वारा तपाए हुए सोने का मल ।

६३. जो पूर्वोक्त गुणों मे युक्त है, दुःखों को सहन करने वाला है, जितेन्द्रिय है, श्रुतवान् है, समत्वरहित और अकिञ्चन है, वह कर्मरपी बादलों के दूर होने पर उगी प्रकार शोभित होता है जिस प्रकार सम्पूर्ण अश्रपटल मे विद्युत्त चन्द्रमा ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।



८. कोई सिर ने पर्वत का भेदन करने की इच्छा करता है, सोए हुए सिंह को जगाता है और भाले की नोक पर प्रहार करना है, गुरु की आशातना इनके समान है ।

९. सम्भव है सिर से पर्वत को भी भेद डाले, सम्भव है सिंह कुपित होने पर भी न खाए और यह भी सम्भव है कि भाले की नोक भी भेदन न करे, पर गुरु की अवहेलना ने मोक्ष सम्भव नहीं है ।

१०. आचार्यपाद के अप्रसन्न होने पर बोधि-लाभ नहीं होता । आशातना से मोक्ष नहीं मिलता इसलिए मोक्ष-मुक्त चाहने वाला मुनि गुरु-कृपा के अभिमुख रहे ।

११. जैसे आहिताग्नि ग्राह्य विविध आहुति और मन्त्रपदों से अभिषिक्त अग्नि को नमस्कार करता है, वैसे ही शिष्य अनन्तज्ञान से सम्पन्न होते हुए भी आचार्य की विनयपूर्वक सेवा करे ।

१२. जिसके समीप धर्मपदों की मिछा लेता है उसके समीप विनय का प्रयोग करे । सिर को झुकाकर, हाथों को जोड़कर (पञ्चांग-वन्दन कर<sup>१</sup>) काया, वाणी और मन से सदा सत्कार करे ।

१३. लज्जा, दया, संयम और ब्रह्मचर्य—ये कल्याणभागी साधु के लिए विशोधि-स्थल हैं । जो गुरु मुझे उनकी सतत शिक्षा देते हैं उनकी मैं सतत पूजा करता हूँ ।

१४. जैसे दिन में प्रदीप्त होता हुआ सूर्य सम्पूर्ण भारत (भरत-क्षेत्र) को प्रकाशित करता है, वैसे ही श्रुत, शील और बुद्धि से सम्पन्न आचार्य विद्वत् को प्रकाशित करते हैं और जिस प्रकार देवताओं के बीच इन्द्र शोभित होता है, उसी प्रकार साधुओं के बीच आचार्य मुशोभित होते हैं ।

१५. जिस प्रकार बादलों से भुक्त विमल आकाश में नक्षत्र और तारागण से परिवृत कार्तिक-पूर्णिमा में उदित चन्द्रमा शोभित होता है, उसी प्रकार भिक्षुओं के बीच गणी (आचार्य) शोभित होते हैं ।

१६. अनुत्तर ज्ञान आदि गुणों की सम्प्राप्ति की इच्छा रखने वाला मुनि

१. दोनों घुटनों को भूमि पर टिका कर, दोनों हाथों को भूमि पर रखकर, उस पर अपना मस्तक रखे—यह पञ्चांग (दो पैर, दो हाथ और एक सिर) वन्दन की विधि है ।

मित्रता का अर्थी हाकर सम्पादित, सुख, दीर्घ और पुत्रि के महान् सागर  
मार्ग की स्थापना करने वाले साधन की प्राप्ति करने और उन्हें प्रवर्धन करे ।

१० मेराही मुनि इन कृपाविशेषों को अनुसर अत्यन्त रहना हुआ साधने  
की प्रवृत्ति करे । इन प्रकार का अनेक कृपा की प्राप्ति करने और अनुसर मित्रि  
की प्राप्ति करना है ।

—देगा मैं बहुत ।







## तीर्थाध्ययन

### विनय-समाधि

(तीसरा उद्देशक)

१. सैत आदिनाभि अग्नि की मुखवा करना हुआ जागरूक रहता है जैसे ही वा आचार की मुखवा करता हुआ जागरूक रहता है, वा आचार के आलोचित (दृष्टि-विशेष) और इन्तित (नैवेद्य) की भावकर उनके अग्निप्राय की आराधना करता है वह पूज्य है ।

२. वा आचार के लिए विनय का प्रयोग करता है, जो आचार को मुक्ति की दृष्टि रचना हुआ उनसे वाक्य का ग्रहण कर उद्देश के अनुसृत आचरण करता है, जो गुरु की आज्ञातवा नहीं करता, वह पूज्य है ।

३. वा अल्पवयस्क होने पर भी शीला-वास में उपेक्षित है—उन पूजनीय साधुवा के अग्नि जो विनय का प्रयोग करता है, नम्र व्यवहार करता है, संयमाधी है, गुरु के नमोप रहने वाला है और जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है, वह पूज्य है ।

४. वा जीवन-वापन के लिए विद्युत् नामुशयिक अज्ञान-उच्छ [मिथा] की सेवा चर्चा करता है, जो मिथा न मिलने पर क्षिप्त नहीं होता, मिलने पर स्थायी नहीं करता, वह पूज्य है ।

५. संसारक, सम्मा, वागम जल और पानी का अधिक लाभ होने पर भी जो अपेक्षित होता है, अपने-आप को समुष्ट रमता है और जो उत्तोष-प्रधान जीवन में रत है, वह पूज्य है ।

६. पुष्प वन आदि की आज्ञा से लोहमय कीटों की सहन कर सकता है परन्तु जो किसी प्रकार की आज्ञा रहे बिना जानों में बैठते हुए वनन रूपी कीटों को सहन करता है, वह पूज्य है ।

७. लोहमय वटि घसकाऊ तक दुःख-दायी होते हैं और वे भी शरीर में सहनशया निवास के वा उठते हैं किन्तु दुःखचननी वटि सहनशया नहीं निवास के वा सकने वाले, वेद की परम्परा को बढ़ाने वाले और महाभयानक होते हैं ।



८. मामने में आने हुए, वनन के प्रहार कालों का पहुँच कर टोर्षणस्थ उत्पन्न करने हैं। जो दूर व्याभिगा में जघनी, जिनेन्द्रिय पृथ्वी में मग्न भवे है—तेना मानकर उन्हें मर्दन करता है, यह पूज्य है।

९. जो पी देने अयणवाद नहीं बोलता, जो मामने पिरोती वनन नहीं करता, जो निम्नवर्गाणि और अप्रियवर्गाणि भाग्य नहीं बोलता, यह पूज्य है।

१०. जो श्वश्रुतुष नहीं होता, दम्भकार आदि के चमत्कार प्रदर्शित नहीं करना, माया नहीं करना, पुण्य नहीं करना, शीमन्नाय में नाचना नहीं करना, दूसरों में आत्ममन्दाया नहीं करवाना स्वयं भी आत्ममन्दाया नहीं करना और जो कुतूहल नहीं करना, यह पूज्य है।

११. गुरुओं में मानु राना है और श्वश्रुतों में प्रमाण। इनदिग् गाढु-गुरुओं—गाढुता को छटन कर और अमाधु-गुरुओं—प्रमाधुता को छोड़। आत्मा को आत्मा में जान कर जो राग और द्वेष में मग्न (मध्यस्थ) रहता है, यह पूज्य है।

१२. बालक या दूढ़, स्त्री या पुण्य, प्रजित या दूहस्थ को दुष्परित की याद दिलाकर जो लज्जित नहीं करता, उनको निश्च नहीं करना, जो गर्व और श्रोत्र का त्याग करना है, यह पूज्य है।

१३. अम्युस्थान के द्वारा सम्मानित होने जाने पर जो निम्नों को मर्दन सम्मानित करते हैं—श्रुत ब्रह्म के लिए प्रेरित करने हैं, जिना जैम अर्थात् वन्धा को यत्नपूर्वक योग्य कृष्ण में स्थापित करता है, जैसे ही जो आचार्य अपने शिष्यों को योग्य मार्ग में स्थापित करने हैं, उन माननीय, तपस्वी, जिनेन्द्रिय और सत्यरत आचार्य का जो सम्मान करना है, यह पूज्य है।

१४. जो मेधावी मुनि उन गृहमागर गुरुओं के गुणापिन मुनिकर इनका आचरण करता है, पाँच महाव्रतों में इन, मन, वाणी और शरीर से गुण तथा क्रोध, मान, माया और लोभ को दूर करता है, यह पूज्य है।

१५. इस लोक में गुरु की मदन सेवा कर, चित्तमन्-निपुण (आगत-निपुण), और अनिगम (चिन्तन-प्रतिपत्ति) में इन व मुनि पहले लिये हुए रत्न और मूल को कम्पित कर प्रधानयुक्त अनुपम गति को प्राप्त होता है।

—तेना में कहता है।

# नीचा अध्यायन विनय-समाधि (नीचा उद्देश्य)

आध्यात्मिक ! मैं मुना है उन चरवान (प्रज्ञात आचार्य प्रभवस्वामी) ने इस प्रकार कहा—इस निर्वच-प्रवचन में स्वयं प्रभववान ने विनय-समाधि के चार स्थानों का प्रज्ञापन किया है ।

के विनय-समाधि के चार स्थान कौन से हैं जिनका स्वयं प्रभववान ने प्रज्ञापन किया है ?

के विनय-समाधि के चार प्रकार से हैं जिनका स्वयं प्रभववान ने प्रज्ञापन किया है, जमे—विनय-समाधि, धृत समाधि, तप-समाधि और आचार-समाधि ।

१ जो विनय-समाधि होती है के पण्डित पुरुष अपनी आत्मा की सदा विनय धृत, तप और आचार में लीन किए रहने है ।

विनय-समाधि के चार प्रकार हैं जमे—

१ शिष्य आचार्य के अनुशासन की मुना चाहता है ।

२ अनुशासन की मन्त्र के स्वीकार करता है ।

३ वेद (ज्ञान) की आराधना करता है अथवा (अनुशासन) के अनुष्ठान आचरण कर आचार्य की वाणी का शक्त बनाना है ।

४ आत्मोन्नति (यह) नहीं करता—यह अनुर्थ यह है और यही (विनय-समाधि के प्रकार में) एक स्थान है—

मत्स्यी मुनि हिमालयानन की अभिप्राय करता है—मुना चाहता है, धृत करता है—अनुशासन की मन्त्र के स्वीकार करता है अनुशासन के अनुष्ठान आचरण करना है मैं विनय-समाधि मनुष्य है—इस प्रकार के एक के उपाय के उन्नत नहीं होता ।

धृत-समाधि के चार प्रकार हैं जमे—

१ 'मुने धृत प्राप्ति हावा' इसी अध्यायन करना चाहिए ।

२. 'मैं तत्ताप्र-चिन्त होऊँगा', इसलिए अध्ययन करना चाहिए ।
३. 'मैं आत्मा को धर्म में स्थापित करूँगा', इसलिए अध्ययन करना चाहिए ।
४. 'मैं धर्म में स्थित होकर दूसरों को उसमें स्थापित करूँगा', इसलिए अध्ययन करना चाहिए । यह चतुर्थ पद है और यही (धुन-ममाधि के प्रकरण में) एक श्लोक है—

अध्ययन के द्वारा ज्ञान होता है, जिस की तत्ताप्रता होती है, धर्म में स्थित होता है और दूसरों को स्थिर करता है तथा अनेक प्रकार के धुन का अध्ययन कर धुन-ममाधि में रत हो जाता है ।

तप-ममाधि के चार प्रकार हैं, जैसे—

१. इहलोक (यत्नमान जीवन की भोगाभिवापा) के निमित्त तप नहीं करना चाहिए ।
२. परलोक (पारलौकिक भोगाभिवापा) के निमित्त तप नहीं करना चाहिए ।
३. कीर्ति, वर्ण<sup>१</sup>, शब्द<sup>२</sup>, और श्लोक<sup>३</sup> के लिए तप नहीं करना चाहिए ।
४. निर्जरा के अतिरिक्त अन्य किमी उद्देश्य में तप नहीं करना चाहिए यह चतुर्थ पद है और यही (तप-ममाधि के प्रकरण में) एक श्लोक है—

सदा विविध गुण बाने तप में रत रहने वाला मुनि पीद्गमिक प्रतिफल की इच्छा में रहित होता है । वह केवल निर्जरा का अर्थी होता है, तप के द्वारा पुराने कर्मों का विनाश करता है और तप-ममाधि में मदा युक्त हो जाता है ।

आचार-समाधि के चार प्रकार हैं, जैसे—

१. इहलोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना चाहिए ।
२. परलोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना चाहिए ।
३. कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना चाहिए ।

१. कीर्ति—सर्वदिग्ग्यापी प्रशंसा ।

२. वर्ण—एकदिग्ग्यापी प्रशंसा ।

३. शब्द—अर्धदिग्ग्यापी प्रशंसा ।

४. श्लोक—स्यानीय प्रशंसा ।

४ आहुत-हेतु (संहर और निहरा) के अन्य किसी भी उद्देश्य से आचार का पालन नहीं करना चाहिए—यह अनुभव है और यही (आचार-ममाधि के प्रकरण में) एक श्लोक है—

५ जो जिनवचन में रत होता है, जो प्रणाम नहीं करता, जो भूतार्थ में अनिपूर्ण होता है, जो असंयत भोगार्थी होता है वह आचार-ममाधि के द्वारा सहज हाकर इन्द्रिय और मन का समन करने वाला तथा मोक्ष को निवट करने वाला होता है ।

६ जो चारा ममाधिओं को जानकर बुद्धिगुण और सुसमाहित चित्त वाला होता है, वह अपने लिए विपुल हितकर और पुनः पुनः मोक्ष त्याग का प्राप्ति करता है ।

७ वह जन्म मरण में मुक्त होता है नरक आदि अवस्थानों को पूर्णतः त्याग देता है । इन प्रकार वह या तो सास्वत निष्ठ भवता अथवा कम या कम बहुदिक वेध होता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## समिक्षा

१. जो गीर्णकर के दाहेन में निर्यमज वन (प्रवर्ग) है, निर्यमज प्रवचन में मदा नमाहित-विष होता है, जो नियमों के असीन नहीं जाता, जो धर्म हृत् को साधन नहीं पाता (मान्य भोगों का पुनः मेरन नहीं करना) यह निधु है।

२. जो पूरुषी का मनन न करता है और न कराता है, जो धर्मोदय न पाता है और न पिलाता है, जन्म के समान मुर्गोदय धर्म को न मन्नाता है और न जलनाता है—यह निधु है।

३. जो परो आदि में हवा न करता है और न कराता है, जो रग्नि का छेदन न करता है और न कराता है, जो धर्मों का मदा विमर्जन करता है (उनके मस्तरण से दूर रहता है), जो मन्त्रिन का आहार नहीं करता—यह निधु है।

४. भोजन बनाने में पृथ्वी, तृण और वायु के आश्रय में गेहूँ, गन्-स्वावरज्यों का बच होता है। अन्तः जो अहिंसित (मर्त में निमित्त बना हुआ) नहीं पाता तथा जो स्वयं न पकाना है और न दूधों में पकवाना है—यह निधु है।

५. जो ज्ञात-पुत्र के वचन में श्रद्धा रग कर छहों पायों (मर्तों जीवों) को आत्मसम मानता है, पौन मत्ताग्रों का पालन करता है और जो पौन आत्मियों का सवर्ण करता है—यह निधु है।

६. जो चार कर्माय (बोध, मान, माया और मोह) का परिग्रहण करता है, जो निग्रन्थ-प्रवचन में ध्रुवयोगी है, जो गृहियोग (पद-विग्रह आदि) का वर्जन करता है—यह निधु है।

७. जो मन्वा-दर्शी है, जो मदा जमूड है, जो ज्ञान, नप और नमन के अस्तित्व में आस्थावान है, जो तर के द्वारा पुराने पापों को प्रकल्पित कर देता है, जो मन, वचन तथा कामा से मुक्त है—यह निधु है।

---

१. शीतोदक—जो पानी शस्त्र में अपहन नहीं वह सचित्त जल।

८ पूर्वोक्त विधि से विविध अन्न पान, खाद्य और स्वाद्य का प्राप्ति कर—यह कल या परला नाम बाधेगा—इस विचार से जो न सन्निधि (सकय) करता है और न करता है—वह मिथु है।

९ पूर्वोक्त प्रकार से विविध अन्न, पान, खाद्य और स्वाद्य का प्राप्ति या अपने मायमिकों को निर्वाचित कर जीवन करता है, जो जीवन कर चुकने पर स्वाध्याय में रत रहता है—वह मिथु है।

१० जो कर्मकारो कथा नहीं करता जो कान नहीं करता, जिसकी इन्द्रियां अनुवृत्त हैं जो प्रणाल है, जो समय में प्रयुक्तोमी है, जो उपशान्त है, जो दुष्टों को निरन्तर नहीं करता—वह मिथु है।

११ जो कटि के समान चुनन वाले इन्द्रिय विषयों, आर्क्षो-वर्धना प्रहारों सज्जनार्थ और वेदास आदि के अत्यन्त अमानक शान्तपुस्तक मनुष्यों का मनुष्य करना है तथा कुछ और कुछ का नवमाय-मूलक सहन करता है—वह मिथु है।

१२ जो समयात्त में प्रविष्टा को उद्धृत कर अत्यन्त अमानक हस्तों को देव कर नहीं करता, जो विविध युक्तों और तथा न रत हाता है, जो गरीर की आकाशा नहीं करता—वह मिथु है।

१३ जो नुनि बार-बार देह का व्युत्पन्न और स्वाद्य करता है, जो आकाश देने, पीटन और काटने पर मृन्मी के ममान सर्वसह होता है, जो निशान नहीं करता जो पुनरुत्पन्न नहीं करता—वह मिथु है।

१४ जो शरीर के परीषद्ही को जीतकर जानि-वच (समार) न भाना उद्धार कर लेता है जो अग्न्य-अरुण का महात्म्य जानकर समग्र-मन्त्राग्नी तप में रत रहता है—वह मिथु है।

१५ जो हाथों से भवन है, पैरों से सवत है, बाणी से समय है, इन्द्रियों से सवत है अन्धकार में रत है, अजीर्णान्न समाविष्ट है और जो मूत्र और अथ का पचार्थ रूप से जानता है—वह मिथु है।

१६ जो मुनि वस्त्रादि टांगि नैऋत्तिन नहीं है, जो अशुद्ध है, जो अज्ञान कुलों न निगा की प्रवृत्ति करत जाता है, जो समय को अमार करने पान दोषा में रहित है जो अथ विक्रम और सन्निधि से विरत है, जो सब प्रकार के तपा न रहित है—वह मिथु है।

१७ जो अशोभुष है रत्नों में लुब्ध नहीं है, जो उच्छ्वासी है (अज्ञात कुलों न पाई-योमी निशान लेता है), जो अमयम जीवन की आकाशा नहीं

करना, जो पति, गणेश और पुत्रों को गृहा को स्वागत है, जो मित्रता है, जो अपनी दाया बा बापन नहीं करता—यह भिक्षु है ।

१७. प्रथम स्थिति के पुत्र-प्राप्त पुरुष-पुत्र-पुत्र है ऐसा ज्ञात है जो हमारे का यह पुत्रोत्पत्ति (दुर्गन्ता) है ऐसा नहीं करता, जिसने हमारे पुत्रों को हमारे बाप नहीं करता, जो अपने विधवा पर उत्तर नहीं पाया—यह भिक्षु है ।

१८. जो ज्ञाति का मद नहीं करता, जो रूप का मद नहीं करता, जो लाभ का मद नहीं करता, जो श्रुत का मद नहीं करता, जो सब मदों को छोड़ता हुआ धर्म-मदान में रत रहता है—यह भिक्षु है ।

१९. जो महागुनि धर्मपद (धर्मपद) का उपदेश करता है, जो धर्म धर्म में स्थित होकर हमारे को जो धर्म में स्थित करता है, जो प्रशिक्षण को गुनीन-स्थिति का वर्जन करता है, जो हमारे को हमारे के लिए दुर्गन्ता नहीं करता—यह भिक्षु है ।

२०. अपनी आत्मा को महा साधवर्ति में मुग्ध बनाने वाला भिक्षु इस अनुवि और अनादित देहवाच को महा के लिए भोग देता है और जन्म-मरण के चक्र को छोड़ कर अनुगमन-मति (मोक्ष) को प्राप्त होता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## पहली प्रवृत्ति

### रतिवाक्या

मुमुक्षुमी ! निर्द्वन्द्व-प्रवचन में जो प्रवृत्ति है किन्तु वह साहचर्य  
 दुःख उत्पन्न हो गया। मयम में उनका चित्त भरति बुद्ध हो गया, वह मयम  
 का छीन, गुरुवाचन में चला आया था। उक्त मयम छीनने से पुन हन  
 अकारण स्वभाव का अनीमति आलोचन करना चाहिए। अतिमार्गता के लिए  
 उक्त मयम ही स्वभाव है या अरु के लिए मयम। हाथी के लिए अमुक और पात  
 के लिए मयम का है। अकारण स्वभाव हन प्रकार है।

१ आह ! इस दुःखता (दुःख बहुत बड़े-बड़े) व भाव बड़ी कठिनाई  
 से जीवित चलाते हैं।

२ गुरुवा के काम भोग स्वल्प-कार-गदित (गुच्छ) और अल्पकालिक है।

३ अनुपपन्न प्रायः भावा-अनुपपन्न होते हैं।

४ यह मयम परीक्षा-अनिष्ट दुःख विराममय्यायी नहीं होगा।

५ गुरुवा की नीच जगत् का पुरस्कार करना होता है।

६ मयम की छाह भरने जाने का अर्थ है मयम की वापस पीना।

७ मयम की छोड़ गुरुवात में जाने का अर्थ है नारणीय जीवन का  
 अनीमति।

८ आह ! गुरुवा में रहने हुए गुरुवा के लिए चर्म का स्वप्न निदर्य  
 हा दुर्लभ है।

९ यहाँ आतम अर्थ के लिए होता है।

१० यहाँ अरुण अर्थ के लिए होता है।

११ गुरुवा वन्य अर्थ है और मुनि-वर्णन केवल रहित।

१२ गुरुवा वचन है और मुनि-वर्णन मयम।

१३ गुरुवा तावत् है और मुनि-वर्णन अनर्थक।

१४ गुरुवा के काम भाव अमुक-भावान्तर है—अर्थ भुवन है।

१५ पुन्य और पाप करना-अपना होता है।

१६ आह ! अनुपपन्न का जीवन अनिष्ट है। अमुक कर्म भाव पर स्थित  
 जल बिन्दु के समान चलाते हैं।



१७. ओह ! मैंने हमारे पूर्व बहुत ही पाप-कर्म किए हैं ।

१८. ओह ! दुष्टचरित्र और दुष्ट वर्णक्रम के द्वारा पूर्व-काम में अशुभ किए हुए पाप-कर्मों का भोग करने पर यद्यपि तब के द्वारा उनका क्षय कर देने पर ही मोक्ष होता है—उनमें सुटकाग होता है, उन्हें भोगे बिना (अथवा तब के द्वारा उनका क्षय बिना) मोक्ष नहीं होता—उनमें सुटकाग नहीं होता । यह अटारहवां पद है । अब सही धर्मोपदेश है—

१. मनास जब भोग के लिए धर्म की छांटता है तब यह भोग में दुष्टिष्ठन अज्ञानी अपने भविष्य को नहीं समझता ।

२. जब कोई माधु उत्पन्न होता है—दूधपात्र में प्रवेश करना है—तब यह सब धर्मों से अष्ट होकर वैसे ही परिणाम करता है जैसे देवताओं के समक्ष में च्युत होकर भूमिगत पर पड़ा हुआ द्रव्य ।

३. प्रसजित काल में माधु कदनीय होता है, यही जब उत्पन्न होकर अवदनीय हो जाता है तब यह वैसे ही परिणाम करता है जैसे अपने रक्त में च्युत देवता ।

४. प्रसजित काल में माधु पूज्य होता है, यही जब उत्पन्न होकर अपूज्य हो जाता है तब यह वैसे ही परिणाम करता है जैसे राज-भट्ट राजा ।

५. प्रसजित काल में माधु मान्य होता है, यही जब उत्पन्न होकर अमान्य हो जाता है तब यह वैसे ही परिणाम करता है जैसे बवंट (छोटे में गाँव) में अवलट किया हुआ श्रेष्ठ ।

६. जीवन के बीच जाने पर जब यह उत्पन्न माधु बूझ होता है, तब यह वैसे ही परिणाम करता है जैसे कटि की निगलने वाला मत्स्य ।

७. यह उत्पन्न माधु जब कृदुम्ब की दुश्चिन्ताओं से ग्रस्त होता है तब यह वैसे ही परिणाम करता है जैसे बन्धन में बंधा हुआ हाथी ।

८. पुत्र और स्त्री से घिरा हुआ और मोह की परम्परा से परित्याप्त वह वैसे ही परिणाम करता है जैसे पक में फँसा हुआ हाथी ।

९. आज मैं भावितात्मा और बहुधुत गर्वा होता यदि जिनोपदिष्ट धर्मण-पर्याय (चरित्र) में रमण करता ।

१०. संयम में रत महर्षियों के लिए मुनि-पर्याय देवलोक के समान ही सुन्दर होता है और जो संयम में रत नहीं होते उनके लिए वही (मुनि-जीवन) महानरक के समान दुःख होता है ।

॥ मंथन म रत साधुओं का मुख देवों के समान उत्तम (उत्कृष्ट) जान कर तथा मंथन में रत न रहने वाला मुनियों का मुख नरक के समान उत्तम (उत्कृष्ट) जान कर संशुद्ध मुनि मंथन में ही रमण करे।

१२ मित्रकी दार्ढ्य उन्माद की गई हों उन चोर निबध्नर भय की साधारण भोग भी अवहेलना करन है जैसे ही बनें भट्ट, पारिव जरी यों से रहित मुनी हुई यज्ञानि की पति निम्नेम और दुर्बिहित साधु की पुत्रीक व्यक्ति भी निगदा करते हैं।

१३ धर्म से व्युत्पन्न, अक्षयसेवी और पारिव का कण्ठन करने वाला साधु इसी मनुष्य जीवन म अक्षय का आचरण करना है, उसका अयत्त और अकीर्ति हानी है। साधारण लोगों में जो उसका पुर्नान हाता है तथा उसकी अपीयति हानी है।

१४ वह मंथन के भट्ट साधु आनेमपुन पित्त से भावों की भोग कर और सवाविध प्रभुर अमयम का आसेवन कर अनिष्ट एवं दुःखपुन गति में जाता है और बार-बार जन्म-मरण करने पर भी उसे बोधि मुक्त नही होती।

१५ दुःख से मुक्त और कण्ठमय जीवन बिनामे वाले इन मारणीय जीवा की यत्नीयम और साधारण साधु समाप्त हो जाती है या फिर वह मेरा भनी दुःख विषये काळ का है ?

१६ वह मेरा दुःख विषयक एक नहीं खेवा। जीवों की भोग-नीयता अघातक है। यह वह इन छरीर के होते हुए न मिटी तो मेरे जीवन की समाप्ति के समय तो अवश्य ही मिट जाएगी।

॥ मित्रकी आत्मा इस प्रकार निश्चित होती है (इह मवश्यमुक्त हानी है) — “देह की त्याग देना चाहिए पर धन-आशय की नहीं छोड़ना चाहिए” — उन दह-वर्तिन साधु की इच्छा की इसी प्रकार विचलित नहीं कर सकती जिस प्रकार वेदपुन गति से जाता हुआ महापानु मुरधन पिरि का।

१७ बुद्धिमान् मनुष्य इस प्रकार मय्यद् आलोचना कर तथा विविध प्रकार क साध और अनेक साधनों की जान कर लोक मुनियों (वाय, वाली और मन) से गुण हाकर मित्रवाणी का आशय से।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

## दूसरी चूलिका

### विविक्तचर्या

१. मैं उस चूलिका को कहूँगा जो मुनी दुर्द है, केवली-भाषिन है, जिसे मुन नाग्यशाली जीवों की धर्म में मति उत्पन्न होती है ।
२. अधिकांश लोग अनुश्रुत में प्रस्थान कर रहे हैं—भोग-मार्ग की ओर जा रहे हैं । किन्तु जो मुक्त होना चाहता है, जिसे प्रतिश्रुत में गति करने का लक्ष्य प्राप्त है, जो विषय-भोगों में विरक्त हो समय की आराधना करना चाहता है, उसे अपनी आत्मा को श्रुत के प्रतिकूल में जाना चाहिए—विषयानुश्रुति में प्रवृत्त नहीं करना चाहिए ।
३. जन-माधारण को श्रुत के अनुकूल चलने में सुख वी अनुभूति होती है । किन्तु जो सुविहित साधु है उनका आश्रय (इन्द्रिय-विजय) प्राश्रुत होता है । अनुश्रुत मंसार है (जन्म-मरण की परम्परा है) और प्रतिश्रुत उसका उत्तार है (जन्म-मरण का पार पाना है) ।
४. इसलिए आचार में पराक्रम करने वाले, मकर में प्रभूत ममाधि रखने वाले साधुओं को चर्या, गृणों तथा नियमों की ओर दृष्टिपात करना चाहिए ।
५. अनिकेतवान (गृहवान का त्याग), समुदान चर्या (अनेक कुलों से भिक्षा लेना), अज्ञात कुलों से भिक्षा लेना, एकान्तवान, उदकरणी की अल्पता और कलह का वर्जन—यह विहार-चर्या (जीवन-चर्या) ऋषियों के लिए प्रशस्त है ।
६. आकीर्ण<sup>१</sup> और अवमान<sup>२</sup> नामक भोज का विवर्जन, प्रायः दृष्ट-स्थान से लाए हुए भक्त-पान का ग्रहण ऋषियों के लिए प्रशस्त है । भिक्षु समृद्ध हाथ और पात्र से भिक्षा ले । दाता जो वस्तु दे रहा है उसी में समृद्ध हाथ और पात्र से भिक्षा लेने का यत्न करे ।

१. वह भोज जहाँ बहुत मीड़ हो, 'आकीर्ण' कहलाता है ।

२. वह भोज जहाँ गणना से अधिक खाने वालों की उपस्थिति होने के कारण खाद्य कम हो जाए, 'अवमान' कहलाता है ।

७ साधु मद्य और मांस का अजीर्ण, अम्लपित्त, बार-बार बिड़बिड़ा (पी, दूध, दही आदि) को न पाने वाला, बार-बार कायास्थि करने वाला और स्वाध्याय के लिए बिड़बिड़ा तपस्या में अवलम्बीय हो।

८ साधु बिहार करने समय बुद्धि की ऐसी प्रतिज्ञा न लिखे कि वह ध्यान, आसन, उपासना आध्यात्म भूमि में ही लौट कर आर्जुन से मिले हो देना। इसी प्रकार भजन-योग मुझे ही देना—यह प्रतिज्ञा भी न कराय। पाप, दुष्कर्म, लज्जा या शर्म—वही भी अन्तर्गत न करे।

९ साधु गृहस्थ का वैवाचिक (वैवा) न करे। अधिवास, अन्न और वस्त्र न करे। भूमि लक्ष्मी रहित साधुओं का भाव रहे किस्म की धर्म की हानि न हो।

१० यदि कदाचित् अन्न लक्ष्मी पुरी लक्ष्मी करने समान गुण वाला निगुण भावी न मिले तो पाप क्यों का करने करता हुआ काम भाग में अमानस रह अकेला ही (लक्ष्मीवन्) बिहार करे।

११ जिस मांस के भूमि काक के उच्छिष्ट समान लक्ष्मी रह चुका हो (अर्थात् अर्थात् के आनुषंगिक और अन्न नाम में एक मान रह चुका हो) वही हो वह (हा आनुषंगिक और हो मांस) का अन्न किन्तु बिना न रहे। भिन्न भूतान्न नाम में जाने, भूत का भव विन प्रकार आज्ञा दे दिये करे।

१२ जो साधु यदि कदाचित् और विद्वत् प्रहर में अपने-आप अपना आनाचन करता है—मैं क्या किया? कर किन्तु क्या करता कर है? वह कीन-आचार्य है जिस में कर लक्ष्मी है पर अनाचन नहीं कर रहा है?

१३ क्या करे प्रसाद की कोई दुर्गा दण्डा है अथवा किसी भूत को मैं दण्ड देना लक्ष्मी है? वह कीन-आचार्य है जिस में नहीं छोड़ रहा है? इस प्रकार अन्न प्रसाद के आत्म निरीक्षण करता हुआ भूमि अनाचन का प्रतिपादन न करे—अन्नान्न न लक्ष्मी, निदान न करे।

१४ यहाँ वही भी मन, वस्त्र और आना का दुष्प्रहार हुआ हुआ है तो बार साधु वही लक्ष्मी आए। जैसे आनिमान् अन्न लक्ष्मी को नीचे हा गृहस्थ आज्ञा है।

१५. जिस जितेन्द्रिय, धृतिमान् सत्पुरुष के योग सदा उस प्रकार के होते हैं उसे लोक मे प्रतिबुद्धजीवी कहा जाता है। जो ऐसा होता है, वही संयमी जीवन जीता है।

१६. सब इन्द्रियो को सुसमाहित कर आत्मा की सतत रक्षा करनी चाहिए। अरक्षित आत्मा जाति-पथ (जन्म-मरण) को प्राप्त होता है और मुरक्षित आत्मा मत्र दुःखो से मुक्त हो जाता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

उत्तराध्ययन

## पहला अध्ययन

### विनय-श्रुत

१. जो मयोग ने मुक्त है, अनगार है, भिक्षु है, उसके विनय<sup>१</sup> को प्रमगः प्रकट करेगा । मुझे मुनो ।
२. जो गुरु की आज्ञा<sup>२</sup> और निर्देश<sup>३</sup> का पालन करता है, गुरु की पुशूपा करता है, गुरु के इंगित<sup>४</sup> और आकार<sup>५</sup> को जानता है, वह 'विनीत' कहलाता है ।
३. जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन नहीं करता, गुरु की पुशूपा नहीं करता, जो गुरु के प्रतिकूल वर्तन करना है और तप्य को नहीं जानता, वह 'अविनीत' कहलाता है ।
४. जैसे सड़े हुए कानों वाली कुतिया सभी स्थानों से निकाली जाती है, वैसे ही दुःशील, गुरु के प्रतिकूल वर्तन करने वाला बाचाल भिक्षु भी गण से निकाल दिया जाता है ।
५. जिस प्रकार सूबर चावलों की भूमी को छोड़कर विष्ठा खाता है, वैसे ही अज्ञानी भिक्षु शील को छोड़कर दुःशील में रमण करता है ।
६. अपनी आत्मा का हित चाहने वाला भिक्षु कुतिया और सूबर की तरह दुःशील मनुष्य के अनाव (हीन भाव) को सुनकर अपने-आप को विनय में स्थापित करे ।
७. इसलिए विनय का आचरण करे जिसमें शील की प्राप्ति हो । जो

---

१. विनय—आचार, नम्रता ।

२. आज्ञा—आगम का उपदेश ।

३. निर्देश—गुरु-वचन ।

४. इंगित—कार्य की प्रवृत्ति या निवृत्ति के लिए भौं, शिर आदि को हिलाकर भाव व्यक्त करना ।

५. आकार—स्थूल चेष्टा ।

बृहन्म (आचार्य का द्विज शिष्य) औरमात्र का नहीं होता है, वह मन से नहीं निराग्न माना ।

८ शिष्य आचार्य के समान न हो पाया रहे, आचार्यमान का । उनके पास अर्थ-सुख तथा जो नीच और निरर्थक वषाभा का वर्जन करे ।

९ पवित्र शिष्य गुरु के द्वारा अनुमानित होने पर प्रीति न करे तथा जो आराधना करे । शूद्र स्पर्शियों के साथ नमन कृप्य और भीष्ट न करे ।

१० शिष्य गुरु परब्रह्मण्य न कर । गुरुनमन मान । आचार्य के साथ ही वषाभा कर और उनक परब्रह्मण्य अर्चना करना करे ।

११ शिष्य गुरु का गुरुवर्ग कर उन सभी भी न भिन्न । अस्वीकृत कार्य दिया । या दिया और नहीं दिया हा या न दिया करे ।

१२ जैसे अविनीत छोटा बालक को बार-बार आना है । जैसे विनीत छोटा बालक को बार-बार न भिन्न । जैसे विनीत छोटा बालक को बार-बार न भिन्न । जैसे विनीत छोटा बालक को बार-बार न भिन्न । जैसे विनीत छोटा बालक को बार-बार न भिन्न ।

१३ आचार्य को न मानने काट और अट-मट बीज्य साथ दुर्गोत शिष्य बीज्य स्वभाव मान गुरु को भी मानना मान है । शिष्य के अनुसार करने वाले और गुरुता का कार्य का नमन करने मान शिष्य भीष्ट हो दुर्गोत होने मान गुरु का या प्रयत्न कर लेने है ।

१४ शिष्य गुरु दुर्गोत भीष्ट माने । गुरुके पर अमन्य न माने । कष्ट न करे । मान का मान हा उसे विद्वत् कर है । शिष्य और अविन्य का धारण करे—उन पर मान और द्वेष न कर ।

१५ आचार्य का हा समन करना पात्रि । वनादि आचार्य ही दुर्गोत है । अविन्य-अमान ही "दुर्गोत और वरा" व मनुष्य माना है ।

१६ अक्षर नहीं है कि मैं मय्य और नर क द्वारा अक्षरी आचार्य का समन करे । दुर्गोत मान अमन्य और धर्म के द्वारा मग समन करे—यह अक्षर नहीं है ।

१७ लोगों के समन का एवाच्य में, बचन में या कर्म में कभी भी आचार्यों के अनुमान समन न करे ।

१८ आचार्यों के वराकर न बड़े । मान और पीछे भी न बड़े । उनके ऊपर (पीछे) में आचार्य ऊपर कर न बड़े । विनीत पर बड़ा माना हो—नर अविन्य का वरीकार न करे, शिष्य उस पर कर वषाभा कर ।



१९. मयमी मुनि गुरु के ममीप पल्यो<sup>१</sup> लगाकर दोनों खाटों ने जघाओं को वेष्टित कर तथा पैरों को फैलाकर न बैठे ।

२०. आचार्यों के द्वारा बुझाए जाने पर सभी भी मौन न रहे । गुरु के प्रसाद को चाहने वाला मोक्षाभिन्नायी शिष्य मुदा उनके ममीप रहे ।

२१. बुद्धिमान शिष्य गुरु के एक बार बुझाने पर या बार-बार बुझाने पर कभी भी बैठे न रहे, किन्तु ये जो आदेश दें, उमंग आसन को छोड़कर यत्न के साथ स्वीकार करें ।

२२. आसन पर अथवा क्षय्या पर बैठे-बैठा कभी भी गुरु ने कोई बात न पूछे, परन्तु उनके ममीप आकर ऊठू बैठ, हाथ जोड़ कर पूछे ।

२३. इस प्रकार जो शिष्य विनय-युक्त हो, उनके पूछने पर गुरु सूत्र, अर्थ और तदुभय (सूत्र और अर्थ दोनों) जैसे गुने हों वैसे बतलाए ।

२४. भिक्षु अमत्य का परिहार करें । निश्चय-भारिणी भाषा न बोलें । भाषा के दोषों को छोड़े । माया का मुदा वर्जन करें ।

२५. किसी के पूछने पर भी अपने, परमा या दोनों के प्रयोजन के लिए अथवा अकारण ही सावध न बोलें, निरयंक न बोलें और भय-भेदी वचन न बोलें ।

२६. कामदेव के मंदिरों में, घरों में, दो घरों के बीच की मंघियों में और राजमार्ग में अकेला मुनि अकेली स्त्री के माथ न गड़ा रहे और न सलाप करें ।

२७. “आचार्य मुझ पर कोमल या कठोर वचनों से जो अनुशासन करते हैं यह मेरे लाभ के लिए है”—ऐसा नीच कर प्रयत्नपूर्वक उनके वचनों को स्वीकार करें ।

२८. शृद्ध या कठोर वचनों से किया जाने वाला अनुशासन दुर्गति का निवारक होता है । प्रजावान् मुनि उसे हित मानता है । वही असाधु के लिए द्वेष का हेतु बन जाता है ।

२९. मय-मुक्त बुद्धिमान् शिष्य गुरु के कठोर अनुशासन को भी हितकर मानते हैं । परन्तु क्षाति और चित्त-विशुद्धि करने वाला तथा गुण-वृद्धि का आधारभूत वही अनुशासन अज्ञानियों के लिए द्वेष का हेतु बन जाता है ।

३०. मुनि वैसे आसन पर बैठें जो गुरु के आसन से नीचा हो, अकम्पमान

१. पल्यो—प्राचीन काल में इसका अर्थ था—घुटनों और जाँघों के चारों ओर कपड़ा बाँध कर बैठना ।

हो और स्थिर हो । प्रयोजन होने पर भी बार बार न उठे । बैठे तब स्थिर एवं शांत होकर बैठे, श्वास-वैर आदि में व्यस्तता न करे ।

११ समय पर विद्या के लिए निकले समय पर लौट आए । अफात को बच कर, जो मास जिस समय का हो, उसे उसी समय करे ।

१२ विष्णु परिधाने (पण्डित) में लक्ष्य न रहे । गृहस्थ के द्वारा दिए हुए आहार की एषणा करे । मुनि के वेष में एषणा कर यथामनस्य भित्त आहार करे ।

१३ पहले में ही अन्य विष्णु जाड़े हों तो उनमें अति-दूर या अति-समीप लक्ष्य न रहे और वेने वाले गृहस्थों की दृष्टि में मामले भी न रह । विष्णु अनेका (विद्युता और शांता—दोनों की दृष्टि से बच कर) लक्ष्य रहे । विद्युता को लक्ष्य कर विद्या मेने के लिए न जाए ।

१४ सप्तमी मुनि प्रातःक और गृहस्थ के लिए बना हुआ आहार में विष्णु अति ऊँचे या अति-नीचे स्थान में लक्ष्य हुआ तथा अति-समीप या अति-दूर से दिया जाता हुआ आहार न ले ।

१५ सप्तमी मुनि प्रातः और बीच रहित, ऊपर में उँचे हुए और पार्श्व में भित्त आदि से भरत उपानयन में अपने सहचरों धूमियों के साथ, धूमि पर न गिराता हुआ, समयपूर्वक आहार करे ।

१६ बहुत अच्छा किया है (भाजन आदि), बहुत अच्छा पकाया है (भेकर आदि), बहुत अच्छा देरा है (पत्ती का नाम आदि), बहुत अच्छा हरण किया है (भाप की चढ़वाइत आदि), बहुत अच्छा बरा है (चूरमे में भी आदि), बहुत अच्छा रस निष्पन्न हुआ है, बहुत दृढ़ है—मुनि इन सावध बचनों का प्रयोग न करे ।

१७ जैसे उत्तम बीड़े की हविला हुआ उसका बाह्य आनन्द पाता है, वैसे ही पण्डित (विनीत) शिष्य पर अनुशासन करने हुए पुन आनन्द पाता है और वैसे दुष्ट बीड़े की हविला हुआ उसका बाह्य निम्न होता है वैसे ही बाल (अविनीत) शिष्य पर अनुशासन करते हुए पुन निम्न होता है ।

१८ पाद-दक्षिण काला शिष्य पुन के वस्त्रावधारि अनुशासन का भी टांकर मारत, चांग बिपजाने, बासी देने व प्रहार करने से समान मानता है ।

१९ पुन पुन पुन, बाई और स्वजन की लक्ष्य अपना मनस कर शिष्या देते हैं—ऐसा सोच विनीत शिष्य उनसे अनुशासन का वस्त्रावधारि मानता है परन्तु दुःशिक्ष्य शिष्यानुशासन से आश्रित होने पर अपने को शत्रु समान मानता है ।

४०. शिष्य आचार्य को कुपित न करे । स्वयं भी कुपित न हो । आचार्य का उपपाश करनेवाला न हो । उनका छिद्रान्वेषी न हो ।

४१. आचार्य को कुपित हुए जान कर विनीत शिष्य प्रतीतिकारक वचनों में उन्हें प्रसन्न करे । हाथ जोड़ कर उन्हें आन्त करे और यों कहे कि "मैं पुनः ऐसा नहीं करूँगा ।"

४२. जो व्यवहार धर्म में अजित हुआ है, जिसका तत्त्वज्ञ आचार्यों ने सदा आचरण किया है, उस व्यवहार का आचरण करना हुआ मुनि कहीं भी गहाँ को प्राप्त नहीं होता ।

४३. आचार्य के मनोगत और वाक्यगत भावों को जान कर, उनको वाणी में ग्रहण करे और कार्यरूप में परिणत करे ।

४४. जो विनय से प्रख्यात होता है वह मदा बिना प्रेरणा दिए ही कार्य करने में प्रवृत्त होता है । वह अच्छे प्रेरक गुरु की प्रेरणा पा कर तुरत ही उनके उपदेशानुसार नलीमांति कार्य सम्पन्न कर लेता है ।

४५. मेधावी मुनि उक्त विनय-पद्धति को जान कर उसे क्रियान्वित करने में तत्पर हो जाता है । उसकी लोक में कीर्ति होती है । जिस प्रकार पृथ्वी प्राणियों के लिए आधार होनी है, उसी प्रकार वह धर्माचरण करनेवालों के लिए आधार होता है ।

४६. उसपर तत्त्वविन् पूज्य आचार्य प्रसन्न होते हैं । अध्ययन काल से पूर्व ही वे उनके विनय-समाचरण से परिचित होते हैं । वे प्रसन्न होकर उसे मोक्ष के हेतुसूत विपुल श्रुत-ज्ञान का लाभ करवाते हैं ।

४७. वह पूज्य-शास्त्र होता है—उसके शास्त्रोप ज्ञान का बहुत सम्मान होता है । उसके सारे संशय मिट जाते हैं । वह गुरु के मन को भाता है । वह कर्म-सम्पदा (दस विध सामाचारी<sup>१</sup>) से सम्पन्न होकर रहता है । वह तप-सामाचारी और नमाधि में सञ्चल होता है । पाँच महाव्रतों का पालन कर वह महान् संजस्वी हो जाता है ।

४८. देव, गन्धर्व और मनुष्यों ने पूजित वह विनीत शिष्य मल और पंक<sup>२</sup> से बने हुए शरीर को त्याग कर या तो शाश्वत सिद्ध होता है या अल्पकर्म वाला महद्दिक देव होता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१. सामाचारी—मुनियों का व्यवहारात्मक आचार ।

२. मल और पंक—रक्त और वीर्य ।

## दूसरा अध्याय

### परीपह-प्रविभक्ति

सू० १ आध्यात्म । किं मुना है भवमान् न ह्य प्रकार कहा—निर्गम-प्रवचन में शार्ङ्ग परावह होत है, जो कल्प-गोपीय धम्म भवमान् महावीर के द्वारा प्रवेदिता है, जिन्हें भुज कर, ज्ञान कर, ज्ञानान् क द्वारा परिचित कर, पराजित कर, मिता-वर्षा के लिए पर्यटन करना हुआ मुनि उनमें स्पृष्ट होने पर विचलित नहीं होता ।

सू० २ वे शार्ङ्ग परीपह नीचे हैं जो कल्प-गोपीय धम्म भवमान् महावीर के द्वारा प्रवेदिता हैं जिन्हें भुज कर ज्ञान कर, ज्ञानान् क द्वारा परिचित कर, पराजित कर, मिता-वर्षा के लिए पर्यटन करना हुआ मुनि उनमें स्पृष्ट होने पर विचलित नहीं होता ?

सू० ३ वे शार्ङ्ग परीपह ये हैं, जो कल्प-गोपीय धम्म भवमान् महावीर के द्वारा प्रवेदिता हैं जिन्हें भुज कर ज्ञान कर, ज्ञानान् क द्वारा परिचित कर पराजित कर, मिता-वर्षा के लिए पर्यटन करना हुआ मुनि उनमें स्पृष्ट होने पर विचलित नहीं होता । अतः—

१ धुवा-परीपह, २ मिता-परीपह ३ शीत-परीपह ४ ज्ञान-परीपह, ५ दस-प्रवच-परीपह ६ अवेद-परीपह ७ अरति-परीपह ८ स्त्री-परीपह, ९ कर्मा-परीपह १० निन्दित-परीपह ११ गन्ध-परीपह १२ आश्रय-परीपह, १३ वध-परीपह, १४ वाचन-परीपह १५ अज्ञान-परीपह १६ रोद-परीपह, १७ लुप्त-परीपह, १८ कल्प-परीपह १९ मरणा-परीपह २० प्रज्ञा-परीपह, २१ अज्ञान-परीपह, २२ दान-परीपह ।

१ परीपहो ना ना विधान कल्प-गोपीय धम्म भवमान् महावीर के द्वारा प्रवेदिता (प्रकृति) है, उस में अमल चैवा । भुज भुजे मुना ।

१ परीपह—परीपह नाम से बहुत से होने तथा कर्मों को धीरे धीरे करने के लिए जो कष्ट सह्य जाता है, वह ।

## (१) क्षुधा-परीषह

२. देह में क्षुधा व्याप्त होने पर तपस्वी और प्राणवान् भिक्षु फल आदि का छेदन न करे, न कराए। उन्हें न पकाए और न पकवाए।

३. शरीर के अंग भूख से सूखकर काक-जंघा<sup>१</sup> नामक तृण जैसे दुर्बल हो जायें, शरीर कृश हो जाये, धर्मियों का ढाँचा-भर रह जाये तो भी आहार-पानी की मर्यादा को जानने वाला मुनि अदीनभाव से विहरण करे।

## (२) पिपासा-परीषह

४. असयम से घृणा करने वाला, लज्जावान् सयमी साधु प्यास से पीड़ित होने पर सचित्त (सजीव) पानी का सेवन न करे, किन्तु प्रासुक जल की एपणा करे।

५. निर्जन मार्ग में जाते समय प्यास से अत्यंत आकुल हो जाने पर, मुह सूख जाने पर भी साधु अदीनभाव से प्यास के परीषह को सहन करे।

## (३) शीत-परीषह

६. विचरते हुए विरत और रूख शरीर वाले साधु को शीत-शत्रु में सदीं सताती है। फिर भी वह जिन-शासन को सुन कर (आगम के उपदेश को ध्यान में रख कर) स्वाध्याय आदि की वेला—मर्यादा का अतिक्रमण न करे।

७. शीत से प्रताड़ित होने पर मुनि ऐसा न सोचे—मेरे पास शीत-निवारक घर आदि नहीं हैं और छविशाण (वस्त्र, कम्बल आदि) भी नहीं है, इसलिए मैं अग्नि का सेवन कहूँ।

## (४) उष्ण-परीषह

८. गरम धूलि आदि के परित्याप, स्वेद, मूँल या प्यास के दाह अथवा ग्रीष्म-कालीन मूर्य के परित्याप में अत्यन्त पीड़ित होने पर भी मुनि सुख के लिए विलाप न करे—आकुल-व्याकुल न बने।

९. गर्मी से अभितप्त होने पर भी मेधावी मुनि स्नान की इच्छा न करे। शरीर को गीला न करे। पक्षे से शरीर पर हवा न ले।

## (५) दंश-मशक परीषह

१०. डाँस और मच्छरो का उपद्रव होने पर भी महामुनि समभाव में रहे, क्रोध आदि का बीम ही हनन करे जैसे युद्ध के अग्रभाग में रहा हुआ शूर हाथी बाणों को नहीं गिनता हुआ शत्रुओं का हनन करता है।

११ मित्रु जब संय-अच्छों से संभल न हो उन्हें हटाए नहीं। मन में भी उनके प्रति द्वेष न आए। मान और ग्लानि-भीने पर भी उनकी उपेक्षा न करे, किन्तु उनका हान न करे।

### (६) अनेक-परीषद्

१२ "बन्धन पट गए हैं इनलिए मैं अनेक हो जाऊँगा अथवा बल मिलने पर फिर मैं संवेत हो जाऊँगा"—युधि ऐना न चाहे। (दीन और दुष्ट दोनों प्रकार का पाप न आए।)

१३ मित्रवत्<sup>१</sup>ता में अथवा अन्ध न मिलने पर युधि अनेक भी होता है और स्वदिरक<sup>२</sup>ता में वह अनेक भी होता है। अन्धता पैर के अनुसार इन दोनों (अनेकत्व और अनेकत्व) को प्रति बल के लिए छिड़कर पाप पर जानी युधि बल न मिलने पर दीन न बने।

### (७) करति-परीषद्

१४ एक गाँव में दूसरे गाँव में विहार करते हुए अकिंचन युधि के चित्त में करति चलान हो चाहे तो उस परीषद् को वह सहन करे।

१५ हिंसा आदि से बिरल रहने वाला, आत्मा की रक्षा करने वाला, धर्म में रमण करने वाला, अन्ध<sup>३</sup> महति में दूर रहने वाला, उपशान्त युधि करति को दूर कर बिहारा करे।

### (८) शची-परीषद्

१६ "लोक में जो मित्रों हैं, वे धनूषों के लिए खंभ हैं—जब हैं"—जा इन बात का आनन्द है, उनका आनन्द रहन है।

१७ 'स्वर्गा ब्रह्मचारी के निद्र दमन के समान हैं'—यह जानकर मेघावी युधि उनसे अपने समक-जीवन को भाव न होने दे, किन्तु वह आत्मा की गवेषणा करता हुआ विचरण करे।

### (९) अर्षा-परीषद्

१८ समय के लिए जीवन्-निर्वाह करने वाला युधि परीषद् को जीव कर गाँव में या नगर में, निज<sup>४</sup> में या राजधानी में अकेला (राम-द्वेष रहित होकर) विचरण करे।

१ मित्रवत्—साक्षात् की विनिष्ट ब्रह्मि।

२ निज—आचारिक केन्द्र।

१६. मुनि अमदया (अमाधारण) होकर विहार करने। परिग्रह (ममत्व-भाव) न करे। गृहस्था से निर्लिप्त रहे। अनिकेत (गृह-वृत्त) रहता हुआ परिश्रम करे।

### (१०) निपद्या-परीषद्

२०. राग-द्वेष रहित मुनि चपलताओं का वर्जन करना हुआ ममदान, शून्य-गृह अथवा वृक्ष के मूल में बैठे। दूसरों को यास न दे।

२१. वही बैठे हुए उसे उपगम प्राप्त हो तो वह यह चिन्तन करे—“मेरा क्या अनिष्ट करेगा?” किन्तु अपकार की प्रकाश में डर कर वही ने उठ दूसरे स्थान पर न जाए।

### (११) शय्या-परीषद्

२२. तपस्वी और प्राणवान् भिक्षु उत्कृष्ट या निकृष्ट उपाश्रय को पा कर मर्यादा का अतिक्रमण न करे (द्वेष या शोक न लाए)। जो पापदृष्टि होना है, वह मर्यादा का अतिक्रमण कर डालता है।

२३. मुनि एकान्त उपाश्रय—भने फिर वह सुन्दर हो या अमुन्दर—को-पाकर “एक रात में क्या होना-जाना है”—ऐसा मोच कर वही रहे, जो भी सुख-दुःख हो उसे सहन करे।

### (१२) आक्रोश-परीषद्

२४. कोई मनुष्य भिक्षु को गाली दे तो वह उसके प्रति क्रोध न करे। क्रोध करने वाला भिक्षु बालकों (अज्ञानियों) के सदृश हो जाता है, इसलिए भिक्षु क्रोध न करे।

२५. मुनि पशु, दारुण और प्रतिकूल भाषा को मुनकर मौन रहता हुआ उसकी उपेक्षा करे, उसे मन में न लाए।

### (१३) वध-परीषद्

२६. पीटे जाने पर भी मुनि श्लोच न करे। मन को दूषित न करे। क्षमा को परम साधन जान कर मुनि-धर्म का चिन्तन करे।

२७. सयत्न और दान्त श्रमण को कोई कहीं पीटे तो वह “आत्मा का नाश नहीं होता”—ऐसा चिन्तन करे, परन्तु प्रतिशोध की भावना न लाए।

### (१४) याचना-परीषद्

२८. अरे! अनगार भिक्षु की यह चर्चा कितनी कठिन है कि उसे सब कुछ याचना से मिलता है। उसके पास अयाचित कुछ भी नहीं होता।

२९. गोचराग्र में प्रविष्ट मुनि के लिए गृहस्थों के मामले हाथ पसारना सरल नहीं है। अतः “गृहवास ही श्रेय है”—मुनि ऐसा चिन्तन न करे।

## (११) अनाम-वरीषह

२० गृहस्थों के घर आश्रम संसार हुआ जाने पर मुनि उसकी एपणा करे । आश्रम छोड़ा मिलने या न मिलने पर संयमी मुनि अनुत्पाद न करे ।

२१ "आज मुझे भिक्षा नहीं मिली, परन्तु समय है वन भिक्षा जाये"—  
या इस प्रकार सोचना है, जब अनाम नहीं बनाया ।

## (१२) रोग-वरीषह

२२ रोग का उत्पन्न हुआ जान कर तथा चान्सा में पीड़ित होने पर दीन न बने । व्याधि से विचलित हाथी हुई जगा की स्थिर बनाए और प्राण कुल का समभाव से सहन करे ।

२३ आत्म-गवपक मुनि चिन्तित्वा न अनुवीक्ष्य न करे । रोग ही जाने पर समाधि-मुक्त रहे । उनका सम्मन्य गही है कि यह रोग उत्पन्न होने पर भी चिन्तित्वा न करे, न कराए ।

## (१३) तुल-वर्षा-वरीषह

२४- अभेद और सब घरीर बाल मयत सपत्नी के पास पर सीने से घरीर में कुलन होता है ।

२५- गर्मी पड़ने से अनुक बदला हुमी है—यह जान कर जी तुल से पीड़ित मुनि बरब न भेषन नहीं करने ।

## (१६) अनाम-वरीषह

२६ रैन, रज या वीर्य के परिष्कार से शरीर क बीज या पक्कि हो जाने पर भेषाची मुनि मुख के लिए विमल न करे ।

२७ निजराची मुनि अनुत्तर आध-भय (धुन-चारिच-भय) की पाकर देह-विनाश पयन काया पर 'अच्छ' (स्व-प्रमित रैन) को धारण करे और सम्मनित पराधर को सहन करे ।

## (१८) सत्कार-पुरस्कार-वरीषह

२८ या राजा आदि के द्वारा दान नष्ट अधिवाचन, सत्कार जयवा नियन्त्रण या भेषन करते हैं, उनकी इच्छा न करे—उम्मे कथ न माने ।

२९ भय वपाव वाला अल इच्छा वाला अज्ञात पुनो से बिता लेने वाला, अहोमुख भिक्षु रक्षा में बुद्ध न हू । प्रज्ञावान् मुनि पुनरों को सम्मानित देन अनुत्पाद न करे ।



## (२०) प्रज्ञा-परीपह

४०. "निश्चय ही मैंने पूर्व काल में अज्ञानरूप-फल देने वाले कर्म किए हैं। उन्हीं के कारण मैं किसी के कुछ पूछे जाने पर भी कुछ नहीं जानता।

४१. "पहले किए हुए अज्ञानरूप-फल देने वाले कर्म पकने के पश्चात् उदय में आते हैं"—इस प्रकार कर्म के विपाक को जान कर मुनि आत्मा को आश्वासन दे।

## (२१) अज्ञान-परीपह

४२. "मैं मंथुन से निवृत्त हुआ, इन्द्रिय और मन का मैंने संवरण किया—यह सब निरयंक है। क्योंकि धर्म कल्याणकारी है या पापकारी—यह मैं साक्षात् नहीं जानता—

४३. "तपस्या और उपधान<sup>१</sup> को स्वीकार करता हूँ, प्रतिमा<sup>२</sup> का पालन करता हूँ—इस प्रकार विशेष चर्चा से विहरण करने पर भी मेरा छद्म (ज्ञानावरणादि कर्म) निर्वर्तित नहीं हो रहा है"—ऐसा चिन्तन न करे।

## (२२) दर्शन-परीपह

४४. "निश्चय ही परलोक नहीं है, तपस्वी की ऋद्धि<sup>३</sup> भी नहीं है, अथवा मैं ठगा गया हूँ"—भिक्षु ऐसा चिन्तन न करे।

४५. "जिन हुए थे, जिन हैं और जिन होंगे—ऐसा जो कहते हैं वे झूठ बोलते हैं"—भिक्षु ऐसा चिन्तन न करे।

४६. इन सभी परीपहों का कश्यप-गोत्रीय भगवान् महावीर ने प्ररूपण किया है। इन्हें जान कर, इनमें से किसी के द्वारा कहीं भी सृष्ट होने पर सुनि इनसे पराजित न हों।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१. उपधान—आगम-पठन के समय निश्चित विधि से किया जाने वाला तप।

२. प्रतिमा—एक प्रकार की विशिष्ट साधना।

३. ऋद्धि—तपस्या आदि से उत्पन्न विशेष शक्ति, योगज विभूति।

## तीसरा अध्याय

### चतुरश्रौय

- १ इस प्रकार न शानियों के लिए चार परम-अन दुर्लभ हैं—अनुप्यत्व, शुक्ति, बड़ा और सदाय में पराक्रम ।
- २ सवारी जीव विविध प्रकार के कर्मों का अध्ययन कर विविध नाम वाली शानियों में उतराने हो, पुनः-पुनः इन से अपने विश्व का स्पर्श कर लेते हैं—सब जगह उतराने से जाते हैं ।
- ३ जीव अपने कुछ कर्मों के अनुसार कभी देवलोक में कभी नरक में और कभी अमूर्तों के निवास में उत्पन्न होता है ।
- ४ वही जीव कभी क्षयित होता है, कभी बाधमान, कभी बाधक<sup>१</sup> कभी कीटा, कभी पशुमा कभी बन्धु और कभी बीटी ।
- ५ जिस प्रकार विविध ज्ञेय समस्त जगत् (नाम-भावों) का भाग्य हुए भी निर्देह का प्राप्ति नहीं होते, उन्हीं प्रकार कर्म-कल्पित (कर्म में अध्ययन) जीव शानि-वक में प्रवेश करने हुए भी समाद में निर्देह नहीं पाते—उससे मुक्त होने की इच्छा नहीं करते ।
- ६ जो जीव कर्मों के मूल अनुप्युद्ध दुर्गति और अत्याय वेदना पाते हैं, न करने हुए कर्मों के द्वारा अनुप्युद्ध (नरक स्थित्यन्त्र) शानियों में अपने जाते हैं ।
- ७ बाल क्रम के अनुसार वनाचिन् अनुप्य-वर्ति को देखने पाते कर्मों का भाग्य हो जाता है । उनमें दुर्द्धि प्राप्त होती है । उससे जीव अनुप्यत्व को प्राप्त होता है ।
- ८ अनुप्य-मर्चर प्राप्ति होने पर भी उस समय की शुक्ति दुर्लभ है जिसे सुनकर जीव सा, समा और अहिमा का स्वीकार करने हैं ।
- ९ वनाचिन् कम मूल लेने पर भी उससे बड़ा होना परम दुर्लभ है । बहुत काम भाग्य की क्षार से जाने वाप भाग्य की मूल कर भी उससे भ्रष्ट हो जाते हैं ।

१ बोधक—अज्ञान पर कार्य करने वाला बाधक ।

१० श्रुति और श्रद्धा प्राप्त होने पर भी संयम में पुरुषार्थ होना अत्यन्त दुर्लभ है। बहुत लोग संयम में रुचि रखते हुए भी उसे स्वीकार नहीं करते।

११ मनुष्यत्व को प्राप्त कर जो धर्म को सुनता है, उसमें श्रद्धा करता है, वह तपस्वी संयम में पुरुषार्थ कर, सवृत्त हो, कर्म-रजों को धुन डालता है।

१२. शुद्धि उसे प्राप्त होती है जो ऋजुभूत होता है। धर्म उसमें ठहरता है जो शुद्ध होता है। जिसमें धर्म ठहरता है वह घृत से अभिषिक्त अग्नि की भाँति परम दीप्ति को प्राप्त होता है।

१३. कर्म के हेतु को दूर कर। क्षमा से यश (संयम) का संचय कर। ऐसा करने वाला पायिव शरीर को छोड़ कर ऊर्ध्व दिशा (स्वर्ग या मोक्ष) को प्राप्त होता है।

१४. विविध प्रकार के शीलों की आराधना करके जो देव कल्पों व उनके ऊपर के देवलोको की आयु का भोग करते हैं, वे उत्तरोत्तर महाशुक्ल (चन्द्र-सूर्य) की तरह दीप्तिमान् होते हैं। 'स्वर्ग से पुनः ज्यवन नहीं होता' ऐसा मानते हैं।

१५. वे दैवी भोगों के लिए अपने-आप को अर्पित किए हुए रहते हैं। वे इच्छानुसार रूप बनाने में समर्थ होते हैं। तथा सैकड़ों पूर्व-वर्षों तक—असह्य काल तक वहाँ रहते हैं।

१६. वे देव उन कल्पों में अपनी शील-आराधना के अनुरूप स्थानों में रहते हुए आयु-क्षय होनेपर वहाँ से च्युत होते हैं। फिर मनुष्य-योनि को प्राप्त होते हैं। वे वहाँ दस अगो<sup>१</sup> वाली भोग सामग्री से युक्त होते हैं।

### १. दस अग—

- (१) चार काम-स्कन्ध।
- (२) मित्र।
- (३) ज्ञाति।
- (४) उच्चगोत्र।
- (५) वर्ण।
- (६) नीरोगता।
- (७) महाप्राज्ञता।
- (८) विनीतता।
- (९) यशस्विता।
- (१०) सामर्थ्य।

१७ क्षेत्र और वस्तु, स्वर्ग, पशु और दास-नीचत्व—जहाँ ये चार काम-रूप<sup>१</sup> होते हैं, उन दुर्गों में वे उत्पन्न होते हैं ।

१८ वे मिथ्यान्, ज्ञातिमान्, उच्चनीच भावि, गर्ववान्, नीरोध, महाप्राण, अभिजात, ग्राह्यी और बलवान् होते हैं ।

१९ जीवन भर अनुग्रह मानवीय भावों को शोध कर, पूर-जन्म में जाकीला रहित छप करने वाले होने के कारण वे विद्युद भावि का अनुग्रह करते हैं ।

२० वे सप्त बार जन्मों को दुर्गम जान कर समय का स्वीकार करते हैं । फिर उपस्था न कम के सब अच्छी को पुनः कर धारण छिड़ हो जाते हैं ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

---

१ काम-रूप—जनोक्त जन्म आदि के अथवा विनाश के हेतुभूत प्रवृत्त समुह ।

## चीया अध्ययन

### असंस्कृत

१. जीवन मीमांसा नहीं जा मरणा, इतिवत् प्रमाद मनः । दुष्टापा आने पर कोई धरम नहीं होता । प्रमादी, हिमव जीव अधिरम मनुष्य रिमकी धरम लेगे—गह विचार न ।

२. जो मनुष्य कुमति को स्वीकार कर पापकारों प्रवृत्तियों में घन का उपाजेन करते हैं, उन्हें देग । ये घन को लोभ कर भोग के भूँ में जाने को तैयार हैं । वे धीर (कर्म) ने बेंग हुए मर कर नरक में जाने हैं ।

३. जैसे मेष लम्बाने हुए पचका गया चौर अपने कर्म में ही छेडा जाता है, उसी प्रकार हम लोक और परलोक में प्राणी अपने कृत कर्मों में ही छेडा जाता है । किन्तु हुए कर्मों का पट भोग बिना छुटकारा नहीं होता ।

४. संगारी प्राणी अपने बन्धु-जनो के लिए जो माघारण कर्म करना है, उस कर्म के फल-भाग के समय वे बन्धु-जन बन्धुना नहीं दिगाते—उगवा भाग नहीं बँटाते ।

५. प्रमत्त मनुष्य हम लोक में अथवा परलोक में घन ने प्राप नहीं पाता । अंधेरी गुफा में दीप बुझ गया हो उमर्गी भीति, अनन्त मोह वाला प्राणी पार ले जाने वाले मार्ग को देग कर भी नहीं देगना ।

६. आनुप्रज्ञ पटित मीमे हुए च्यवित्तों के बीच भी जागृत रहे । प्रमाद में विश्वास न करे । मुहूर्त बड़े घोर (निर्दोषी) होने हैं । शरीर दुर्बल है । इसलिए नू भारण्ट पक्षी की भीति अप्रमत्त होकर विचरण कर ।

७. पग-पग पर दोष में भय ग्याता हुआ, थोड़े से दोष को भी पाप मानता हुआ चले । नए-नए गुणों की उपलब्धि हो, तब तक जीवन को पोषण दे । जब वह न हो तब विचार-विमर्श पूर्वक हम शरीर का ध्वंस कर लाले ।

८. सिधित और कवचचारी अद्वय जैसे रण का पार पा जाता है, वैसे ही स्वच्छन्दता का निरोध करने वाला मुनि नगार का पार पा जाता है । पूर्वं जीवन में जो अप्रमत्त होकर विचरण करता है, वह हम अप्रमत्त-विहार से क्षीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होता है ।

९. या पूर्व जीवन में अग्रमत्त नहीं होगा, वह पिछले जीवन में भी अग्रमत्त था नहीं या सचना । 'पिछले जीवन में अग्रमत्त हुआ जाँएँ'—ऐसा निश्चय बचन साधन-साधियों के लिए ही उचित हो सकता है । पूर्व जीवन में प्रमत्त रहने वाला आधु के निमित्त होने पर, सृष्टि के द्वारा धीरे धीरे के क्षण उत्पन्न होने पर विषाद का प्राप्ति होता है ।

१०. कोई भी मनुष्य निवृत्त का उत्साह प्राप्त नहीं कर सकता । हमलिए तुम ठठा ( "जीवन के अन्तिम क्षण में अग्रमत्त करने" — हम आत्मस्थ को त्यागो ) । काम भोगों को छोड़ो । शोक को मचीमति बालो । नमस्कार में रमण करो । आत्म रक्षक और अग्रमत्त हो कर विचरना करा ।

११. बार-बार मोह-मुल्लो पर विजय पाने का यत्न करने वाले उस विहारी धर्म का अनेक प्रकार के प्रतिपन्न स्पर्ण पीड़ित करते हैं । किन्तु वह उन पर मन में भी प्रभाव न करे ।

१२. अनुकूल स्पर्ण विषेक का मन्द करने वाला और बहुत भुग्राहने होने हैं । जैसे स्वयं में मन को न त्यागे । मोक्ष का विचारण करे । मान को दूर करे । भावा का समन न करे । मोक्ष का त्यागे ।

१३. जो अ-य-सीविक मोक्ष "जीवन साँचा या सकता है"—ऐसा कहते हैं कि अविशिष्ट है, प्रेय और द्वेष में कैसे हुए हैं, परत-य है । "वे बर्न रहित हैं"—ऐसा सोच उनसे दूर रहे । अतिम क्षण तक मुक्तो की आराधना करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## पाँचवाँ अध्याय

### अकाम-मरणीय

१. इस महा-अनाद यों दुग्धर मगार-ममुद्र में बर्तित गए । उनमें एक महाप्राण (महार्थार) ने यह स्पष्ट कहा —
२. मृत्यु के दो स्थान कल्पित हैं—अकाम-मरण<sup>१</sup> और सकाम-मरण<sup>२</sup> ।
३. बाल<sup>३</sup> जीवों के अकाम-मरण बार-बार होता है । पण्डितों के सकाम-मरण अधिव-से-अधिक एक बार होता है ।
४. महावीर ने उन दो स्थानों में पहला स्थान यह कहा है, जेमे पानामक्त बाल-जीव बड़ा कृ-कर्म करता है ।
५. जो कोई काम-भोगों में आगस्त होता है, उसकी रति मिथ्या-भाषण की ओर हो जाती है । यह बर्ता है—गरलोक तो मैंने देखा नहीं, यह रति (आनन्द) तो गद्य-रूप है—आत्मा के मामने है ।
६. ये काम-भोग ज्ञान में आये हुए हैं । नविय में होनेवाले संदिग्ध हैं । कौन जानता है—वरलोक है या नहीं ?
७. “मैं लोक-ममुदाय के भाग रहूँगा” (जो गति उनको होगी वही मेरी) ऐसा मान कर बाल-मनुष्य धृष्ट बन जाता है । यह काम-भोग के अनुराग से बलदा पाता है ।
८. फिर वह प्रस तया स्थावर जीवों के प्रति दण्ड का प्रयोग करता है और प्रयोजनवश भयवा बिना प्रयोजन ही प्राणी-ममूह की हिंसा करता है ।
९. हिंगक, अशानी, मृषावादी, मामासी, चुगलखोर और घट मनुष्य मद्य और मांस का भोग करता हुआ, ‘यह श्रेय है’—ऐसा मानता है ।

---

१. अकाम-मरण—अविरतिपूर्ण मरण ।

२. सकाम-मरण—विरतिपूर्ण मरण ।

३. बाल—अज्ञानी ।

१० वह क्षीर और घाही से बन होता है । वह क्षीर मिश्री में गूँथ होता है । वह राग और द्वेष—दोनों से सभी प्रकारके-बन्ध का संघट्ट करता है जैसे बँधुआ मुक्त और धरीर—पैनों से मिट्टी का ।

११ फिर वह रोम से स्पृष्ट होने पर ज्ञान बना हुआ परिताप करता है । अपने कर्मों का चिन्तन कर परलोक से भयभीत होता है ।

१२ वह सोचना है—मैंने उन नारकीय स्वामी के विषय में सुना है जो शील रहित तथा क्रूर-कर्म करने वाले अज्ञानी मनुष्यों को अन्तिम गति है और अभी प्रसाद देना है ।

१३ उन नरका में जना उत्पन्न होने का स्वप्न है, बीता मैंने सुना है । वह आधुन्य शीघ्र होने पर अपने दुष्ट-कर्मों के अनुसार चढ़ा जाता हुआ अनुताप करता है ।

१४ जैसे कोई शाहीबादु समस्त राजमात्र को जमता हुआ भी उसे छाड़ कर विषय भाव में चला पड़ता है और शाही की चुरी हूट जाने पर हाक करता है—

१५. हमी प्रकार हम का सम्पन्न कर अर्घ्य का स्वीकार कर, धातु के मुक्त में पड़ा हुआ अज्ञानी चुरी हूट्टे हुए माझवान की तरह हाक करता है ।

१६ फिर मरणान्त के समय वह अज्ञानी मनुष्य परलोक के भय से डरता होता है और एक ही क्षण में हार जाने जाने कुजारी की तरह धोके करता हुआ अनाम-भरण में भरता है ।

१७ वह अज्ञानियों के अज्ञान-भरण का कारण प्रतिपादन किया गया है । भव परिधिता के सदान-भरण की मुझसे सुनो ।

१८ बीना मैंने सुना भी है—पुण्यशाली, संतबी और विद्वेन्द्रिय पुरुषों का भरण प्रबल और आभास रहित होता है ।

१९. वह सदान-भरण न भव विपुलों की प्राप्ति होता है और न मनी गृहस्थों को । क्योंकि गृहस्थ विविध प्रकार के धोम वाले होते हैं और भिक्षु भी विषय-शील बान् होते हैं ।

२० कुछ भिक्षुओं से गृहस्थी का सवन प्रभाव होता है । किन्तु साधुका का समय सब गृहस्थों से प्रभाव होता है ।

२१ बीयर, चम, नमस्त्र, जटाधारीय, संवारी (उत्तरीय वस्त्र) और फिर मुराना—ये सब दुष्टशील वाले साधु की रसा नहीं करते ।

२२ भिक्षा से जीवन चलाने वाला भी यदि दुष्टीय हो तो वह नरक से नहीं छूटा । भिक्षु हा का शुद्ध, यदि वह मुखरी है तो स्वर्ग में जाता है ।





२० मयात्री मुनि अपने-आप का तोल कर अनाम और अनाम-मरण के भेद की जानकारी कर, यदि यमोचित महिष्युत्रा और उपाय (उपायगत मोक्ष) आत्मा के द्वारा प्राप्त रहे—मरण-काल न उद्विग्न न रहे।

२१ अब मरण अभिप्रेत है, उन समय जिस अज्ञा से मुनि-धर्म या सत्सत्ता की स्वीकार किया, वही ही अज्ञा रहने वाला मित्र मुक्त के समीप कष्ट बनिन रोमांच की दूर कर, धीरे-धीरे के भेद की हल्ला करे—उनकी सार-अज्ञा न करे।

२२ वह मरण-काल प्राप्त होने पर सत्सत्ता के द्वारा धीरे-धीरे का त्याग करता है, सत्-परिज्ञा, इन्द्रिणी या आवाचन—“न सीमा न न निती एव की स्वीकार कर अनाम मरण के करता है।

—ऐसा मैं करता हूँ।

## छठा अध्यायन

### क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय

१. जितने अविद्यावान् (मिथ्यात्व में अभिभूत) पुरुष हैं, वे सब दुःख को उत्पन्न करने वाले हैं। वे दिष्टमूढ की भाँति मूढ़ बने हुए इस अनन्त समार में बार-बार लुप्त होते हैं।

२. इसलिए पण्डित पुरुष प्रचुर वधनों व जाति-पथों (चौरासी लाख योनियों) की ममीला कर स्वयं मृत्यु की गवेपणा करे और सब जीवों के प्रति मैत्री का आचरण करे।

३. जब मैं अपने द्वारा किये गये कर्मों से छेदा जाता हूँ, तब माता, पिता, पुत्र-वधू, भाई, और भोरम-पुत्र—ये सभी मेरी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते।

४. सम्यक् दर्शन वाला पुरुष अपनी बुद्धि से यह अर्थ देखे; गृद्धि और स्नेह का छेदन करे; पूर्व परिचय की अभिलाषा न करे।

५. गाय, घोड़ा, मणि, कुण्डल, पद्म, दास और पुरुष-समूह—इन सब को छोड़। ऐसा करने पर तू काम-रूपी<sup>१</sup> होगा।

(चल और अचल सम्पत्ति, धन, धान्य और गृहोपकरण—ये सभी पदार्थ कर्मों में दुःख पाते हुए प्राणी को मुक्त करने में समर्थ नहीं होते।)

६. सब दिशाओं में होने वाला सब प्रकार का अध्यात्म (मुख) जैसे मुझे इष्ट है, वैसे ही दूसरों को इष्ट है और सब प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है—यह देख कर भय और वैर में उपरत पुरुष प्राणियों के प्राणों का घात न करे।

७. "परिग्रह नरक है"—यह देख कर वह एक तिनके को भी अपना बना कर न रखे (अथवा "अदत्त का आदान नरक है"—यह देख कर बिना दिया हुआ एक तिनका भी न ले)। असंयम से जुगुप्सा करनेवाला मुनि अपने पाश में गृहस्थ द्वारा प्रदत्त भोजन करे।

---

१. काम-रूपी—इच्छानुकूल रूप धनाने में समर्थ देव।

८ इस प्रकार मैं कुछ सोच लेना चाहने हूँ कि पापों का त्याग किस बिना ही आचार को मान्य पाप से जीव सब दुःखों में मुक्त हो जाता है।

९ 'ज्ञान न ही मान्य होता है'—यह ऐसा कहने हूँ, पर उसके लिए यदि बिना नहीं करना, वे सबक सब और मोक्ष के सिद्धान्त की स्थापना करने वाले हैं। वे सबक सभी की ओरता से अपने आप का आश्वासन देने पाते हैं।

१० विविध भाषाओं पाप नहीं जानीं। विद्या का अनुमानन भी नहीं पाप देना है? अपने आप का विविध मान्य पाप अज्ञानी मनुष्य विविध प्रकार से पाप-कर्मों में डूबे हुए हैं।

११ जो कोई मनुष्य, सबक और भाषा से लीर, सब और सब में सबक मान्य होने हैं, वे सभी अपने लिए कुछ उल्लेख करने हैं।

१२ व इस अज्ञान संसार में अज्ञान-मरणा के लक्ष्य मार्ग का प्राप्ति क्रिये हुए हैं। इच्छित सब उपाय स्थापना का देव कर मुनि अज्ञान होकर परिश्रम करे।

१३ अज्ञानी होकर सभी की विषयों की आकांक्षा न करे। कुछ कर्मों के साथ के लिए ही इस संसार का चारण करे।

१४ धर्म के हेतुओं को दूर कर मुनि समस्त होकर परिश्रम करे। गुरुद्वय के घर में बहुत निष्काम आचार-भावों की आवश्यकता प्राप्त कर मान्य करे।

१५ समस्त मुनि सग लक्ष्य उन्नता भी संसृष्ट न कर—बाकी न रहे। सभी की शक्ति सब की ओरता न उन्नता हुआ पाप लहर बिना क लिए प्रशस्त करे।

१६ स्वभाव-मरिचि के मुक्त और लज्जावान् मुनि गौरीय अभियन्त विहार करे। यह अज्ञान रहकर गुरुद्वय से विषयवात की संवेदना करे।

१७ अनुभूत ज्ञानी, अनुभूत-दर्शि, अनुभूत-ज्ञान-प्राप्त-भारी, अहम्, ज्ञान-मुक्त ब्रह्मण्ड और आकाशाना सबकान् के लेना करे है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

## सातवां अध्यायन

### उरभ्रीय

१. जैसे पाहुने के उद्देश्यमें कोई मेमने का पोषण करता है। उसे चावल, भूंग, उटद आदि खिलाना है और अपने आँगन में ही पालता है।
२. इस प्रकार वह पुष्ट, बलवान्, मोटा, घटे पेट वाला, तृप्त और विपुल देह वाला हो कर पाहुने की आकाङ्क्षा करता है।
३. जब तक पाहुना नहीं आना तब तक ही वह बेचारा जीना है। पाहुने के आने पर उसका सिर छेद कर उसे मारा जाते हैं।
४. जैसे पाहुने के लिए निश्चिन्त किया हुआ वह मेमना यथार्थ में उसकी आकाङ्क्षा करना है, वैसे ही अर्धमिष्ट्र अज्ञानी जीव यथार्थ में नरक के आयुष्य की इच्छा करता है।
५. हिमक, अन्न, मृपावादी, मार्ग में लूटने वाला, दूसरों की दी हुई वस्तु का बीच में ही हर्षण करने वाला, चोर, मायावी, चुराने की कल्पना में व्यस्त, शठ—
६. स्त्री और विषयो में गृह, महाभारम और महापरिग्रह वाला, मुरा और माम का उपभोग करने वाला, बलवान्, दूसरों का दमन करने वाला—
७. बकरे की भाँति कर-कर शब्द करते हुए मांस को खाने वाला, तोद वाला और उपचित रक्त वाला व्यक्ति उसी प्रकार नरक के आयुष्य की आकाङ्क्षा करता है जिस प्रकार मेमना पाहुने की।
८. आसन, मय्या, यान, धन और काम-विषयों को भोग कर, दुःख से एकत्रित किये हुए धन को द्यूत आदि के द्वारा गवाँ कर, बहुत कर्मों को संचित कर—
९. कर्मों से भारी बना हुआ, केवल वर्तमान को ही देखने वाला जीव मरणान्तकाल में उसी प्रकार शोक करता है जिस प्रकार पाहुने के आने पर मेमना।
१०. फिर आयु क्षीण होने पर वे नाना प्रकार की हिंसा करने वाले कर्म-वशावर्ती अज्ञानी जीव देह से च्युत होकर अन्धकारपूर्ण आमुरीय दिशा (नरक) की ओर जाते हैं।

११ जेणे कोई मनुष्य वाणिजी<sup>१</sup> क सिध्द हमार कार्यालय<sup>२</sup> सेवा दना है, जेणे कोई राजा अथवा जाम को या घर राज्य से टाक वा कीटना है वसे ही जो व्यक्ति मानवीय शोर्षों में आनक हाता है, वह दही भाषों को हार जाना है।

१२ दही भाषा को गुलना में मनुष्य के काम भीष उनै ही मगस्य हैं सिउन कि हमार कार्यालयों की गुलना में एक वाणिजी और राज्य की गुलना में एक भाष। निम्न भाष और विम्न काम भाष मनुष्य की भाष और काम-भाषों में हमार गुना अधिक है।

१३ प्रतापान् पुनर की देवकीक में अनेक वर मनुन (अनन्यकाल) की स्थिति होती है—यह ज्ञान होने पर जो मूल मनुष्य की वरों में कम जीवन के लिए उन बीषकालीन गुना की हार जाना है।

१४ जम तीन बलिष्ठ मूल पूजा का सवर नियम है। उनमें में एक लाभ उठाता है, एक मूल नेवर कीटना है—

१५ और एक मूल का भी वरों पर बालन जाता है। यह व्यापार की करना है। इसी प्रकार जम क विषय में जानना चाहिए।

१६ मनुष्यत्व मूल कम है। देवमति ज्ञान-मय है। मूल क नाश में बीष निदिपन हो मरक और निमज्ज वनि में जान है।

१७ अज्ञानी ज्ञान की की प्रकार की वनि हाती है—मरक और नियम। वही उसे बप-ईश्वर जातना प्राप्त हाती है। यह कातुन और वनर पुनर देवत्व और मनुष्यत्व का वहन ही हार जाना है।

१८ द्विषिष गुनति में गता हुआ बीष सदा हारा हुआ जाना है। उनका उनम बाहर निरनना दीवकाल क बाद भी कुलम है।

१९ इस प्रकार हारे हुए की देव मर तथा बाल और पण्डित की गुलना कर जा मानुषी शोर्ष में जाने है, वे मूल कम के साथ प्रवेश करते हैं।

२० जो मनुष्य विविध परिमाण वाली विचारार्थ द्वारा घर में रहने हुए भी मुक्त है, व मानुषी शोर्ष में उन्नत होने हैं। क्योंकि ज्ञानी कर्म-साध होते हैं—जाने किसे हृष्ट का कम अकस्य पान है।

१ वाणिजी—एक प्रकार का छोटा शिवका, एक वपु का अज्ञानीवां भाष।

२ कार्यालय—कोई।

२१. जिनके पाप विपुल निशा है, वे धील-मथ्यन् और उगरोतर गुणों को प्राप्त करने वाले पराक्रमी पुरुष मूल धन (मनुष्यत्व) का अतिक्रमण करके देवत्व को प्राप्त होते हैं ।

२२. इस प्रकार पराक्रमी भिक्षु और गृहस्थ को (अर्थात् उनके पराक्रम-फल को) जान कर विवेकी पुरुष ऐसे नाम को कैसे योग्या ? वह तपायों के द्वारा पराजित होता हुआ गया यह नहीं जानता कि "मैं पराजित हो गया हूँ ?" यह जानते हुए उसे पराजित नहीं होना चाहिए ।

२३. मनुष्य मथ्यन्धी काम-भोग, देव मथ्यन्धी काम-भोगों की तुलना में बने ही हैं, जैसे कोई व्यक्ति कुम्ह की नाक पर टिके हुए जन-विन्दु की मृदु सेतुना करता है ।

२४. इस अति-सक्षिप्त आयु में ये काम-भोग बुधाग्र पर स्थित जन-विन्दु जितने हैं । फिर भी किस हेतु को सामने रखकर मनुष्य योग-क्षेम को नहीं समझता ?

२५. इस मनुष्य भव में काम-भोगों में निवृत्त होने वाले पुरुष का आत्म-प्रयोजन नष्ट हो जाता है । वह पार ले जाने वाले मार्ग को भुन कर भी बार-बार भ्रष्ट होता है ।

२६. इस मनुष्य भव में काम-भोगों से निवृत्त होने वाले पुरुष का आत्म-प्रयोजन नष्ट नहीं होता । वह औदारिक क्षय का निरोध कर देव होता है—ऐसा मैंने सुना है ।

२७. (देवलोक से च्युत होकर) वह जीव विपुल ऋद्धि, धुनि, यश, वर्ण, जीवित और अनुत्तर सुख वाले मनुष्य-कुलों में उत्पन्न होता है ।

२८. तू बाल जीव की मूर्खता को देख । वह अधर्म को ग्रहण कर, धर्म को छोड़, अधर्मिष्ठ बन नरक में उत्पन्न होता है ।

२९. सब धर्मों का पालन करने वाले धीर-पुरुष की शीरता को देख । वह अधर्म को छोड़ कर, धर्मिष्ठ बन देवों में उत्पन्न होता है ।

३०. पण्डित मुनि बाल-भाव और अवाल-भाव की तुलना कर, बाल-भाव को छोड़, अवाल-भाव का सेवन करता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## आठवाँ अध्याय

### कापिलीय

१ अश्वत्थ, बणास्वत्थ और बुन्द-बहुल नमार में देना चीन-भा बर्न है जिसमें वे दुर्गति न न जाऊँ ?

२ पूर सम्बन्ध का स्वाम नर रिशों की वस्तु में स्नेह न करे । स्नेह करने वाला क साध भी स्नेह न करने वाला मिलु दोषा और प्रदोषा न मुक्त हो जाता है ।

३ वैश्वज्ञान और वसन्त ने मुक्त तथा विपत्तमोह मुनिवर ने सब चीकों के हिन्ने और वसन्त के लिए तथा उन चीच की चीचों की मुक्ति के लिए कहा ।

४ मिलु कम-बच की हनुभुन सभी शम्भिवो और कलह का रसाव करे । काम भागी के नर प्रवारी न बाध देना हुआ आत्म रसक मुनि उनमें निष्प न बने ।

५ आत्मा की वृद्धि करने काय भावामित्र (आसक्ति जनक जाग) में निमग्न हित और संयम में विपरीत बुद्धि वाला, अशानी, मन्द और बूढ़ चीच उनी तरह (बर्नो न) बँध जाता है जैसे स्नेह में मगनी ।

६ वे काम भाग दुस्सख हैं, अचीर पुनरो द्वारा वे मुत्पन्न नहीं हैं । जा मुवनी साधु हैं वे पुनर काम-चीकों का उनी प्रसार तर जात हैं जैसे वनिर्द ममुत्र का ।

७ कुछ वस्तु की भीति अशानी पुनर 'हम' बचन है ऐसा करने हुए भी प्राण-वच को नहीं जानत । वे मन् और बाल-मुत्पन्न अपनी चापमयी दृष्टिमा से मन्ध में जात हैं ।

८ प्राण वच का अनुमान करने वाला पुनर भी सब दुर्गों से मुक्त नहीं हो सपना । उन कार्य तीर्थकरों ने एना कहा है जिन्होंने इस माधु पम की प्रज्ञापना की ।

९ जा जीवा की हिना नहीं करता उन चापी मुनि को 'अमित्र' (मम्यत्र प्रदत्त) कहा जाता है । उनसे पापकर्म बने ही दूर हो जाते हैं, जैसे उमन प्रदेश में पानी ।



१०. जगत् के आश्रित जो तस और स्यावर प्राणी हैं उनके प्रति मन, वचन और काया—किसी भी प्रकार से दण्ड का प्रयोग न करें।

११. भिक्षु गृद्ध एषणाओं को जान कर उनमें अपनी आत्मा को स्थापित करें। यात्रा (संयम-निर्वाह) के लिए ग्रास की एषणा करें। भिक्षा-जीवी रसों में गृद्ध न हो।

१२. भिक्षु नीरस अन्न-पान, शीत-पिण्ड, पुराने उड़द, बुक्कस (सारहीन), पुलाक (रूखा) या मंथु (वैर या सत्तू का चूर्ण) का जीवन-यापन के लिए सेवन करें।

१३. जो लक्षण-शास्त्र,<sup>१</sup> स्वप्न-शास्त्र और अग-विद्या<sup>२</sup> का प्रयोग करते हैं, उन्हें साधु नहीं कहा जाता—ऐसा आचार्यों ने कहा है।

१४. जो डम जन्म में जीवन को अनियंत्रित रखकर समाधि-योग से परिभ्रष्ट होते हैं वे काम-भोग और रसों में आसक्त बने हुए पुरुष असुर-काय में उत्पन्न होते हैं।

१५. वहाँ से निकल कर भी वे ससार में बहुत पर्यटन करते हैं। वे प्रचुर कर्मों के लेप से लिप्त होते हैं। इसलिए उन्हें बोधि प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है।

१६. घन-धान्य से परिपूर्ण यह समूचा लोक भी यदि कोई किसी को दे दे, उससे भी वह सन्तुष्ट नहीं होता—तृप्त नहीं होता, इतना दुष्पूर है यह आत्मा।

१७. जैसे लाम होता है वैसे ही लोभ होता है। लाम से लोभ बढ़ता है। दो माशे सोने से पूरा होने वाला कार्य करोड़ से भी पूरा नहीं हुआ।

१८. वक्ष में ग्रथि (स्तनों) वाली, अनेक चित्त वाली तथा राक्षसी का भाँति भयावह स्त्रियो में आसक्त न हो, जो पुरुष को प्रलोभन में डाल कर उसे दास की भाँति नचाती है।

१. लक्षण-शास्त्र—शरीर के चिन्हों के आधार पर शुभ-अशुभ बतलाने का शास्त्र।

२. अग-विद्या—शारीरिक अवयवों के स्फुरण के आधार पर शुभ-अशुभ बताने वाला शास्त्र।

१९. हिन्दुओं को त्यागने वाला मनवाट उनमें गुड़ न बन । बिछु धर्म का  
अनि मनाज ज्ञान कर उममे जगनी ज्ञानवा का व्यापित करे ।

२०. इस प्रकार विमुक्त प्रजा वाले बलि ने यह धर्म कहा । जो इसका  
आचरण करेंगे वे ममार-सपुत्र को लहेंगे और जना राधा की आराधना  
कर लेंगे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## नौवाँ अध्यायन

### नमि-प्रव्रज्या

१. नमिराज का जीव देवलोक से च्युत होकर मनुष्य-लोक में उत्पन्न हुआ । उसका मोह उपशान्त था जिससे उसे पूर्व-जन्म की स्मृति हुई ।
२. भगवान् नमिराज पूर्व-जन्म की स्मृति पा कर अनुत्तर धर्म की आराधना के लिए स्वयं-संबुद्ध हुआ और राज्य का भार पुत्र के कंधों पर ढाल कर अभिनिष्क्रमण किया—प्रव्रज्या के लिए चल पड़ा ।
३. उस नमिराज ने प्रवर अन्तःपुर में रह कर देवलोक के भोगों के समान प्रधान भोगों का भोग किया और संबुद्ध होने के पश्चात् उन भोगों को छोड़ दिया ।
४. भगवान् नमिराज ने नगर और जन-पद सहित मिथिला नगरी, सेना, रनिवास और सब परिजनो को छोड़ कर अभिनिष्क्रमण किया और एकान्त-वासी बन गया ।
५. जब राजर्षि नमि अभिनिष्क्रमण कर रहा था, प्रव्रजित हो रहा था, उस समय मिथिला में सब जगह कोलाहल होने लगा ।
६. उत्तम प्रव्रज्या-स्नान के लिए उद्यत हुए राजर्षि से देवेन्द्र ने ब्राह्मण के रूप में आ कर इस प्रकार कहा—
७. 'हे राजर्षि ! आज मिथिला के प्रासादों और गृहों में कोलाहल से परिपूर्ण दारुण शब्द क्यों सुनाई दे रहे हैं ?'
८. यह अर्थ सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से इस प्रकार कहा—
९. 'मिथिला में एक चैत्य-वृक्ष था, शीतल छाया वाला, मनोरम, पत्र, पुष्प और फलों से लदा हुआ और बहुत पक्षियों के लिए सदा उपकारी ।
१०. 'एक दिन हवा चली और उस चैत्य-वृक्ष को उखाड़ कर फेंक दिया । हे ब्राह्मण ! उसके आश्रित रहने वाले ये पक्षी दुःखी, अशरण और पीड़ित होकर आक्रन्द कर रहे हैं ।'

११ इस अर्थ का मुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपति ने इस प्रकार कहा—

१२. 'यह अग्नि है और यह वायु है। यह आपका मन्दिर जल रहा है। भगवन् ! आप अपने रनिवान की ओर क्या नहीं देखते ?'

१३ यह अर्थ मुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजपति ने देवेन्द्र ने इस प्रकार कहा—

१४ 'हे इन्द्र सोम, जिसके पास अपना कुछ भी नहीं है, मुखपूर्वक रहते और मुन से जीते हैं। निविदा जल रही है जन्म में मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है।

१५ 'मुन और जिनको से मुन तथा व्यसथाय से निवृत्त विषु के लिए बाईं वस्तु प्रिय भी नहीं होती और अग्नि भी नहीं होती।

१६ 'यह सत्वाधा ने मुन, 'मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं'—इस प्रकार एकाग्र-धी, गुरु-स्वामी एवं उपस्थी विषु को विषुन मुन छोटा है।'

१७ इस अर्थ का मुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपति ने इस प्रकार कहा—

१८ 'हे अग्नि ! अभी तुम परसीदा, मुन जाने नगर-भार, बाईं और बाग्यी' बनवायी, फिर मुनि बन जाना।'

१९ यह अर्थ मुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपति ने इस प्रकार कहा—

२० 'अग्नि की नगर, तब और तब की अर्थता, जना की (मुन, बाईं और बाग्यी स्थायी), नम, वचन और वाय-मुनि से मुनित, मुन और मुनित-विषुन परसीदा बना—

२१ 'परम की वस्तु, ईश-विमिति की उलकी और और वृत्ति का उलकी घूट बना, उसे वाय ने कवि।

२२ 'तब-अग्नि बाह-वायु से मुन वस्तु के द्वारा वच-कयी कच को नेद जाने। इस प्रकार नवाय का वल कर मुनि नवाय से मुन हो जाता है।'

२३ इस अर्थ का मुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपति से इस प्रकार कहा—

२४. 'हे क्षत्रिय ! अभी नुम प्रागाद, यद्यमान-मृत और मरणात्मा बनवाओ, फिर मुनि बन जाना ।'

२५. यह अर्थ नुन कर हेतु और कारण ने प्रेरित हुए नमि राजपि ने देवेन्द्र ने इस प्रकार कहा—

२६. 'यह मदिम ही बना जाना है जो मार्ग ने घर बनाना है । अपना घर यही बनाना चाहिए जहाँ जाने की इच्छा हो—जहाँ जाने पर फिर लौट जाना न हो ।'

२७. इस अर्थ को नुन कर हेतु और कारण ने प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपि ने इस प्रकार कहा—

२८. 'हे क्षत्रिय ! अभी नुम यदमारो, प्राण हृत्त करके जाने मृते, मिरहन्टी और योगी का निघट कर नगर में मारो माराने वने, फिर मुनि बन जाना ।'

२९. यह अर्थ नुन कर हेतु और कारण ने प्रेरित हुए नमि राजपि ने देवेन्द्र ने इस प्रकार कहा—

३०. 'मनुष्यों द्वारा अनेक बार मिथ्या-ज्ञान का प्रयोग किया जाना है । अपराध नहीं करने जाने मारी परने जाने हैं और अपराध करने वाला मृत जाता है ।'

३१. इस अर्थ को नुन कर हेतु और कारण ने प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपि ने इस प्रकार कहा—

३२. 'हे नराधिय क्षत्रिय ! जो कोई राजा मनुष्य के सामने नहीं मुक्त उन्हे वश में करे, फिर मुनि बन जाना ।'

३३. यह अर्थ नुन कर हेतु और कारण ने प्रेरित हुए नमि राजपि ने देवेन्द्र ने इस प्रकार कहा—

३४. 'जो पुरुष दुर्जय संग्राम में दग लाने चोलाओं की जीतना है, इसकी अपेक्षा वह एक अपने-आप को जीतता है, वह उत्तरी परम विजय है ।

३५. 'आत्मा के माव ही बुद्ध कर, बाहरी बुद्ध ने तुम्हें क्या लान ? आत्मा को आत्मा के द्वारा ही जीत कर मनुष्य नृप पाता है ।

३६. 'पाँच इंद्रियाँ, प्रीति, मान, माया, लोभ और मन—ये दुर्जय हैं । एक आत्मा को जीत लेने पर ये सब जीत लिए जाते हैं ।'

३७. इस अर्थ को नुन कर हेतु और कारण ने प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपि से इस प्रकार कहा—

३८ 'हे सवित्र ! अभी तुम प्रभुरब्ध करो, धर्म-साक्षात्कार को जीवन बनाओ, दान दो, भोग मोक्ष और यज्ञ करो, फिर मुनि बन जाओ।'।

३९. यह अथ मुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजपि ने दण्ड से इस प्रकार कहा—

४० 'आ मनुष्य प्रति माम कम क्षम बाधा का दान देना है उनसे लिए भी तय्य ही श्रेय है, धर्म फिर वह कुछ भी न दे।'।

४१ इस अर्थ को मुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपि से इस प्रकार कहा—

४२ 'हे मनुष्यादि ! तुम वात्सल्य का छोड़ कर दूसरे आप्रम (उपाय) की इच्छा कर रहे हो, वह उचित नहीं। तुम नहीं रहकर पीछे में रहना—अनुग्रह, तप आदि का पालन करो।

४३ 'य' अथ मुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजपि ने देवेन्द्र से इस प्रकार कहा—

४४ 'आ अविदेही मनुष्य मातृ-मातृ की सत्त्वा व' मन्मथर पुन की मोक्ष पर दिए उनका-या आहार करे ना भी वह मु-आप्राप्त धर्म (धर्म-आदि सत्य न मुनि) की मातृहर्षी बना दो भी प्राप्त नहीं होता।

४५ इस अर्थ को मुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपि से इस प्रकार कहा—

४६ 'ह सवित्र ! अभी तुम चौकी साता, बलि मानी, वनि के वृत्तन, धर्म, धर्म और मन्मथर की वृद्धि करो, फिर मुनि बन जाओ।

४७ यह अथ मुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजपि ने देवेन्द्र से इस प्रकार कहा—

४८ 'वराचिन् सप्त और चौकी के वृत्तन के समान वस्तुत्व पवन हा जाएँ, ना भी लानी पुन को उनसे कुछ भी नहीं होता, क्योंकि इच्छा आचार के समान वस्तुत्व है।

४९ 'शुम्भी, पावक, भी, माता और पुन—ये सब एक ही इच्छापूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है यह जान कर तप का आचरण कर।'।

५० यह अथ मुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमि राजपि से इस प्रकार कहा—

५१ 'ह सवित्र ! आप्रम है कि मुन इस अनुग्रह-आप्त व महत् प्राप्त भागों का त्याग रहे हा और मन्मथर नाम भावा का इच्छा कर रहे हा—इस प्रकार तुम अपने सत्त्व में ही प्रसन्न हो रहे हा।

५०. यह अर्थ मुन यह हेतु और कारण में प्रेरित हुए नमि राजपि ने देवेन्द्र ने इस प्रकार कहा—

५१. 'ताम-भोग मगर है, जिस है जोर आनीशिव सर्व में मन्त्र है । ताम-भाग को दृष्टा करने वाले, उनका भोगन न करने हुए भी दुर्गति को प्राप्त होने है ।

५२. 'मनुष्य प्रीति में अधोगति में जाता है । काम में प्रथम गति होती है । माया ने गुणों का विनाश होता है । मोक्ष में दोनों प्रकार का—ऐश्वर्य और पारलौकिक—भोग होता है ।'

५३. देवेन्द्र ने ब्राह्मण का यह श्रोत्र, इन्द्र रूप में प्राप्त ११ नमि राजपि की वन्दना की और इन मधुर शब्दों में स्तुति करने लगा—

५४. 'हे राजपि ! आश्चर्य है तुमने प्रीति को जीता है । आश्चर्य है तुमने मान को पराजित किया है ! आश्चर्य है तुमने माया को दूर किया है ! आश्चर्य है तुमने मोक्ष को यश में किया है !

५५. 'अहो ! उत्तम है नृमहाराज आज्य ! अहो ! उत्तम है नृमहाराज नादं ! अहो ! उत्तम है नृमहाराज क्षमा ! अहो ! उत्तम है नृमहाराज विनोदना !

५६. 'भगवन् ! तुम इस लोक में भी उत्तम हो और परमांक में भी उत्तम होओगे । तुम कर्म-रज में मुक्त होकर लोक के सर्वोत्तम स्थान मोक्ष को प्राप्त करोगे ।'

५७. इस प्रकार इन्द्र ने उत्तम श्रद्धा से राजपि की स्तुति की और प्रशिक्षणा करने हुए बार-बार वन्दना की ।

५८. इसके पश्चात् मुनिवर नमि के चक्र और अक्षुण्ण में विविध चरणों में वन्दना कर ललित और चमक कुण्डल एवं मुकुट को धारण करने वाला इन्द्र आकाश मार्ग में चला गया ।

५९. नमि राजपि ने अपनी आत्मा को नमा लिया — मयम के प्रति समर्पित कर दिया । वे माक्षान् देवेन्द्र के द्वारा प्रेरित होने पर भी धर्म में विचलित नहीं हुए और गृह तथा वैदेही (मिथिला) को त्याग कर आमण्ड में उन्मिषित हो गये ।

६०. संवृद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण पुरुष इसी प्रकार करते हैं । वे भोगों से निवृत्त होते हैं जैसे कि नमि राजपि हुए ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## दसवीं अध्यायन

### द्रुमपत्रक

१ रात्रियों बीनने पर सुख का वक्ता हुआ वान विम प्रहार गिर जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन एक दिन समाप्त हो जाता है इसलिए है नीतम । तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

२ दुःख की मोह पर लटकते हुए जीवन बिन्दु की अवधि जैसे घड़ी गना है वन ही मनुष्य जीवन की स्थिति है, इसलिए है नीतम । तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

३ घर आधुन्य जगत् मधुर है । यह जीवन बिन्दुओं के सरा हुआ है, इसलिए है नीतम । तू पूर्व-मचिन कर्म रत्न की प्रशम्भित कर । क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

४ सब प्राणियों की विरहान तक भी मनुष्य मन्त्र मिलना सुलभ है । कर्म के विपाक लोह होने हैं, इसलिए है नीतम । तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

५ पृथ्वी-काय में उत्पन्न हुआ जीव अचिर-से-अचिर अस्तम्य-काल तक बही रह जाता है, इसलिए है नीतम । तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

६ अग्नि-काय में उत्पन्न हुआ जीव अचिर में अचिर अस्तम्य काल तक बही रह जाता है, इसलिए है नीतम । तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

७ तेजस्-काय में उत्पन्न हुआ जीव अचिर-से-अचिर अस्तम्य काल तक बही रह जाता है इसलिए है नीतम । तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

८ वायु-काय में उत्पन्न हुआ जीव अचिर-से अचिर अस्तम्य काल तक बही रह जाता है, इसलिए है नीतम । तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

९ अन्तरिक्ष-काय में उत्पन्न हुआ जीव अचिर-से-अचिर अस्तम्य काल तक बही रह जाता है इसलिए है नीतम । तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

१० ईश्वर-काय में उत्पन्न हुआ जीव अचिर-से-अचिर अस्तम्य-काल तक बही रह जाता है इसलिए है नीतम । तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।



११. श्रीन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक-से-अधिक मन्देय-काल तक वहीं रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

१२. मनुरिन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक-से-अधिक मन्देय-काल तक वहीं रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

१३. पनेन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक-से-अधिक मान-आठ जन्म-ग्रहण तक वहीं रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

१४. देव और नर-प्राणि में उत्पन्न हुआ जीव अधिक-से-अधिक एक-एक जन्म-ग्रहण तक वहीं रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

१५. इस प्रकार प्रमाद-बहुल जीव शुभ-अशुभ कर्मों द्वारा जन्म-मृत्युमय समार में परिभ्रमण करना है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

१६. मनुष्य-जन्म दुर्लभ है । उसमें मिलने पर भी आर्य देश में जन्म पाना और भी दुर्लभ है । बहुत मारे लोग मनुष्य होकर भी दम्ब और भ्रष्ट हो जाते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

१७. आर्य देश में जन्म मिलने पर भी पाँचों इन्द्रियों में पूर्ण स्थिति होना दुर्लभ है । बहुत मारे लोग इन्द्रियहीन हो जाते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

१८. पाँचों इन्द्रियों पूर्ण स्थिति होने पर भी उत्तम धर्म की श्रुति दुर्लभ है । बहुत मारे लोग गुरुशिक्षा की सेवा करने वाले होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

१९. उत्तम धर्म की श्रुति मिलने पर भी श्रद्धा होना और अधिक दुर्लभ है । बहुत मारे लोग भ्रष्टाचार का निषेध करने वाले होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

२०. उत्तम धर्म में श्रद्धा होने पर भी उमर का आचरण करनेवाले दुर्लभ हैं । इस लोक में बहुत मारे लोग काम-गुणों में मूर्च्छित होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

२१. तेरा शरीर जीर्ण हो रहा है, केस मफेद हो रहे हैं और श्रोत्र का पूर्ववर्ती बल क्षीण हो रहा है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

२२. तेरा घरीर जीव हो रहा है, केस लपेट हो रहे हैं और बलु का पूर्व-वर्ती बल जीव हो रहा है, इसलिए ही नीतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२३. तेरा घरीर जीव हो रहा है, केस लपेट हो रहे हैं और आश का पूर्ववर्ती बल जीव हो रहा है, इसलिए ही नीतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

२४. तेरा घरीर जीव हो रहा है, केस लपेट हो रहे हैं और मित्र का पूर्ववर्ती बल जीव हो रहा है, इसलिए ही नीतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२५. तेरा घरीर जीव हो रहा है केस लपेट हो रहे हैं और स्वयं का पूर्ववर्ती बल जीव हो रहा है, इसलिए ही नीतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२६. तेरा घरीर जीव हो रहा है केस लपेट हो रहे हैं और सब प्रकार का पूर्ववर्ती बल जीव हो रहा है, इसलिए ही नीतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२७. जिस योग, काय-मुक्ती, देहा और विविध प्रकार के 'जिज्ञ-वापी' योग घरीर का जगमग करने हैं जिससे यह घरीर चरित्रहीन और विनष्ट होगा है इसलिए ही नीतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२८. जिस प्रकार मरु-जल का कृष्ण (रक्त-जल) जल में मिल नहीं होता, वही प्रकार मू मरुत स्नेह का विच्छेद कर विच्छिन्न बन । हे नीतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

२९. ना बन और पत्नी का स्वाम कर तू अनन्तर इति के लिए घर में निजला है । समस्त विषे हुए काम मोहा का फिर के मन भी । हे नीतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३०. मित्र, बान्धव और विपुल धन राशि का छूट कर फिर से उनकी परपथा मत कर । हे नीतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

३१. "ज्याम जिस नहीं होना रहे है जो मान-असक्त है वे एक मन नहीं है"—अपनी पीढ़ियों का इस वटिकाई का अनुभव हुआ, जिनसे सभी मेरी उपाधिति में सुखि धार से आने वाला (प्राप्त) सब प्राप्त है, इसलिए ही नीतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

३२. तीरों में भरे मार्ग का छोड़ कर तू विशाल-पथ पर चला आया है । हृद निश्चय में मान उमी मार्ग पर चल । हे गीतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

३३. बलहीन भ्रातृ-वाहक ही नीति तू विषम-मार्ग में मत खन जाना । विषम-मार्ग में जानेवाले को पकड़ाया होगा है, उमरिग हे गीतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

३४. तू महान् समुद्र को तैर गया, अथ मोंर के निबट पट्टेन कर क्यों गया है ? उसके पार जाने के लिए जल्दी कर । हे गीतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

३५. हे गीतम ! तू क्षणक-धैर्यी पर आम्ह हाकर उम मिट्टि-लोक को प्राप्त होगा जो क्षेम, मिर और अनुराग है, उमरिग हे गीतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

३६. तू गीत में या नगर में मगन, वृद्ध और उपमान होकर विचरण कर, दानि-मार्ग को बट्टा । हे गीतम ! तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर ।

३७. अर्थ और पद में उपशोभित एवं मुहयित भगवान् की बाणी को सुन कर राग और द्वेष का जेदन कर गीतम मिट्टि गति को प्राप्त हुए ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## ग्यारहवीं अध्याय

### बहुश्रुत-पूजा

१. या तथोग से मुक्त है, जो मनवार है, या मित्र है, उसका मैं कमन आचार कहूँगा। मुझे सुनो।

२. जो विद्याहीन है, विद्यावान् होते हुए भी या अधिमानी है, जो नरक आहार में मूर्ख है, जो अविरोधिय है जो बार-बार कमन्धक बोलता है जो अधिनीत है वह बहुश्रुत कहलाता है।

३. ज्ञान, वाच, प्रसाद, राम और आसक्त—इन पाँच स्थानों (हेतुओं) से विद्या प्राप्त नहीं होती।

४. आठ स्थानों (हेतुओं) से व्यक्ति को गिना-बीत कहा जाता है—(१) जो हास्य नहीं करता (२) जो तथा इन्द्रिय और मन का समन करता है (३) जो मम-अकाशन नहीं करता—

५. (४) जो चरित से हीन नहीं होता (५) विद्या पर चरित दोनों से वन्धित नहीं होता (६) जो रत्न से अति कोरुप नहीं होता (७) जो क्रोध नहीं करता और (८) जो सर्व में रज रहता है उसे गिना-बीत कहा जाना है।

६. बीसह स्थानों (हेतुओं) में वस्तु करने वाला सबकी अधिनीत कहा जाता है। वह निर्वाण को प्राप्त नहीं होता।

७. (१) जो बार-बार क्रोध करता है (२) जो क्रोध का दिखा कर रहता है (३) जो विनम्र रहने वाले का भी दुकराता है (४) जो धृत प्राप्त कर मय करना है—

८. (५) जो किसी की स्मृति का हृद्य पर उसका विस्मरण करना है (६) जो किसी पर दुर्गुण होता है (७) जो अत्यन्त प्रिय मित्र की भी एकाग्र में भुलाई करता है—

९. (८) जो कमन्धक पापी है (९) जो छोटी है (१०) जो अधिमानी है (११) जो सरल आहार आदि में मूर्ख है (१२) जो अविनिन्द्य है (१३) जो अनविमानी है और (१४) जो अशीतिकर है—वह अधिनीत कहलाता है।

१०. पन्द्रह स्थानों (हेतुओं) में मुनिनीति कहलाता है—(१) जो नम्र व्यवहार करता है (२) जो चण्ड नहीं होता (३) जो मायावी नहीं होता (४) जो कुतूहल नहीं करता—

११ (५) जो किमी का निरस्कार नहीं करता (६) जो क्रोध को टिका कर नहीं रखता (७) जो मित्रभाव रखने वाले के प्रति कृतज्ञ होता है (८) जो श्रुत प्राप्त कर मद नहीं करता—

१२. जो स्थलना होने पर किमी का निरस्कार नहीं करना (१०) जो मित्रों पर क्रोध नहीं करता (११) जो अप्रिय मित्र की भी एकान्त में प्रशंसा करता है—

१३. (१२) जो कलह और हाथापाई का वर्जन करता है (१३) जो कुलीन होता है (१४) जो लज्जावान् होता है और (१५) जो प्रतिसलीन<sup>१</sup> होता है—वह बुद्धिमान् मुनि विनीत कहलाता है ।

१४. जो मदा गुरु-कुल में वास करता है, जो समाधियुक्त होता है, जो उपधान<sup>२</sup> करता है, जो प्रिय करता है, जो प्रिय बोधता है—वह शिक्षा प्राप्त कर सकता है ।

१५. जिस प्रकार छाह में रखा हुआ दूध दोनों ओर (अपने और अपने आधारके गुणों) में मुगोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भिक्षु में धर्म, कीर्ति और श्रुत—दोनों ओर (अपने और अपने आधारके गुणों) में मुगोभित होते हैं ।

१६. जिस प्रकार कम्बोज के घोंडे में के कन्यक घोंडा नील आदि गुणों में आकीर्ण और वेग से श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार भिक्षुओं में बहुश्रुत श्रेष्ठ होता है ।

१७. जिस प्रकार जातिमान् अश्व पर बड़ा हुआ दृष्टपराक्रमी धूर दोनों ओर वजने वाले बाधों के घोंप में अजेय होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत अपने आमपाम होने वाले स्वाध्याय-घोंप में अजेय होता है ।

१८. जिस प्रकार हथिनियों में परिहृत माठ वर्ष का बलवान् हाथी किमी से पराजित नहीं होता, उसी प्रकार बहुश्रुत दूसरों से पराजित नहीं होता ।

१. प्रतिसलीन—इन्द्रिय और मन का संगोपन करने वाला ।

२. उपधान—देखें २/४३ का टिप्पण ।

७६ त्रिज प्रकार कीदण नीम और अत्यन्त दुष्ट म्हाय बाणा बंध पुप का अधिपति बन मुग्धाभिज हाता है, उनी प्रकार बहुयुग आवाय बन वर मुग्धाभिज हाता है ।

७७ त्रिज प्रकार कीदण बादा बाणा पुप पुषा और दुणरात्रिय विद्रु आरम्भ-वधुर्मा में खेष्ट हाता है, उनी प्रकार बहुयुग अन्धीपिवा में खेष्ट हाता है ।

७८ त्रिज प्रकार चन्द्र, चक्र और गदा का चारन वरन बाणा वामुनेव अवाधित बन बाणा बाडा हाता है, उनी प्रकार बहुयुग अवाधित बन बाणा हाता है ।

७९ त्रिज प्रकार महात् अडिछानी, चतुरम्ब ककयी कीन्द रासा का अधिपति हाता है, उनी प्रकार बहुयुग चतुरम्ब पुषधर हाता है ।

८० त्रिज प्रकार महलचतु, वज्रपति और पुर्वा का विहारण कामे बाणा गज देवा का अधिपति हाता है, उनी प्रकार बहुयुग देवी मज्जा का अधिपति होता है ।

८१ त्रिज प्रकार जम्बजार का नाग करने बाणा जलना हुआ मूय तेज में जलना हुआ मनीज हाता है उनी प्रकार बहुयुग राग के तेज में जलना हुआ प्रताप हाता है ।

८२ त्रिज प्रकार जम्बज-वर्षार से वरिष्ठ चरानि चन्द्रमा पूर्णिमा की परिपूष हाता है उनी प्रकार माधुर्मा के वरिष्ठ बहुयुग राग बलाभा में परिपूष हाता है ।

८३ त्रिज प्रकार नागात्रिकी (चक्राव इति धानी) का कोष्ठागार मुरक्षित और अनेक प्रकार क बाणा में परिपूष हाता है, उनी प्रकार बहुयुग नागा प्रवाह के अन्त में परिपूष हाता है ।

८४ त्रिज प्रकार जम्बज देव का आठव मुग्धा नाग का अष्ट हस्त मज्जा में खेष्ट हाता है उनी प्रकार बहुयुग मज्जा बाधुर्मा में खेष्ट हाता है ।

८५ त्रिज प्रकार नीलवान् पवन में निक्षय वर मज्जा में मिलने वाली मीना मनी कीन मंडिरी में खेष्ट है, उनी प्रकार बहुयुग मज्जा माधुर्मा में खेष्ट हाता है ।

८६ त्रिज प्रकार अनिषय महान् और अनेक प्रकार की अधिपतियों से मीन मदर पवन सब पवनों में खेष्ट है उनी प्रकार बहुयुग मज्जा माधुर्मा में खेष्ट हाता है ।

८७ त्रिज प्रकार जम्बज जल बाणा म्हायमुरमय मज्जा अनेक प्रकार क रात्री में भरा हुआ हाता है । उनी प्रकार बहुयुग अठव मज्जा में परिपूष हाता है ।







११. -- (सोमदेव) "यहाँ जो भोजन बना है, यह बेवत ब्राह्मणों के लिए ही बना है। यह एत-पाक्षित है। ब्राह्मणों को अर्थ है। ऐसा अन्न-पान हम तुम्हें नहीं देंगे, फिर यहाँ क्यों गये हो?"

१२. -- (यक्ष) "अच्छी उपाय का आशय है किमान जैसे जैसी भूमि में बीज बोते हैं, उसी भूमि में मुझे भोजन हो, पुत्रों की प्राप्ति हो। यह श्रेष्ठ है, बीज गाली नहीं जाएगा।"

१३. -- (सोमदेव) "जहाँ बाण हुए, मारे के मारे बीज उग जाते हैं, वे श्रेष्ठ इस लोक में ही जाते हैं। जो ब्राह्मण जाति और विद्या में सुत हैं, वे ही पुत्र-श्रेष्ठ हैं।"

१४. -- (यक्ष) "जिनमें श्रेष्ठ है, मान है, रिमा है, भूत है, चोरी है और परिग्रह है—वे ब्राह्मण जाति-विहीन, विद्या-विहीन और पात-श्रेष्ठ हैं।"

१५. "हे ब्राह्मणों! इन मनार में तुम बेवत बाणों का भार हो गये हो। वेदों को पढ़ कर भी उनका अर्थ नहीं जानते। जो मुनि उन्नत और नीच घरों में निष्ठा के लिए जाते हैं, वे ही पुण्य-श्रेष्ठ हैं।"

१६. -- (सोमदेव) "ओ! अट्ठावनों के प्रसिद्ध बोलने वाले माधु! हमारे समक्ष तू क्या बत-बत कर बोल रहा है? हे निर्धन! यह अन्न-पान भले ही मट्ट कर नष्ट हो जाए बिन्तु तुम्हें नहीं देंगे।"

१७. -- (यक्ष) "मैं समितियों से समाहित, गुप्तियों में गुप्त और जितेन्द्रिय हूँ। यह एषणीय (विमृष्ट) आहार यदि तुम मुझे नहीं दोगे, तो इन यज्ञों का आज तुम्हें क्या लाभ होगा?"

१८. -- (सोमदेव) "यहाँ कौन है दानिय, रमोदया, अध्यापक या छात्र, जो दण्डों और फल से पीट, गलहत्वा दे हम निर्धन को यहाँ ने बाहर निकाले?"

१९. अध्यापकों का वचन सुन कर बहुत में कुमार दण्ड दी। वहाँ आ दण्डों, बेंतों और चाबुको से उस ऋषि को पीटने लगे।

२०. राजा कौमलिक की सुन्दर पुत्री भद्रा यज्ञ-मण्डप में मुनि की प्रताड़ित होते देख क्रुद्ध कुमारों को दान्त करने लगी।

२१ —(बहा) “राजाया बीर इन्द्रा न पुत्रिन यह नहूँ चाहि है, जिहने मेरा स्वाय किया । देवता के अनिवार्य न प्रेरित होकर राजा द्वारा मैं दी गई, विष्णु जिहने मुझे मन से भी नहीं चाहा ।

२२ “यह बही उब उबन्धी, मद्गता, जिनेन्द्र, मयमी बीर बहावारी है, जिहने मुझे मेर पिता राजा कीर्तिकर द्वारा दिये जाने पर भी नहीं चाहा ।

२३ “यह महान् बहावी है । अविमल-मन्त्रि मे सम्मन है । पार कभी है । पार परावर्ती है । इसकी बहावना मन बरा । यह अवहेलनीय नहीं है । बही यह अपन उब से तुम लोगों का भस्वनाम् न कर डाल ।”

२४ तामरेव पुनरहित की पुत्री बहा क सुभाषित बचनी का मुम कर दली में कवि की परिचर्या करने के लिए बुधारी का भूमि न मिरा दिया ।

२५. के पार नय काक बल बाबास न तिर हाकर उन छाया की भाते लगे । उनक धारीरा का लल विमल बीर उहूँ बचर का बलन करे देन महा फिद रहने लगी—

२६ “जा इस विष्णु का कथमान कर रहे है के नया मे नयन गाव रहे है, बीडा मे जाहे का बहा रहे है बीर वीरा न अवि का प्रचारित कर रहे है ।

२७ “यह महवि भाषीविमल-मन्त्रि से सम्मन है । उब तात्नी है । पार कभी बीर पार परावर्ती है । जिहने के ललन या विष्णु का बल कर रहे है, के ललन-लला की मोति मन्त्रि न अगाध कर रहे है ।

२८. “यदि मुम बलन बीर बल बाहने हा ला लल विम कर, मिर मुम कर हम मुनि की शरण में आया । मुनि उने पर यह ललन ललन का सम्म कर ललता है ।”

२९. उन छापी के मिर नाक की भार मुम नह । नयनी मुनारें देन गई । के निष्कल हा गाए । उनकी अलि मुनी की मुनी नह गई । उनक मुद से बचि निकलने लगी । उनके मुद ऊपर का हा गए । उनकी पीछे बीर नय बाहर निकल आए ।

३० उन छापी का काठ की लल निरवध देन कर बल बावदल बाहानु उदाय बीर बलपवा हुआ बानी नली सहित मुनि क पाल या उहें प्रमन करे लगी—“अन्ते ! हुने या अवहेलना बीर निम्ना वा उने लगी करे ।”

३१. "अग्ने ! मनुष्य वायु को ने अज्ञानयन का आयत्ती प्रशिक्षणा की, उसे आप क्षमा करें। अग्नि महान् प्रमत्तचित्त होने है। मणि क्यों नहीं किया करने।"

३२. — (मुनि) "मेरे मन में कोई प्रिय न पड़ने था, न अनी है और न शान्ति भी होगी। तब मनुष्य मेरा वैसावृत्त कर रहे हैं। इसी लिए मैं कुमार प्रनामिण हुए।"

३३. (मोमदेव) "आप ही भक्त को जानने वाले मुनिप्रज्ञ (मन्त्र-प्रज्ञा युक्त) आप काम नहीं करते। इसलिए हम सब मनुष्य आपसे धर्मों की शरण ले रहे हैं।"

३४. "महाभाग ! हम आपको अर्घ्य कर रहे हैं। आपका कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसकी हम अर्घ्य न करें। आप नाना व्यंजनों में युक्त चावल-निम्ब-भोजन में कर पाएंगे।"

३५. "मेरे यही वह प्रभु भोजन पडा है। हमें अनुग्रहीत करने के लिए आप कुछ पाएँ।" महात्मा हरिदत्त ने 'ही' भर ली और एक मास की वपस्या का पारणा करने के लिए भजन-पान किया।

३६. देवों ने यही सुगन्धित जल, पुष्प और हिरण्य-धन की वर्षा की, आकाश में दुन्दुभि बजाई और 'अहो दानम्'—उम प्रसार का फोंग किया।

३७. यह प्रत्यक्ष ही तप की माहिमा दीप्त रही है, जाति की कोई महिमा नहीं है। जिसकी प्रशिक्षण ऐसी महान् है, वह हरिकेश मुनि चाण्डाल का पुत्र है।

३८. — (मुनि) "आत्मज्ञान ! अग्नि का समारम्भ करते हुए तुम बाहर से शुद्धि की क्या माँग कर रहे हो ? जिस शुद्धि की बाहर में माँग कर रहे हो, उसे कुशल लोग मर्म्यदर्शन नहीं कहते।"

३९. "धर्म, यूप (यज्ञ-स्तम्भ), तृण, काष्ठ और अग्नि का उपयोग करते हुए, सध्या और प्रातः काल में जल का स्पर्श करने हुए, प्राणों और भूतों की हिंसा करते हुए, मदबुद्धि बाने तुम बार-बार पाप करते हो।"

४०. — (मोमदेव) "हे भिक्षु ! हम कैसे प्रवृत्त हो ? यज्ञ कैसे करें, जिससे पाप-कर्मों का नाश कर सकें ? यज्ञ-पूजित मयत ! आप हमें बताएँ—कुशल पुरुषों ने श्रेष्ठ-यज्ञ का विधान किस प्रकार किया है ?"

४१. — (मुनि) "मन और इन्द्रियों का दमन करने वाले यह जीवन-निकाय की हिंसा नहीं करते; असत्य और चौर्य का भक्षण नहीं करते; परिग्रह, स्त्री, मान और भाया का परित्याग करके विचरण करते हैं।"

४२ 'जो चीज सबरा में मुमकिन हुआ है या असमभव-भीषन की दृष्टि नहीं करणा, या बाध का स्मृतन करणा है या शुचि है और जो बह का त्याग करडा है बह मदावरी खेड बज करडा है ।'

४३ —(भोमके) 'मिन्ना ! मुम्हारी ज्ञानि चीज-आ है ? मुम्हारा वसानि-ज्वात (अग्नि-वसान) चीज-आ है ? मुम्हारेची कान्ने ची करडिगी चीज-ली है ? मुम्हारे अग्नि का ज्वात के बज चीज-आ है ? मुम्हारे दहन और ताति-गाठ चीज-ली है ? और बिज होम न मुम ज्ञानि का हुन करने हा ?

४४ —(मुनि) 'उत ज्योति है । जीव जगति स्थान है । मन, बचन और बाधा की सन् प्रवृत्ति की कान्ने ची करडिगी है । मरीर जन्म जमाने क बज है । बस ईश्वर है । मंथन की प्रवृत्ति जगति गाठ है । हम प्रहार में अग्नि प्रज्वल (अद्वैत) होम करणा है ।'

४५ —(भोमके) 'आपका बह चीज-आ है ? आपका ताति-जीव चीज-आ है ? आप कर्मा मठा कर बस रज धान है ? ह वस गृहित मपन । हम आप में आपका बाधने है, आप बनाइ ।'

४६ —(मुनि) 'अहमुचिउ तब आपका का जगत्-मता बाधा बस मेरा नर है । ब्रह्मचरी मेरा ताति-जीव है, जहाँ बज कर में बिचन, बिचुड और मुर्त बज हावर बर्मे-रज का त्याग करणा है ।

४७ 'बह स्नान कूचल दुर्गों द्वारा दण्ड है । यह मज्ज-ज्वात है । मन ज्योति के ज्वात बही प्रज्वल है । हम बस-नर में मज्ञान हुन जगति बिचन और बिचुड होकर उमर स्थान (वर्षा) की प्रज्वल है ।

—गमा में बहना है ।

## तेरहवाँ अध्यायन

### चित्र-संभूतीय

१. जानि से पराजित हुए सम्भूत ने हस्तिनापुर में निदान<sup>१</sup> (चक्रवर्ती होंके—ऐसा नकल्य) किया। वह पद्म-गुल्म नामक विमान में देव दत्ता। वहाँ से ध्रुत होकर बुलनी की कोख में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के रूप में उत्पन्न हुआ।
२. सम्भूत काम्पित्य नगर में उत्पन्न हुआ। चित्र पूरिमनाल में एक विशाल श्रेष्ठि-कुल में उत्पन्न हुआ। वह धर्म मुन प्रयोजित हुआ गया।
३. काम्पित्य नगर में चित्र और सम्भूत दोनों मिले। दोनों ने परस्पर एक दूसरे के मुग्ध-दुःख के विपाक की बात की।
४. महान् ऋद्धि-सम्पन्न और महान् पद्मस्त्री चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने बहुमान पूर्वक अपने भाई से इस प्रकार कहा—
५. "हम दोनों भाई थे—एक दूसरे के चक्रवर्ती, परस्पर अनुरक्त और परस्पर हिनैपी।
६. "हम दोनों दधानं देश में दान, कानिजर पर्वत पर हरिण, मृत-गंगा के किनारे हम और कान्ही देश में चाण्डाल थे।
७. "हम दोनों मीथर्म देवलोका में महान् ऋद्धि बाने देव थे। यह हमारा छठा जन्म है, जिसमें हम एक दूसरे से बिछुड़ गये।"
८. —(मुनि) "राजन् ! तू ने निदान-कृत (भोग-प्रार्थना से बद्धमान) कर्मों का चिन्तन किया। उनके फल-विपाक से हम बिछुड़ गये।"
९. —(चक्र) "चित्र ! मेने पूर्व-जन्म में सत्य और नीचमय धुन अनुष्ठान किये थे। आज मैं उनका फल भोग रहा हूँ। क्या तू भी वैसा ही भोग रहा है?"

---

१. निदान—भोग प्राप्ति के लिए किया जाने वाला संकल्प।

१० —(मुनि) 'मनुष्यों का सब सुखान (सुख) मरण होता है।  
विष हूँ क्यों का यह भाव बिना मुक्ति नहीं होती। मेरी भाषा उत्तम अब  
और कामों के द्वारा सुख-पदमे मुक्त है।

११ 'अच्छुन ! जिस प्रकार तू जाने की अचञ्चल छक्ति प्राप्त, महान्  
श्रद्धिमान और पुन्य पद मे मुक्त मानता है उसी प्रकार बिना की भी जान।  
रात्रि ! उसके भी प्रभु श्रद्धा और छक्ति की।

१२ 'एकदिवस मे मन-मनुष्यादिक सब अस्वाभाव और महान् धर्म कामों की  
गत्यात्मा जिसे शील और सुख व मरण विषु सब दान व अजित करत है  
उन सुख का मैं धर्मन हूँ मया ।'

१३ —(कवी) 'उपपादक, मनुष्य, मय और कदा—मे प्रधान  
प्राप्त मया मुक्तो अनेक रस्य प्राप्त है। कदाचिद्वेग की विगत मनुष्यों व मुक्त  
और प्रभुत्व विविध हिरण्य आदि व मुक्त यह कर है—'मया तू उत्तमकर।

१४ 'हे विष्णु ! तू सादृश शील और साक्षात् मया मारी तमों की  
परिचय करवा हुआ इस भाषा की कर्म। मनुष्ये कदा है। प्रत्यक्ष वाच्य मे  
ही दृष्टकर है।'

१५ 'धर्म व विषय और उस (रात्रि) का दिन कहने वाला बिना मुनि  
मे पुनः मरण रस्य-मय जाने प्रति अनुराग रसने जाने काम-मुक्तों में मानव  
रात्रि मे सब कर्म वगैरे—

१६ 'मय शील विष्णु है सब अदृष्ट विद्वत्ता है, सब मानवता मार है  
और सब काम मान मुक्त है।

१७ 'रात्रि ! प्रतीति के लिए प्रतीति और पुनः काम-मुक्तों मे  
सब सुख की है। रात्रि कामों के विरह शील और मुक्त मे रस मीनन विष्णु  
की प्राप्त हुआ है।

१८ 'मया ! मनुष्य व मानव व अजित मय है। उनमे इस काम  
उत्तम हूँ कर है। मया इस वाच्य की कर्म व रसने के और सब शील  
हम मे हूँ कर है।

१९ 'श्रीमन् मे सुख-वाच्यता मया मे अजित विष्णु और वाच्यता की  
कर्मों में अजित विष्णु। सब मया उनमे सुख-पद व। इस मय मे वाच्यता  
मान मुक्त है। रात्रि हूँ सुख कर्म का कर है।

२० 'उसी के कारण सब मया अचञ्चल-विषय मय, महान् श्रद्धिमान और  
पुन्य पद मुक्त मया मया है। इसीविषय मया मय भाषा का छात्र कर  
वाच्य धर्म है। वाच्यता के लिए अजित-मय कर।



॥ “मृत्यु में भावों का त्यागन का कृति नहीं है । नू आरम्भ और परिग्रह में आसक्त है । मैंने वरुण हो बनना प्रमाण किया । मृत्यु आसक्ति में लिया । रात्रि ! अब मैं जा रहा हूँ ।”

१४ “वर्षा में नदी” के राजा अश्वमेध में दुर्गि क बचने का वातन नहीं किया । वह अनुत्तर काम-आपत्ति का भोक्त कर अनुत्तर नरक में गया ।

१५ “वर्षा में” के राजा अश्वमेध में दुर्गि क बचने का वातन नहीं किया । वह अनुत्तर काम-आपत्ति का भोक्त कर अनुत्तर नरक में गया ।

—तमा में कहना है ।



## चौदहवाँ अध्याय

### इषुकारीय

१. पूर्व-जन्म में देवता होकर एक ही विमान में रहने वाले कुछ जीव देवलोक में चुन हुए। उस समय इषुकार नाम का एक नगर था—प्राचीन, प्रसिद्ध, मस्तिष्काली और देवलोक के समान।

२. उन जीवों के अपने पूर्वकृत पुण्य-कर्म बाकी थे। फलस्वरूप वे इषुकार नगर के उत्तम कुलों में उत्पन्न हुए। संसार के भय से विभ्र होकर उन्होंने भोगों को छोड़ा और वे जिनेन्द्र-मार्ग की धरण में चले गए।

३. दोनों पुरोहित कुमार, पुरोहित, उनकी पत्नी यथा, विद्या कीर्ति वाला इषुकार राजा और उनकी गनी कमलावती—वे छहों व्यक्ति मनुष्य-जीवन प्राप्त कर जिनेन्द्र-मार्ग की धरण में चले गए।

४-५. ब्राह्मण के योग्य यज्ञ आदि करने वाले पुरोहित के दोनों प्रिय पुत्रों ने एक बार निर्ग्रन्थ की देखा। उन्हें पूर्व-जन्म की स्मृति हुई और भली-भाँति आचरित तप और संयम की स्मृति जाग उठी। वे जन्म, जग और मृत्यु के भय में अभिभूत हुए। उनका चित्त मोक्ष की ओर खिंच गया। समार-चक्र से मुक्ति पाने के लिए वे काम-गुणों<sup>१</sup> से विरक्त हो गए।

६. उनकी मनुष्य और देवता सम्बन्धी काम-भागों में आमक्ति जाती रही। मोक्ष की अभिलाषा और वर्म की श्रद्धा में प्रेरित होकर पिता के पास आए और उस प्रकार कहने लगे—

७. “हमने देखा है कि यह मनुष्य-जीवन अनित्य है, उसमें भी विघ्न बहुत हैं और आयु थोड़ा है। इसलिए घर में हमें कोई आनन्द नहीं है। हम मुनि-वर्या को स्वीकार करने के लिए आप की अनुमति चाहते हैं।”

८. उनके पिता ने उन कुमार मुनियों की तपस्या में बाधा उत्पन्न करने वाली बातें कही—“पुत्रो! वेदों को जानने वाले इस प्रकार कहते हैं कि जिनका पुत्र नहीं होता उनकी गति नहीं होती।”

१. काम-गुण—कामनाओं को उत्तेजित करने वाले विषय।

६. "पुत्रो ! इसलिए बेबीं को पढ़ो । ब्राह्मणों को भाजन कराओ । स्त्रियों के साथ भोग करो । पुत्रों को उत्पन्न करो । उनका विवाह कर, घर का भार सौंप फिर अरण्यवासी श्रद्धालु मुनि हो जाना ।"

१० ११ सोना कुमारों ने सोच विचार पूर्वक उस पुरोहित को—जिसका मन और शरीर, आत्म-गुण सभी ईश्वर और मोह सभी पवन से अत्यन्त प्रभावित होकर, संतुष्ट और परितुष्ट हो रहा था, जिसका हृदय वियोग की भावना से अतिशय छिन्न हो रहा था, जो एक एक कर अपना समिप्राय अपने पुत्रों को समझा रहा था, उन्हें बल और कम प्राप्त काम भोगों का निर्माण दे रहा था—ये वाक्य कहे—

१२ "बेटे पढ़ने पर भी वे वास्तव नहीं होते । ब्राह्मणों को भाजन कराने पर वे नरक में भी जाते हैं । औरतें पुत्र भी भाव नहीं होने । इसलिए आपने जो कहा उसका अनुमोदन कौन कर सकता है ?

१३ "ये काम-जाय लाल-मर मूल और विरहाल पुत्र देने वाले हैं, बहुत पुत्र और बड़ा मूल देने वाले हैं, मरार-मुक्ति के विराही हैं और अनर्थों की जात हैं ।

१४ "जैसे कामनाया से मुक्ति नहीं मिली वह पुत्र्य अनुष्टि की अग्नि से संतुष्ट होकर दिन रात परिभ्रमण करता है । दूसरा के लिए प्रसन्न होकर वन की खोज में गया हुआ वह बड़ा और भ्रातृ का प्राप्त होता है ।

१५ "यह मेरे पास है और यह नहीं है यह मुझे करना है और यह नहीं करना है—इन प्रकार क्या बकवास करते हुए पुत्र्य की उठाने वाला (कात) उठा लेता है । इन स्थिति में प्रमाद कैसे किया जाय ?"

१६ "जिसके लिए तब विद्या करण हैं वह सब कुछ—अधुर घन, स्त्रियाँ, स्वयं और इन्द्रियों के विषय सुम्हें यहीं प्राप्त हैं फिर किसलिए भ्रम धमन होना चाहते हैं ?" —पिता ने कहा ।

१७ पुत्र बोले— "पिता ! बड़ी वन की भ्रष्ट को बहल करने का अधिकार है वहाँ घन, स्वयं और इन्द्रिय विषय का क्या प्रयोजन है ? कुछ भी नहीं । हम गुण-मनुष्य में सम्पूर्ण धमन होंगे, प्रविष्ट-मुक्त होकर गाँवाँ और नगरों में बिहार करने वाले और जिन्हा नेकर जानने समझने वाले ।"

१८ "पुत्र ! जिस प्रकार जल में अविद्यमान अग्नि उत्पन्न होती है, दूध में घी और तिल में तेल पैदा होता है, उसी प्रकार शरीर में जीव उत्पन्न होते हैं और मृत हो जाते हैं । शरीर का नाश हो जाने पर उनका अस्तित्व नहीं रहता" —पिता ने कहा ।

१६. कुमार बोले —“पिता ! आत्मा अमूर्त है इसलिए यह इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाना जा सकता । यह अमूर्त है इसलिए नित्य है । यह निश्चय है कि आत्मा के आन्तरिक दोष ही उसके बन्धन के हेतु हैं और बन्धन ही ससार का हेतु है—ऐसा कहा है ।

२०. “हम धर्म को नहीं जानते थे सब घर में रहे हमारा पालन होता रहा और मोह-बुद्धि हमने पाप-कर्म का आचरण किया । किन्तु अब फिर पाप कर्म का आचरण नहीं करेंगे ।

२१. “यह लोक पीड़ित हो रहा है, चारों ओर से घिरा हुआ है, अमोघा वा रही है । इस स्थिति में हमें घर में सुख नहीं मिल रहा है ।”

२२. “पुत्रों ! यह लोक किसमें पीड़ित है ? किमसे घिरा हुआ है ? अमोघा किसे कहा जाता है ? मैं जानने के लिए चिन्तित हूँ”—पिता ने कहा ।

२३. कुमार बोले —“पिता ! आप जानें कि यह लोक मृत्यु में पीड़ित है, जरा से घिरा हुआ है और रात्रि को अमोघा कहा जाता है ।

२४. “जो-जो रात बीत रही है, वह लौट कर नहीं आती । अधर्म करने वाले की रात्रियाँ निष्फल बनी जाती हैं ।

२५. “जो-जो रात बीत रही है, वह लौट कर नहीं आती । धर्म करने वाले की रात्रियाँ सफल होती हैं ।”

२६. “पुत्रों ! पहले हम सब एक साथ रह कर सम्यक्त्व और व्रतों का पालन करें फिर तुम्हारा जीवन जीने जाने के बाद घर-घर में भिक्षा लेते हुए विहार करेंगे”—पिता ने कहा ।

२७. पुत्र बोले —“पिता ! कल की इच्छा वही कर सकता है, जिसकी मृत्यु के साथ मैं ही हों, जो मृत के मुँह से वचन कर पलायन कर सके और जो जानता हो—मैं नहीं मरूँगा ।

२८. “हम आज ही उस मुनि-धर्म को स्वीकार कर रहे हैं, जहाँ पहुँच कर फिर जन्म लेना न पड़े । भोग हमारे लिए अप्राप्त नहीं है —हम उन्हें अनेक बार प्राप्त कर चुके हैं । राग-भाव को दूर कर अद्वैत पूर्वक श्रेय की प्राप्ति के लिए हमारा प्रयत्न युक्त है ।”

२९. “पुत्रों के चले जाने के बाद मैं घर में नहीं रह सकता । हे वासिष्ठि ! अब मेरे भिक्षाचार्या का काल आ चुका है । वृद्ध आत्माओं में समाधि की प्राप्ति होता है । उनके कट जाने पर लोग उसे ठूठ कहते हैं ।

३० “बिना रत्न का पत्थी, राम भूमि में मना रहिन राखा थीर जल-पोत पर घन रहित व्यापारी जैसा अमहाय होता है, पुत्रों के बने जाने पर मैं भी वैसा ही हो जाता हूँ।”

३१ बागिछी ने कहा — “मुमंस्तुन थीर प्रचुर शृंगार रम में परिपूर्ण दृष्टि विषय, जो तुम्हें प्राप्त है, उन्हें अभी हम खूब मानें। उनके बाद हम मास-मास का स्वीकार करेंगे।”

३२ पुनर्हित ने कहा — “हूँ भवति ! हम रत्नों का भाग चुके हैं, अब हमें छोड़ता क्या का रहा है। मैं अमंजम-ओवन के लिए भोवा का नहीं छोड़ रहा हूँ। लाभ अलाव और मुन-मुन की समदृष्टि गन्तता हुआ मैं भूमि परम का आचरण करूँगा।”

३३ बागिछी ने कहा — “प्रतिज्ञा में बहने वाले बड़े हंस की तरह तुम्हें पीछे अपना बंधुओं का पद करना न पड़े, इसलिए मेरे मास भागों का सेवन करा। यह मिठाचर्या थीर कामानुष्ठान विहार सबसुख दुःखरायी है।”

३४ ‘हूँ भवति ! अब साथ अपने गरीर की कंबुली को छाड़ मुल-भास से चलता हूँ बिने ही पुन भागा का छाड़ कर चले का रहे हूँ। पीछे मैं अनेना क्यों रहूँ ? उसका अनुगमन क्या न करूँ ?’

३५ ‘जैसे रोहित मच्छ अवरित जाल का काट कर बाहर निकल जाते हैं बिने ही उछाए हुए भार की बहन करने वाले प्रथम तपस्वी और धीर पुरुष काम मीनों का छोड़ कर मिठाचर्या को स्वीकार करते हैं।’

३६ बागिछी ने कहा — “जैसे शीश कपी और ईम बहेमियों द्वारा बिछाए हुए जाल की काट कर भागान में उड़ जाते हैं वैसे ही मेरे पुन और पति का रहे हैं। पीछे मैं अकेली क्यों रहूँ ? उसका अनुगमन क्यों न करूँ ?”

३७ पुरोहित अपने पुन और पत्नी के साथ भोवा को छोड़ कर प्रप्रवित हो चुका है, यह सुन राजा ने उसके प्रचुर और प्रथम घन लाय आदि की सेवा पाहा ठह महारानी कमलावती ने बार-बार कहा —

३८ “राजन् ! बचन माने जाने पुरुष की प्रज्ञा नहीं होती। पुन प्राप्ति के द्वारा परित्यक्त बन को सेवा चाहत हा—यह क्या है ?

३९ “यदि समूचा जगत् तुम्हें मिल जाए, अबका समूचा घन मुझारा हो जाए तो भी वह मुझारी इच्छा-पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होगा और वह तुम्हें वाग्य भी नहीं दे सकेगा।

४०. "राजन् ! इन मनारम काम-भोगों को छोड़ कर तुम्हें जब कभी मरना होगा । हे नन्देव ! एक धर्म ही ब्रह्म है । उसके मित्राय कोई दूसरी वस्तु ब्रह्म नहीं दे सकती ।

४१. "जैसे पक्षिणी पित्रो मे आनन्द नहीं मानती, वैसे ही मुझे उम बन्धन मे आनन्द नहीं मिल रहा है । मैं स्नेह के जान को तांड कर अकिंचन, मरल क्रिया बानी, विषय-वामना मे दूर और परिग्रह एवं हिमा के दोषों मे मुग्न हो कर मुनि-धर्म का आचरण करूँगी ।

४२. 'जैसे दवाग्नि लगी हुई है, जग्ग मे जीव-जन्तु जल रहे हैं, उन्हें देख राग-द्वेष के बधीभूत होकर दूसरे जीव प्रमुदिन हाने है ।

४३. "उसी प्रकार काम-भोगों मे मूर्च्छित होकर हम मूढ लोग यह नहीं समझ पाते कि यह मगूना मनार राग-द्वेष की अग्नि मे जल रहा है ।

४४. "विवेकी पुष्प भोगों को भोग कर फिर उन्हें छोड़ वायु की तरह अप्रतिबद्ध-विहार करने हैं और वे स्वेच्छा मे विचरण करने वाले पक्षियों की तरह प्रसन्नतापूर्वक स्वतंत्र विहार करते हैं ।

४५. "आर्य ! जो काम-भोग अपने हाथों मे आए हुए हैं और जिनको हमने नियमित कर रखा है, वे मृद-फांद कर रहे हैं । हम कामनाओं में आमक्त बने हुए हैं किन्तु अब हम भी वैसे ही होंगे, जैसे कि अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ मृगु हुए हैं ।

४६. "जिम गीध के पास मांस होता है उम पर दूगने पक्षी झपटते हैं और जिमके पास मांस नहीं होता उम पर नहीं झपटते—यह देख कर मैं आमिष (घन, धान्य आदि) को छोड़, निरामिष होकर विचरूँगी ।

४७. "गीध की उपमा मे काम-भोगों का मसार-वर्यक जान कर मनुष्य को इनमे इसी प्रकार धाकित होकर चलना चाहिए जिस प्रकार गरुड के सामने साँप शंकित होकर चलता है ।

४८. "जैसे बन्धन को तोड़कर हाथी अपने स्यान (विध्याटवी) में चला जाता है, वैसे ही हमे अपने स्यान (मोक्ष) में चले जाना चाहिए । हे महाराज इपुकार ! यह तथ्य है, इसे मैंने जानियों से सुना है ।"

४९. राजा और रानी विपुल राज्य और दुस्त्यज काम-भोगों को छोड़ निर्विषय, निरामिष, निस्नेह और निष्परिग्रह हो गए ।

५०. धर्म को सम्यक् प्रकार से जान, आकर्षक भोग-विलास को छोड़, वे तीर्थङ्कर के द्वारा उपदिष्ट धीर तपश्चर्या को स्वीकार कर संयम मे धीर पराक्रम करने लगे ।

॥१॥ इस प्रकार वे सब ब्रह्मा कुछ हाकर धर्म-परायण, धर्म-धीर मृत्यु  
क मय से उद्विग्न मन वा लक्ष्मी दुःख के अन्त की आज में लग गए ।

१२ १० जिनकी अस्मा पूर्व-जन्म में ब्रह्म-भावना से भाविनी थी वे सब—  
राजा, रानी ब्राह्मण पुरोहित, ब्राह्मणी और दानों पुरोहित कुमार महत् क  
शामन में आकर दुःख का अन्त पा गए—मुक्त हो गए ।

—तोमा मैं कहता हूँ ।

## पन्द्रहवाँ अध्यायन

### समिक्षुक

१. 'धर्म को स्वीकार कर मुनि-व्रत का आवरण पहेंगा'—जो ऐसा मकल्प करता है, जो दूसरे भिक्षुओं के साथ रहता है, जिसका अनुष्ठान ऋजु है, जो वामना के मकल्प का छंदन करता है, जो परिचय का त्याग करता है, जो काम-भोगों की अभिलाषा को छोड़ चुका है, जो तप आदि का परिचय दिए बिना निदा को गोंद करता है, जो अप्रतिबद्ध विद्वान् करता है—वह भिक्षु है।

२. जो गार्ह-भोजन या गार्ह-विहार नहीं करता, जो निर्दोष आहार में जीवन-यापन करता है, जो विरत है, आगम को जानने वाला और आत्म-रक्षक है, जो प्राज्ञ है, जो परीषदां को जीतने वाला और सब जीवों को आत्म-तुल्य समझने वाला है, जो किसी भी वस्तु में भूच्छित्त नहीं होना—वह भिक्षु है।

३. जो घोर मुनि कठोर वचन और साधना को अपने बंधों का फल जान कर शान्त भाव से विचरण करता है, जो प्रसन्न है, जो सदा आत्मा का संवरण किये रहता है, जिसका मन आकुलना और हृषं में रहित होना है, जो सब कुछ सहन करता है—वह भिक्षु है।

४. निवृत्त ध्यान और आगम का सेवन करके तथा सर्दी, गर्मी, हाँस और मच्छरों की श्वाभ को सहन करके भी जिसका मन आकुलना और हृषं में रहित होता है, जो सब कुछ सहन करता है—वह भिक्षु है।

५. जो सत्कार, पूजा और वन्दना की इच्छा नहीं करता वह प्रशंसा की इच्छा कैसे करेगा ? जो मयत, मुग्रत, तपस्वी, दूसरे भिक्षुओं के साथ रहने वाला और आत्म-गवेषक है—वह भिक्षु है।

६. जिसके संयोग-मात्र से संयम-जीवन छूट जाये और ममत्त मोह में बँध जाए वैसे स्त्री या पुरुष को संगति का जो त्याग करता है, जो सदा तपस्वी है, कुतूहल नहीं करता—वह भिक्षु है।

७. जो छिन्न (छिद्र-विद्या), स्वर (तप्प-स्वर विद्या), भीम, अन्तरिक्ष, स्वप्न, लक्षण, दण्ड, बाम्पु-विद्या, अंग-विकार और स्वर-विज्ञान—इन विद्याओं के द्वारा आजीविका नहीं करता—वह भिक्षु है।

८ मन्त्र दूर, विविध प्रकार की जायुर्वेद मन्त्रों की चिन्ता, बमन, विरेचन, धूम-पान की लाली, स्नात, आनुर हाने पर स्वप्न की प्रवृत्ति, विकृति—इनका परित्याग कर जो परिश्रम करता है—बहु मिष्ट है।

९ सखि, तप, उग्र, रात्रिपुत्र आह्वान, सावित्र (सामन्त्र) और विविध प्रकार के गिरा जो होते हैं, उनकी स्मृति और पूजा नहीं करना किन्तु उसे दोष-भूषण जान उदरा परिश्रम कर जो परिश्रम करता है—बहु मिष्ट है।

१० बीजा मने के पश्चात् त्रिज दूहत्या की देखा हो या उमगे पशुन या परिश्रम का समय साथ दहनीकित फल (कर्म-पान आदि) की प्राप्ति के लिए जो परिश्रम नहीं करता—बहु मिष्ट है।

११ ध्यान ध्यान ध्यान, मात्रा और विविध प्रकार के साथ-साथ दूहत्या न दे नया वारण विषय से माँपने पर भी इकार का जाए, उस स्थिति में जो प्रवृत्ति न कर—बहु मिष्ट है।

१२ दूहत्या व परसे जा चुकआहार, पानक और विविध प्रकार के साथ-साथ प्राण कर जो दूहत्या की मन, वचन और वाता न अनुकम्पा नहीं करता—उन्हें जानीबान नहीं देता जो मन, वचन और कर्मा से मुनकट होता है—बहु मिष्ट है।

१३ आचामन, जी का वकिधा, ठण्डा वासी आहार बाँगी का पानी, जी का पानी बसी नीरम मिला जी का मिठा नहीं करता, जो सामान्य धर्मों में भिन्ना के लिए जाता है—बहु मिष्ट है।

१४ लोक में देवता, अनुप्य और नियन्त्रों के अनेक प्रकार के रीति, अग्नि भवकर और अनुप्य शब्द हाथ हैं, उन्हें मुनकर या नहीं करता—बहु मिष्ट है।

१५ लोक में विविध प्रकार के वाता का जान कर भी जा मिष्टा के साथ रहता है, जो संयमोई, विवेकात्मकता वगैरे सब प्राण हुआ है, जो भाग है जो परीयहों का जीवन वाला और सब जीवाकी आत्म-भुत्स समझने वाला होता है, जो उमात्र और कितो का भी अपमानित न करने वाला है—बहु मिष्ट है।

१६ जा गिर्य-जोषी नहीं जाता, जिसके घर नहीं हागा, जिसके मित्र नहीं हावे जो मित्रेन्द्रिय और सब प्रकार के परिश्रम से मुक्त हाता है जिसका कपाय मन्त्र हाता है, जो बोधा और निश्चार जीवन करता है जो घर का छाड़ धरने (राम-द्वेष में रहित हा) विपरता है—बहु मिष्ट है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।



## सोलहवाँ अध्ययन

### ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान

१. आयुष्मन् ! मैंने मुना है, भगवान् (प्रज्ञापक आचार्य) ने ऐसा कहा है—निर्ग्रन्थ प्रवचन में जो स्वविर (गणधर) भगवान् हुए हैं, उन्होंने ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थान बतलाये हैं, जिन्हें सुन कर, जिनके अर्थ का निश्चय कर, भिक्षु सयम, संवर और समाधि का पुनः-पुन. अभ्यास करे । मन, वाणी और शरीर का गोपन करे, इन्द्रियों को उनके विषयों से बचाए, ब्रह्मचर्य को नौ सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे ।

२. स्वविर भगवान् ने ब्रह्मचर्य-समाधि के वे कौन से दस स्थान बतलाए हैं, जिन्हें सुन कर, जिनके अर्थ का निश्चय कर, भिक्षु सयम, संवर और समाधि का पुनः-पुन. अभ्यास करे । मन, वाणी और शरीर का गोपन करे । इन्द्रियों को उनके विषयों से बचाए, ब्रह्मचर्य को नौ सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे ?

३. स्वविर भगवान् ने ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थान बतलाए हैं, जिन्हें सुन कर, जिनके अर्थ का निश्चय कर, भिक्षु सयम, संवर, और समाधि का पुनः-पुन. अभ्यास करे । मन, वाणी और शरीर का गोपन करे, इन्द्रियों को उनके विषयों से बचाए, ब्रह्मचर्य को नौ सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे । वे इस प्रकार हैं--

४. जो एकान्त शयन और आसन का सेवन करता है वह निर्ग्रन्थ है । जो स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का सेवन नहीं करता वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का सेवन करनेवाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और

आनक होता है अथवा वह देवकी-कपिन धम से भट्ट हो जाता है। इसलिये जा म्भी, पशु, और मनुष्य ने आशीर्ष गायन और आशुन का सेवन नहीं करता, वह निर्दोष है।

५. जो केवल स्त्रियों के बीच में क्या नहीं करता वह निग्रन्ध है।  
यह क्यों ?

ऐसा बूझने पर आभाव करने है—देवक स्त्रियों के बीच क्या करने वाले ब्रह्मचारी निग्रन्ध का ब्रह्मचर्य के विषय में गंगा, कांता या विचित्रित्वा उत्पन्न होगी है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह देवकी-कपिन धम से भट्ट हो जाता है। इसलिये केवल स्त्रियों के बीच में क्या न करे।

६. जो स्त्रियों के साथ एक आसन पर नहीं बठता वह निग्रन्ध है।  
यह क्यों ?

ऐसा बूझने पर आभाव करने है—स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठनेवाले ब्रह्मचारी निग्रन्ध का ब्रह्मचर्य के विषय में गंगा, कांता या विचित्रित्वा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह देवकी-कपिन धम से भट्ट हो जाता है, इसलिये निग्रन्ध स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बठे।

७. जो स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रिया का दृष्टि गड़ा कर नहीं लेता, उनके विषय में चिन्तन नहीं करता, वह निर्दोष है।

यह क्यों ?

ऐसा बूझने पर आभाव करने है—स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों की दृष्टि गड़ा कर लेनेवाले और उनके विषय में चिन्तन करनेवाले ब्रह्मचारी निग्रन्ध का ब्रह्मचर्य के विषय में गंगा, कांता या विचित्रित्वा उत्पन्न होगी है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह देवकी-कपिन धम से भट्ट हो जाता है इसलिये निग्रन्ध स्त्रियों के मनोहर और मनोरम इन्द्रियों की दृष्टि गड़ा कर न ले और उनके विषय में चिन्तन न करे।

८. जो मिट्टी की दीवार के अन्तर में पशु के अन्तर में पक्षी की दीवार के अन्तर में स्त्रियों के कूजन, कन्ध, गीन, हास्य, यजन आनन्दन या विनाश के लक्ष्य की नहीं गुनगा, वह निग्रन्ध है।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं— मिट्टी की दीवार के अन्तर में, परदे के अतर से, पक्की दीवार के अतर से स्त्रियों के कूजन, रुदन, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को सुनने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म में भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए निर्ग्रन्थ मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रुदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को न सुने ।

६. जो गृहवास में की हुई रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—गृहवास में की हुई रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होना है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है इसलिए निर्ग्रन्थ गृहवास में की हुई रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण न करे ।

१०. जो प्रणीत आहार नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—प्रणीत पान-भोजन करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए निर्ग्रन्थ प्रणीत आहार न करे ।

११. जो मात्रा से अधिक नहीं पीता और नहीं खाता, वह निर्ग्रन्थ है ।

यह क्यों ?

ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—मात्रा से अधिक पीने और खाने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए निर्ग्रन्थ मात्रा से अधिक न पीये और न खाए ।

१२ जो विभूषा नहीं करता—शरीर को नहीं सजाता वह निर्धन है।  
यह क्यों?

ऐसा पुरुष पर आभाव करते हैं—जिसका स्वभाव विभूषा करने का होता है, जो शरीर को विभूषित निष् रहता है, उसे स्त्रियाँ चाहते लगती हैं। पश्चात् स्त्रियाँ क द्वारा पाहे जानेवाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में घरा, बोझा या बिचिड़िया उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उम्माद पैदा होता है अथवा दीपकालिक रोम और आंगक होता है अथवा वह केवली-कविन धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए निम्न विभूषा न करे।

१३ जो शस्त्र रण, रम, नय और स्वयं में आकर्षक नहीं होता, वह निर्धन है।  
यह क्यों?

ऐसा पुरुष पर आभाव करते हैं—रण, रस, नय और स्वयं में आकर्षक होने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में घरा, बोझा या बिचिड़िया उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उम्माद पैदा होता है अथवा दीपकालिक रोम और आंगक होता है अथवा वह केवली-कविन धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए निम्न रण, रस, नय और स्वयं में आकर्षक न बन। ब्रह्मचर्य की मर्यादा का वह इनका स्थान है।

यहाँ हमारे हैं जन्मे—

- १ ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए मुनि होने आवश्यक रहे जो एकान्त, अनादीन और निरर्थक हो।
- २ ब्रह्मचर्य में रह रहेवाला विष्णु मनको आह्लात् होने वाली तथा काम-राग बढ़ाने वाली स्त्री-भवा का व्यवहार करे।
- ३ ब्रह्मचर्य में रह रहेवाला विष्णु स्त्रियों के साथ परिचय और बार-बार वार्तालाप का वर्ज्य करे।
- ४ ब्रह्मचर्य में रह रहेवाला विष्णु स्त्रियों के अनु-वाह्य अथ प्रयोग, आकार, होने की मनहर-मुद्रा और चित्रण को न देखे—देखने का यत्न न करे।
- ५ ब्रह्मचर्य में रह रहेवाला विष्णु स्त्रियाँ क धोष-वाह्य क्रूरता, रदन, गीत हास्य, नयन और कान को न सुने—सुनने का यत्न न करे।
- ६ ब्रह्मचर्य में रह रहेवाला विष्णु पूर्य भावन में स्त्रियों के साथ अनुपुत्र ज्ञान्य बोझा, रति अविद्या और आह्लात्कृत्य का करीबी भी अनुचित न करे।

७. ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु शीघ्र ही काम-वासना को बढ़ाने वाले प्रणीत भक्ष-पान का सदा वर्जन करे ।
८. सदा ब्रह्मचर्य में रत और स्वस्थ चित्त वाला भिक्षु जीवन-निर्वाह के लिए उचित समय में निर्दोष, भिक्षा द्वारा प्राप्त, परिमित भोजन करे, किन्तु मात्रा से अधिक न खाए ।
९. ब्रह्मचर्य में रत रहनेवाला भिक्षु विभूषा का वर्जन करे और शरीर को शोभा बढ़ाने वाले केश, दाढ़ी आदि को शृङ्गार के लिए धारण न करे ।
१०. शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श—इन पाँच प्रकार के काम-गुणों का सदा वर्जन करे ।

११ (१) स्त्रियों से आकीर्ण आलय,

(२) मनोरम स्त्री-कथा,

(३) स्त्रियों का परिचय,

(४) उनके इन्द्रियों को देखना,

१२. (५) उनके वृजन, रुदन, गीत और हास्य-युक्त शब्दों को सुनना,

(६) भुक्त-भोग और सहावस्थान को याद करना,

(७) प्रणीत पान-भोजन,

(८) मात्रा से अधिक पान-भोजन,

१३. (९) शरीर को सजाने की इच्छा और

(१०) दुर्जय काम-भोग

—ये दम आत्म-गर्वपी मनुष्य के लिए तालपुट विष के समान हैं ।

१४. एकाग्रचित्त वाला भुनि दुर्जय काम-भोगों और ब्रह्मचर्य में शका उत्पन्न करने वाले पूर्वोक्त सभी स्यानों का सदा वर्जन करे ।

१५. धर्मवान्, धर्म के रथ को चलाने वाला, धर्म के आराम में रत, दान्त और ब्रह्मचर्य में चित्त का समाधान पाने वाला भिक्षु धर्म के आराम में विचरण करे ।

१६ उस ब्रह्मचारी को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर—ये सभी नमस्कार करते हैं, जो ठुप्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है ।

१७. यह ब्रह्मचर्य-धर्म ध्रुव, नित्य, शाश्वत और अहंत् के द्वारा उपदिष्ट है । इसका पालन कर अनेक जीव सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और भविष्य में भी होंगे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## सतरहवीं अध्याय

### पाप-श्रमणीय

१ जो कोई निश्चय बर्मे को धून, दुःखमय बौद्ध-आम को प्राप्त कर बिना मे धुवन हो प्रशंसित होता है किन्तु प्रशंसित होने के बन्धन स्वच्छन्द-विहारी हो जाना है —

२ (—धुवन के द्वारा अध्याय की प्रेरणा प्राप्त होने पर वह कहना है—)  
मुझे १०० का अण्डा उपास्य विष्णु कहा है ब्रह्मा भी मेरे पास है, सारे पीने का भी मिल जाता है। आयुष्मन् ! जा हो रहा है उसे मैं जान बैठा हूँ। ब ठे ।  
विष्णु मैं धून का अध्याय करने क्या कहना ?

३ जो प्रशंसित हाथ वार वार माद बना है, वा-वीर्य धाराम न भेट जाना है वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

४ जिन धावाय और उपास्य मे धून और विष्णु मिश्राया उन्हीं की निम्न करना है वह विवेक-विफल किन्तु पाप-श्रमण कहलाता है ।

५ जो आनाय और उपास्य के कार्यों का सम्बन्ध प्रकार से बिना नहीं करना या बना का सम्मान नहीं करना जो अभिमानो हाता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

६ द्वितीय आदि प्राप्ति तथा वीर्य और हरियाली का भजन करने वाला, जमदग्नी हात हुए भी अपने-आप को भयभी मानने वाला, पाप-श्रमण कहलाता है ।

७ जो विहीन पाट पीठ, आसन और चंद बाछने के सम्बन्ध का प्रमाण बिने बिना (तथा मेके बिना) उन पर बैठता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

८ जो उदमर्दि न चलता है जो बार बार प्रमाद करना है या प्राणियों का लोप कर—उनके ऊपर हाथर बना जाना है, जो आधी है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

९ जो अमावस्या की प्रतिष्ठा करता है जो पाप-श्रमण को जहाँ बड़ी रग देना है, इस प्रकार का प्रतिष्ठा में अमावस्या हाता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१०. जो कुछ भी गुन कर प्रतिनेमना से अभावधानी करता है, जो निम्न गुण का तिरस्कार करता है—विद्या देने पर उनके सामने झींझने लगता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

११. जो बहुत कपटी, चालाक, अभिमानी, लालची, उन्धिर और मन पर नियंत्रण न रखनेवाला, भक्त-मान आदि का भविनाश न करने वाला और गुण आदि से प्रेम न रखने वाला होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१२. जो धान्त दूध विवाद को फिर उभारता है, जो मदाचार से मूय होता है, जो (कुतर्क) ने अपनी प्रजा का हनन करना है, जो वशग्रह और कलह में रत होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१३. जो स्थिरामन नहीं होता—बिना प्रयोजन उपर-उपर चारक लगाता है, जो हाथ, पैर आदि अवयवों को हिलाना रहता है, जो जहाँ कहीं बैठ जाता है—इस प्रकार आसन (या बैठने) के विषय में जो अभावधानी होता है वह पाप श्रमण कहलाता है ।

१४. जो भविष्य रज में भरे हुए पैरों का प्रमाज्जन किए बिना ही नो जाता है, सोने के स्थान का प्रतिनेमन नहीं करता—उस प्रकार विछीने (या मोने) के विषय में जो अभावधानी होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१५. जो दूध, दही आदि विकृतियों का बार-बार आहार करता है और सपस्या में रत नहीं रहता, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१६. जो भूमि के उदय में लेकर अस्त होने तक बार-बार चला रहता है, 'ऐसा नहीं करना चाहिए'—इस प्रकार भीम देने वाले को कहता है कि तुम उपदेश देने में कुशल हो, करने में नहीं, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१७. जो आचार्य को छोड़ दूसरे भर्मे-भम्प्रदायों में चला जाता है, जो छह मास की अवधि में एक गण से दूसरे गण में मग्न करता है, जिसका आचरण निन्दनीय है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१८. जो अपना घर छोड़ कर (प्रयत्नित होकर) दूसरों के घर में व्यापृत होता है—उनका कार्य करता है, जो धुनःधुन बना कर धन का अर्जन करता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१. विकृति का अर्थ है—विकार बढ़ाने वाले पदार्थ । विकृति के नौ प्रकार बताये गये हैं—दूध, दही, नयनीत, घृत, तैल, गुड़, मधु, मद्य और मांस ।

१६ जा अपने जानि-जना के चरों में मोहन करता ॥ किन्तु सामुदायिक भिन्ना करना नहीं चाहता, जो ब्रह्म की रक्षा पर बैठता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

१७ जो पूर्वोक्त आचरण करने वाला पाँच प्रकार के दुर्गीत पापुत्रों की तरह बलहन, मुनि क बस की पारण करने वाला और मुनि प्रवरों की अनेका दुष्ट भयम वाला होता है, वह इन लोक में विष की तरह निन्दित होता है । वह न इस लोक में कुछ होता है और न पर लोक में ।

१८ जो इन दोषों का सदा वर्जन करता है वह मुनियों में मुख्य होता है । वह इन लोक में अहम की तरह पूजित होता है तथा इन लोक और परलोक—तानाँ सोपों की आराधना करता है ।

—ऐसा मैं कहना हूँ ।



## अठारहवाँ अव्ययन

### संजयीय

१. कापिल्य नगर में मेना और वाहनों से सम्पन्न संजय नाम का राजा था। एक दिन वह शिकार करने के लिए गया।
२. वह घोड़े, हाथी और रथ पर आरुढ़ तथा पैदल चलने वाले महान् सैनिकों द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ था।
३. वह घोड़े पर चढ़ा हुआ था। नैनिक हिरणों को कापिल्य नगर के केशर नामक उद्यान की ओर ढकेल रहे थे। वह रम-मूर्च्छित होकर उन ढंके हुए और खिन्न बने हुए हिरणों को वहाँ व्यथित कर रहा था—मार रहा था।
४. उस केशर नामक उद्यान में स्वाध्याय में लीन रहने वाले एक तपोधन अनगार धर्म-ध्यान में एकाग्र हो रहे थे।
५. कर्म-बन्धन के हेतुओं को निर्मूल करने वाले अनगार लता-मण्डप में ध्यान कर रहे थे। राजा ने उनके समीप आए हुए हिरणों पर वाणों के प्रहार किए।
६. राजा अश्व पर आरुढ़ था वह तुरन्त वहाँ आया। उसने पहले मरे हुए हिरणों को ही देखा, फिर उसने उसी स्थान में अनगार को देखा।
७. राजा अनगार को देखकर भय-भ्रान्त हो गया। उसने सोचा—मैं भाग्यहीन, रम-लोलुप और जीवों को मारने वाला हूँ। मैंने तुच्छ प्रयोजन के लिए मुनि को आहत किया है।
८. वह राजा घोड़े को छोड़ कर विनय पूर्वक अनगार के चरणों में वन्दना कर कहता है—“भगवन् ! इस कार्य के लिए मुझे क्षमा करें।”
९. वे अनगार भगवान् मौन पूर्वक ध्यान में लीन थे। उन्होंने राजा को प्रत्युत्तर नहीं दिया। उसने राजा और अधिक भयाकुल हो गया।
१०. राजा बोला—“हे भगवन् ! मैं संजय हूँ। आप मुझसे बातचीत कीजिए। अनगार क्रुपित होकर अपने तेज से करोड़ों मनुष्यों को जला डालता है।”

११ अनन्तर बोल—“वाचिन ! तुझे मजब है और तू भी मजबूत बन । इस अनिम्य जीव-साक मे तू क्यों हिता मे आसक्त हो रहा है ?

१२ “जब कि तू पराधीन है और इमनिष्ठ सब कुछ छोड़ कर तुझे बने जाना है तब इस अनिम्य जीव-साक में तू क्यों राज्य मे आसक्त हो रहा है ?

१३ “राजन् ! तू जहाँ मोह कर रहा है वह आधन और भीन्स विजयी की वसत के सदाव चपल है । तू परलोक के हिउ को क्यों नहीं समझ रहा है ?

१४ ‘स्वियाँ, पुत्र मित्र और जा-जब ओचित व्यक्ति के साथ भीने हैं किन्तु वे तुन व पीछे नहीं जाते ।

१५. तुम मजब सुत पिता का परम पुत्र व साथ स्मयान मे जान हैं और इसा प्रकार पिता भी अपने पुत्रा और व-पुत्रा का स्मयान मे ल जाता । इमनिष्ठ है राजन् । तू तपसकरण कर ।

१६ ‘राजन् ! सुरहु के पश्चात् उस दुः स्थिति व द्वारा अत्रिष्ठ बन और सुरक्षित स्थियों को हृष्ट, सुष्ट और असह्य हावर दुमर स्थिति भाग्न हैं ।

१७ “उम मरन बाल स्थिति मे थी आ वम किया—सुन्दर या दुःस्वर—उमी व साथ वह परमज मे बना जाता है ।’

१८ वह मजब राजा अनन्तर के समीप महान आधर व साथ धम मुन कर साथ का दण्डन और मनार मे उद्विग्न हो गया ।

१९ मजब राज्य छोड़ कर भववान् यक्षमाणि अनन्तर के समीप त्रिज-शासन मे विलिप्त हो गया ।

२० त्रिमै राष्ट्र का छोड़ कर प्रजाया भी उन सत्रिष्ठ मे (अप्रतिबद्ध-विहारी राजपि सजब स) कहा—“तुम्हारी साहसि जैसे प्रथम दाख रही हैं बने ही तुम्हारा मन भी प्रमन्न दीप्त रहा है ।

२१ “तुम्हारा नाम क्या है ? यात्र क्या है ? किसलिए तुम माहन—मुनि बने हो ? तुम किम प्रकार आचार्यों की सेवा करन हो ? और किम प्रकार विनीत कहनाउ हो ?”

२२ ‘नाम के मैं सजब हूँ । गोत्र मे मैं गौतम हूँ । व-माणि मेरे आचार्य हैं—विद्या और चारित्रिक पारमार्थी । मुक्ति के लिए मैं माहन बना हूँ । आचार्य के उपदेशानुसार मैं सेवा करता हूँ इमनिष्ठ मैं विनीत कहनाउ हूँ ।

२३. वे क्षत्रिय श्रमण बोले—“महामुने ! क्रिया, अक्रिया, विनय, अज्ञान—  
इन चार स्थानों के द्वारा एकान्तवादी तत्त्ववेत्ता जो तत्त्व बतलाते हैं<sup>१</sup>—

२४. “उसे तत्त्ववेत्ता ज्ञान-वशीय, उपशान्त, विद्या और चरित्र से सम्पन्न,  
सत्य-वाक् और मत्प-पराक्रम वाले भगवान् महावीर ने प्रकट किया है ।

२५. “जो मनुष्य पाप करने वाले हैं वे घोर नरक में जाते हैं और आर्य-  
धर्म का आचरण कर मनुष्य दिव्य-गति को प्राप्त होते हैं ।

२६. “इन एकान्त-दृष्टि वाले क्रियावादी आदि वादियों ने जो गूढ़ है, वह  
माया-पूर्ण है उमलिया वह मिथ्या-वचन है, निरर्थक है । मैं उन माया-पूर्ण  
एकान्तवादों ने बच कर रहना हैं और चलना हैं ।

२७. “मैंने उन भवको जान लिया है जो मिथ्या-दृष्टि और अनार्थ है । मैं  
परलोक के अस्तित्व में आत्मा को भलीभाँति जानता हूँ ।

२८. “मैं महाप्राण नामक विमान में कान्तिमान देव था । मैंने वहाँ पूर्ण  
आयु का भोग किया । जैने यहाँ भी वर्ष की आयु पूर्ण होती है, वैसे ही देवलोक  
में पत्योपम<sup>२</sup> और मागरापम<sup>३</sup> की आयु पूर्ण मानी जाती है ।

२९. “वह मैं ब्रह्मलोक से च्युत होकर मनुष्य-लोक में आया हूँ । मैं जिन  
प्रकार अपनी आयु को जानता हूँ उन्ही प्रकार दूसरों की आयु को भी  
जानता हूँ ।”

३०. “नयमी को नाना प्रकार की रुचि, अनिप्राय और जो भव प्रकार के  
अनर्थ हैं उनका वर्जन करना चाहिए—इन विद्या के पथ पर तुम्हारा संचरण  
हो” —(क्षत्रिय मुनि ने राजपि से कहा) —

३१. “मैं (शुभाशुभ भूचक्र) प्रज्ञा और गृहस्थ-कावे-मन्त्रिणी मन्त्रगाओं से  
दूर रहता हूँ । अहो ! मैं दिन-रात धर्माचरण के लिए सावधान रहता हूँ— यह  
ममत्ता कर तुम तप का आचरण करो ।

१. इस श्लोक में चार वादों का उल्लेख हुआ है—

१. क्रियावाद—आत्मा के अस्तित्व का प्रतिपादन करने वाला सिद्धांत ।

२. अक्रियावाद—आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानने वाला सिद्धांत ।

३. अज्ञानवाद—अज्ञान से सिद्धि मानने वाला सिद्धांत ।

४. विनयवाद—विनय से ही मुक्ति मानने वाला सिद्धान्त ।

२-३. गणनातीत कालमान ।

३२ जा तुम मुझे मम्मद् बुद्ध चित्त से आयु के विषय में पूछते हो, उक्त मन्त्र भगवान् ने प्रकट किया है वह ज्ञान जिन-यामन में विद्यमान है।

३३ "धीर-मुक्ता का क्रियावाद पर ध्यान करनी चाहिए और अक्रियावाद को त्याग देना चाहिए। मम्मद् दृष्टि के द्वारा दृष्टि-अभ्यन्त होकर तुम मुकुन्दवर धर्म का आचरण करो।

३४ "अर्थ और धर्म में उन्मादित इस पवित्र उपदेश की सुन कर मरन चक्रवर्ती ने भारतवर्ष और बाग्य धर्मों को छोड़ कर प्रव्रज्या की।

३५ 'सगर चक्रवर्ती मानव पदमत्त भारतवर्ष और पून्य धर्मों की छोड़ मयम की आराधना कर मुक्त हुए।

३६ "महर्षि और महान् मन्त्री मयम चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को छोड़ कर प्रव्रज्या की।

३७ "महर्षि राजा सनमुमार चक्रवर्ती ने पुनः को राज्य पर स्थापित कर तपश्चरण किया।

३८ "महर्षि और लोक में स्थापित करने वाले मन्त्रिणाथ चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को छोड़ कर अनुत्तर गति प्राप्त की।

३९ "इन्द्राक्षर के राजाओं में अन्ध, विन्यास कीर्ति वाले, वृत्तिमान् भगवान् बुद्ध नरेश्वर ने अनुत्तर गति प्राप्त किया।

४० 'सगर पदमत्त भारतवर्ष का छोड़ कर, वन रजस मुक्त हो कर, अर नरेश्वर ने अनुत्तर गति प्राप्त की।

४१ 'विपुल राज्य, मना और बाह्य तथा उत्तम भाषा को छोड़ कर महापद्म चक्रवर्ती ने गन का आचरण किया।

४२ '(धनु राजाओं का) मान-मदन करने वाले हरिदेव चक्रवर्ती ने वृष्णी पर लक्ष्मण शासन किया, फिर अनुत्तर गति प्राप्त की।

४३ 'जय चक्रवर्ती ने हजार राजाओं के साथ राज्य परित्याग कर जिन भागित दम (इन्द्रिय-मयम) का आचरण किया और अनुत्तर गति प्राप्त की।

४४ "साधनान्त्र के द्वारा प्रेरित द्वापयन्त्र ने द्वापय देव का प्रमुनि राज्य छोड़ कर प्रव्रज्या की और मुनि-धर्म का आचरण किया।

"(विदेह ने अर्धपति नमिराज न, जा बुद्ध का त्याग कर ध्यामण में उपस्थित हुए और द्वापय ने जिन्हें साधनान्त्र प्रेरित किया, अरथा का मना लिया—व अरमत्त मन्त्र बन गए।)

४५ "कलिंग में नरेश्वर पञ्चाक्षर में विमुक्त, विदेह में नमि राजा और नायार ने नमति —

४६. "राजाओं में वृषभ के समान वे अपने-अपने पुत्रों को राज्य पर स्थापित कर जिन-शामन में प्रव्रजित हुए और श्रमण-धर्म में मदा यत्न-शील रहे।

४७. "मौवीर राजाओं में वृषभ के समान उद्रायण राजा ने राज्य को छोड़ कर प्रव्रज्या ली, मुनि-धर्म का आचरण किया और अनुत्तर गति प्राप्त की।

४८. "इसी प्रकार श्रेय और मत्स्य के लिए पराक्रम करने वाले काशीराज ने काम-भोगों का परित्याग कर कर्म-हवीं महावन का उन्मूलन किया।

४९. "इसी प्रकार विमल-कीर्ति, महायमस्वी विजय राजा ने गुण से मष्टद राज्य को छोड़ कर जिन-शामन में प्रव्रज्या ली।

५०. "इसी प्रकार अनाकुल-चित्त में उग्र तपस्या कर राजपि महाबल ने अपना गिर देकर गिर (मोक्ष) को प्राप्त किया।

५१. "ये भरत आदि दूर और दृढ़ पराक्रम-शाली राजा दूमरे धर्म-शामनों में जैन-शामन में विशेषता पाकर यहीं प्रव्रजित हुए तो फिर धीरपुरुष एकान्त दृष्टिमय अहेतुवादों के द्वारा उन्मत्त की तरह कैसे पृथ्वी पर विचरण करे?

५२. "मैंने यह अत्यन्त युक्तिशुक्त बात कही है। इसके द्वारा कई जीवों ने ममार-ममुद्र का पार पाया है, पा रहे हैं और भविष्य में पाएंगे।

५३. "धीरपुरुष एकान्त-दृष्टिमय अहेतुवादों में अपने-आप को कैसे लगाए? जो सब मगों में युक्त होता है वह कर्म-रहित होकर मिट्ट हो जाता है।"

—ऐसा मैं कहता हूँ।

## उल्लोखनीय अध्ययन

### मृगापुत्रीय

१. बानन और बराल न घाबित मुरम्ब मुपाय नगर में बलघ्न राजा था। उपा उसकी पटरानी थी।
२. उनसे 'बलघ्नी' नाम का पुत्र था। जनता में वह 'मृगापुत्र'—इस नाम से विद्युत था। वह माना पिता का मित्र, युवराज और इमीश्वर था।
३. वह योग्यतम देवों की शक्ति तथा प्रभुत्व में रहता हुआ आनन्द देने वाले प्रसाध में लोगों के साथ बीठा कर रहा था।
४. मणि और रत्न से जटित कम वाले प्रसाध के गवाण में बीठा हुआ मृगापुत्र नगर के चौकहीं, निराहों और चौकड़ों का देख रहा था।
५. उनमें वहाँ जाते हुए एक नरन समय को देखा जो रात, मियम और समय का कारण करने वाला, भील में मरुट और गुप्ता का भाकर था।
६. मृगापुत्र ने उस अनियेय-दृष्टि में देखा और मन ही मन चिन्तन करने लगा— मैं मानता हूँ कि ऐसा कर मैंने करने नहीं देखा है।”
७. सामु के राजा और अध्यक्षाय वनिज होने पर मैंने ऐसा नहीं देखा है, मनी प्रपद विस-दृष्टि हुई और उन पुत्र कम की स्मृति हा आई।  
(देवताओं से बहुत हा मनुष्य-जन्म में आया। सबन्ध-ज्ञान उत्पन्न हुआ तब पूर्व-जन्म की स्मृति हुई।)
८. जाति-स्मृति ज्ञान उत्पन्न होने पर महदिक मृगापुत्र का पुत्र-जन्म और पुत्र-जन्म आसम्भ की स्मृति हा आई।
९. सब विषय में उनकी आसक्ति नहीं रही। वह मयम में अनुरक्त हो गया। माना पिता के समीप जा समने इन प्रकार कहा—
१०. “मैंने पाँच महात्रना का सुना है। नरक और तिवम्ब शानिया मं दु ग है। मैं ससार-मयुद्ध से चिरक हो गया हूँ। मैं प्रज्वित हाऊँगा। माता। मुझे आप मनुजा हैं।

११. "माता-पिता ! मैं भोगों को भोग चुका हूँ । ये भोग विप के तुल्य हैं, इनका परिणाम कटु होता है और ये निरन्तर दुःख देने वाले हैं ।
१२. "यह शरीर अनित्य है, अगुचि है, अगुचि से उत्पन्न है, आत्मा का यह अशाश्वत आवास है तथा दुःख और क्लेशों का भाजन है ।
१३. "इस अशाश्वत-शरीर में मुझे आनन्द नहीं मिल रहा है । इसे पहले या पीछे जब कभी छोड़ना है । यह पानी के बुलबुले के समान नश्वर है ।
१४. "मनुष्य-जीवन असार है, व्याधि<sup>१</sup> और रोगों<sup>२</sup> का घर है, जरा और मरण से ग्रस्त है । इसमें मुझे एक क्षण भी आनन्द नहीं मिल रहा है ।
१५. "जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है, रोग दुःख है और मृत्यु दुःख है । अहो ! ससार दुःख ही है, जिसमें जीव क्लेश पा रहे हैं ।
१६. "भूमि, घर, सोना, पुत्र, स्त्री, वान्धव और इस शरीर को छोड़ कर मुझे अवश ही चले जाना है ।
१७. "जिस प्रकार किम्पाक-फल छाने का परिणाम सुन्दर नहीं होता उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता ।
१८. "जो मनुष्य लम्बा मार्ग लेता है और साथ में सम्बल नहीं लेता, वह भूख और प्यास से पीड़ित हो कर चलता हुआ दुःखी होता है ।
१९. "इसी प्रकार जो मनुष्य धर्म किए बिना परभव में जाता है वह व्याधि और रोग से पीड़ित होकर जीवन-यापन करता हुआ दुःखी होता है ।
२०. "जो मनुष्य लम्बा मार्ग लेता है, किन्तु सम्बल के साथ, वह भूख-प्यास से रहित हो कर चलता हुआ सुखी होता है ।
२१. "इसी प्रकार जो मनुष्य धर्म की आराधना कर परभव में जाता है, वह अल्पकर्म वाला और वेदना रहित हो कर जीवन-यापन करता हुआ सुखी होता है ।
२२. "जैसे घर में आग लग जाने पर उस घर का जो स्वामी होता है, वह मूल्यवान् वस्तुओं को उसमें से निकालता है और मूल्यहीन वस्तुओं को वहीं छोड़ देता है—

१. व्याधि—अत्यन्त बाधा उत्पन्न करने वाले कुष्ठ आदि रोग ।

२. रोग—कदाचित् होने वाले ज्वर आदि ।

- २३ "इसी प्रकार वह लोक जय और मृत्यु से प्रभावित हो रहा है। मैं आपकी आज्ञा पाकर उनमें से करने-आपको निश्चयपूर्वक।"
- २४ माना गया है कि उन्होंने कहा — "युध ! सामर्थ्य का आचरण बहुत बल्लि है। मनु को हजारों मुख चारण करने होते हैं।
- २५ "विश्व के गुरु और विश्व—मयी बीजा के प्रति समस्त ऐतना और मायमयिक प्राणान्तर की विरति करना बहुत बल्लि काय है।
- २६ "सत्ता अथवा यह सुपाका वा चक्रन करना और सत्त सत्त साधना यह कर हिंसकारी अथ वचन सोलना बहुत बल्लि काय है।
- २७ "इसीमें आदि को भी बिना दिए न केना बार वत वस्तु भी बड़ी लेना, जो अनवय और एषणीय हो, बहुत ही बल्लि काय है।
- २८ "शान-शान का रत जानने शान स्थिति के लिए अज्ञान्य की विरति करना और उक्त अज्ञान्य महाशक्त को चारण करना बहुत ही बल्लि काय है।
- २९ "न धाम्य और प्रेय-वच के परिग्रहण का वजन करना सब आख्या (इष्ट की उत्पत्ति के व्यापारों) और मयत्त वा त्याग करना बहुत ही बल्लि काय है।
- ३० "अनुविच आहार को रत में जाने का त्याग करना तथा समिति और मयय का वजन करना बहुत ही बल्लि काय है।
- ३१ "भूम ध्यात, मही, मही, डीन और मय्यो वा वृत्, भागी-वचन, कथ्यप्र उपाधय, धाम का विहीना, मीन—
- ३२ "साधना, सजना वच, कथन का वच, विना-वर्षा, पाचना और ज्ञान—इह सहन करना बहुत बल्लि काय है।
- ३३ "यह वा वापानी-वृत्ति" शरण केज-लोक और धीर ब्रह्मण्य का चारण करना है वह महान आत्माका के सिद्ध भी सुन्दर है।
- ३४ "युध ! तू भूग भावने योग्य है, मुकुन्दर है। माफ-मुकरा रहने माना है। युध ! तू सामर्थ्य का वाचन करने के लिए समर्थ मही है।

१ वापानी-वृत्ति—बहुतर के समान योगयोग वृत्ति। जिस प्रकार बहुतर वन आदि की उत्पत्ति करते समय सदा गतिवत् रहता है उसी प्रकार साधु भी विनाशपूर्ण निस्संश्लेषता-योग आदि की शक्त में प्रवृत्त होता है।



३५. "पुत्र श्रामण्य ! मे जीवन पर्यन्त विश्राम नहीं है । यह गुणों का महान् भार है । भारी-भरकम लोह-बार की भाँति उसे उठाना बहुत ही कठिन है ।

३६. "अरकाश-गंगा के छोट, प्रतिघात और भुजाओं ने सागर को तैरना जैसे कठिन कार्य है वैसे ही गुणोदधि-मयन को तैरना कठिन कार्य है ।

३७. "संयम बानू के कोर की तरह स्वाद-रहित है । तप का आचरण करना तलवार की धार पर चढ़ने जैसा है ।

३८. "पुत्र ! माँष जैसे एकाग्र-दृष्टि से चलना है वैसे एकाग्र-दृष्टि में चारित्र्य का पालन करना बहुत ही कठिन कार्य है । लोहे के ज्यों को चवाना जैसे कठिन है वैसे ही चारित्र्य का पालन कठिन है ।

३९. "जैसे प्रज्वलित अग्नि-धिया को पीना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही जीवन में श्रमण-धर्म का पालन करना कठिन कार्य है ।

४०. "जैसे वस्त्र के रँगने को हवा ने भरना कठिन कार्य है वैसे ही मर्याहीन व्यक्ति के लिए श्रमण-धर्म का पालन करना कठिन कार्य है ।

४१. "जैसे मेघ-ध्वंस को तराजू में तोलना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही निष्चल और निर्भय भाव से श्रमण-धर्म का पालन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

४२. "जैसे समुद्र को भुजाओं ने तैरना बहुत ही कठिन कार्य है, वैसे ही उपवासहीन व्यक्ति के लिए दमरूपी समुद्र को तैरना बहुत कठिन कार्य है ।

४३. "पुत्र ! तू मनुष्य-सम्बन्धी पाँच इन्द्रियों के भोगों का भोग कर । फिर भुक्त-भोगी हो कर मुनि-धर्म का आचरण करना ।"

४४. "मृगापुत्र ने कहा—"माता-पिता ! जो आपने कहा वह सही है किन्तु जिस व्यक्ति की ऐहिक मृगों की ध्यान वृत्ति धुकी है उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ।

४५. "मैंने भयकर शारीरिक और मानसिक वेदनाओं को अनन्त बार सहा है और अनेक बार दुःख एवं भय का अनुभव किया है ।

४६. "मैंने चार अन्त वाले और भय के आकर जन्म-मरणरूपी जंगल में भयकर जन्म-मरणों को मटा है ।

---

१. सप्तरूपी कांतार के चार अन्त हैं—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इसलिए यह चार अन्त वाला कहा जाता है ।

- ४७ १ 'जैसे यहाँ अग्नि जल है' इन्ने अनन्त गुना अधिक दुःखमय उष्ण वेदना यहाँ नरक में मिले सही है ।'
- ४८ जैसे यहाँ यह चीज है इन्ने अनन्त गुना अधिक दुःखमय चीन-वेदना यहाँ नरक में मिले सही है ।
- ४९ "पकाने के पात्र में जमती हुई अग्नि मवेशों को ऊँचा और घिर को नीचा कर आकन्द करना हुआ मैं अनन्त बार पकाया गया हूँ ।
- ५० 'महा दहानि जैसे मर-देह और वज्रानुध्वज जैसी करम्ह नदी मैं आगू में मैं अनन्त बार पकाया गया हूँ ।
- ५१ मैं पाप पात्र में जाल रहित हा कर आकन्द करना हुआ ऊँचा जाया गया तथा करबन और बारा आग्नि के द्वारा अनन्त बार दिसा गया हूँ ।
- ५२ "आप-न भीने काँटों वाले ऊँचे छातमलि" हल पर पाप मैं भीम हथर-उधर नीच कर अलगा वेदना में मैं बिग्न किया गया हूँ ।
- ५३ "पाप-कर्मों में अग्नि अवसर आकन्द करना हुआ अपने ही कर्मों द्वारा महायज्ञों में ईश की भाँति अनन्त बार पेशा गया हूँ ।
- ५४ "मैं हथर-उधर जाना और आकन्द करता हुआ बाले और बिजबरे मूत्रर एवं गुना के द्वारा जनेक बार पिराया 'छाटा और छाटा गया हूँ ।
- ५५ "पाप-कर्मों के द्वारा नरक में अवतरित हुआ मैं जलती के कुर्मी के समान नीम रंग वाली ललबारा भक्षिया और बाहुदण्ड के द्वारा दिसा, वेधा और छाटे छटि दुकड़ों में बिभक्त किया गया हूँ ।
- ५६ "गुण-कीलक" में गुग्गु जलते हुए मोहर रस में परबन बनाया गया मैं बीना गया, बाहुक और रस्मी के द्वारा हुँगा गया तथा रोम की भाँति भूमि पर गिराया गया हूँ ।
- ५७ "पाप-कर्मों से घिरा और परबन हुआ मैं जैसे की भाँति अग्नि की जलती हुई बिनामों में भसाया और पकाया गया हूँ ।

१ ७६ से ७४—इन श्लोकों में नारकीय वेदनाओं का वर्णन है । पहले तीन नरकों में परमात्मनिक वेदनाओं द्वारा पीड़ा पहुँचाई जाती है और अन्तिम चार में नारकीय जीव स्वयं परस्पर वेदना की उद्दीरणा करते हैं ।

२ छातमलि—सेबल का वृक्ष ।

३ गुण-कीलक—गुग्गु के छेदों में डाली जाने वाली लकड़ी की कील ।

३५. "पुत्र श्रामण्य ! मे जीवन पर्यन्त विश्राम नहीं है । यह गुणों का महान् भार है । भारी-भरकम लोह-भार की भाँति इसे उठाना बहुत ही कठिन है ।

३६. "आकाश-गंगा के स्रोत, प्रस्रवित और भुजाओं में सागर को तैरना जैसे कठिन कार्य है वैसे ही गुणोदधि-मंथन को तैरना कठिन कार्य है ।

३७. "मंथन बालू के कोर की तरह ह्वादा-रहित है । तप का आचरण करना तलवार की धार पर चमकने जैसा है ।

३८. "पुत्र ! माँप जैसे एकाग्र-दृष्टि से चलना है वैसे एकाग्र-दृष्टि में चारित्र्य का पालन करना बहुत ही कठिन कार्य है । लोहे के जवों को घसाना जैसे कठिन है वैसे ही चारित्र्य का पालन कठिन है ।

३९. "जैसे प्रज्वलित अग्नि-दिशा को पीना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही जीवन में श्रमण-धर्म का पालन करना कठिन कार्य है ।

४०. "जैसे वस्त्र के धँसे को हवा में भरना कठिन कार्य है वैसे ही मदरहीन व्यक्ति के लिए श्रमण-धर्म का पालन करना कठिन कार्य है ।

४१. "जैसे मेरु-पर्वत को तराजू में तोलना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही निदचल और निर्भय भाव से श्रमण-धर्म का पालन करना बहुत ही कठिन कार्य है ।

४२. "जैसे समुद्र को भुजाओं में तैरना बहुत ही कठिन कार्य है, वैसे ही उपशमहीन व्यक्ति के लिए दमरूपी समुद्र को तैरना बहुत कठिन कार्य है ।

४३. "पुत्र ! तू मनुष्य-सम्बन्धी पाँच इन्द्रियों के भोगों का भोग कर । फिर भुक्त-भोगी हो कर मुनि-धर्म का आचरण करना ।"

४४. "मृगापुत्र ने कहा—“माता-पिता ! जो आपने कहा वह सही है किन्तु जिस व्यक्ति की ऐहिक मूर्खों की प्यास बुझ चुकी है उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ।

४५. "मैंने भयकर शारीरिक और मानसिक वेदनाओं को अनन्त बार सहा है और अनेक बार दुःख एवं भय का अनुभव किया है ।

४६. "मैंने चार अन्त वाले और भय के आकर जन्म-मरणरूपी जंगल में भयकर जन्म-मरणों को सहा है ।

---

१. सप्ताहरूपी कान्तार के चार अन्त हैं—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इसलिए यह चार अन्त वाला कहा जाता है ।

- ४३ ७ "जैसे यहाँ अग्नि उत्पन्न है, इससे अनन्त गुना अधिक दुःखमय उत्पन्न जैना यहाँ नरक में मीने सही है ।"
- ४८ जैसे यहाँ यह चीज है इससे अनन्त गुना अधिक दुःखमय चीज-जैना यहाँ नरक में मीने सही है ।
- ४९ "पकाने के पात्र में, जम्पती हुई अग्नि से वैसे की ऊँचा भीर तिर को नीचा कर आक्रमण करता हुआ मैं अनन्त बार पकसा गया हूँ ।
- ५० 'महा दवाग्नि जैसे मद-देश और बख्खानुवा जैसी कदम्ब नदी के तालु में मैं अनन्त बार जलाया गया हूँ ।
- ५१ 'मैं पाव-पाव में पाव रहित हुआ कर आक्रमण करता हुआ ऊँचा बाँधा गया तथा करवत और भारा आदि के द्वारा अनन्त बार टूटा गया हूँ ।
- ५२ "आत्मन् तीर्थ कोटों वाले ऊँचे आत्मन्<sup>१</sup> सत पर पाव में बाँध इधर-उधर लीज कर अनन्त बेदना में मैं विन्न किया गया हूँ ।
- ५३ "पाप-कर्मों में अग्नि भयकर आक्रमण करता हुआ अपन ही कर्मों द्वारा महायन्त्र में डूब ली आदि अनन्त बार घेरा गया हूँ ।
- ५४ "मैं इधर-उधर जाता और आक्रमण करता हुआ काले और बिजबरे मूत्रर एवं कुत्तों के द्वारा अनेक बार गिराया, पड़ा और काटा गया हूँ ।
- ५५ "पाप-कर्मों के द्वारा नरक में अवतरित हुआ मैं जम्पती के कुत्तों के समान नीले रंग वाली गलबारा, अस्थिया और माहुरणों के द्वारा टूटा, घेरा और छाटे छाटे टुकड़ों में बिभक्त किया गया हूँ ।
- ५६ "गुण-कीलक<sup>२</sup> में घुसत जलने हुए माहुरण में परवण बनाया गया मैं खोना गया, चाकुल और रस्ती व द्वारा हूँना गया तथा रोत की आँत्रि भूमि पर गिराया गया हूँ ।
- ५७ 'पाप-कर्मों में विरा और परवण हुआ मैं जैसे की आँत्रि अग्नि की जम्पती हुई बिनाओं में जलाया और पकाया गया हूँ ।

१ ॥३ से ७४—इन श्लोकों में नारकीय बेदनाओं का वर्णन है । पहले तीन नरकों में परमाधार्मिक बेदताओं द्वारा पीड़ा पहुँचाई जाती है और अन्तिम बार में नारकीय जीव स्वयं परस्पर बेदना की उद्दीरणा करते हैं ।

२ शात्मन्—सेवक का वृक्ष ।

३ गुण-कीलक—गुण के क्षेत्रों में डाली जाने वाली लकड़ी की कील ।

५८. "संडासी जैसी चोच वाले और लोहे जैसी कठोर चोच वाले ढंक और गीध पक्षियों के द्वारा विलाप करता हुआ मैं बल-प्रयोग पूर्वक अनन्त बार नोचा गया हूँ ।

५९. "प्यास से पीड़ित होकर मैं दौड़ता हुआ वैतरणी नदी पर पहुँचा । 'जल पीऊँगा'—यह सोच रहा था, इतने में छूरे की धार से मैं चीरा गया ।

६०. "गर्मी से मत्त होकर असि-पत्र महावन में गया । वहाँ गिरते हुए तलवार के समान तीखे पत्तों से अनेक बार छेदा गया हूँ ।

६१. "मुद्गरों, मुसुण्डियों, गूलों और मुसलों से त्राण-हीन दशा में मेरा शरीर चूर-चूर किया गया—इस प्रकार मैं अनन्त बार दुःख को प्राप्त हुआ हूँ ।

६२. "तेज धार वाले छूरो, छुरियों और कैंचियों से मैं अनेक बार खण्ड-खण्ड किया गया, दो टूक किया गया और छेदा गया हूँ तथा मेरी चमड़ी उतारी गई है ।

६३. "पाशों और कूटजालों द्वारा मृग की भाँति परवश बना हुआ मैं अनेक बार ठगा गया, बाँधा गया, रोका गया और मारा गया हूँ ।

६४. "मछली के फँसाने की कँटियों और मगरों को पकड़ने के जालों द्वारा मत्स्य की तरह परवश बना हुआ मैं अनन्त बार खींचा, फाड़ा, पकड़ा और मारा गया हूँ ।

६५. "बाज पक्षियों, जालों और वज्रलेपों के द्वारा पक्षी की भाँति मैं अनन्त बार पकड़ा, चिपकाया, बाँधा और मारा गया हूँ ।

६६. "बढई के द्वारा वृक्ष की भाँति कुल्हाड़ी और फरमा आदि के द्वारा मैं अनन्त बार कूटा, दो टूक किया, छेदा और छोला गया हूँ ।

६७. "लोहार के द्वारा लोह की भाँति चपत और मुट्ठी आदि के द्वारा मैं अनन्त बार पीटा, कूटा, भेदा और चूरा किया गया हूँ ।

६८. "भयकर आक्रन्द करते हुए मुझे गर्म और कलकल शब्द करता हुआ ताँवा, लोहा, राँगा और सीसा पिलाया गया ।

६९. "तुझे खण्ड किया हुआ और धूल में खोंस कर पेकाया हुआ मांस प्रिय था—यह याद दिलाकर मेरे शरीर का मांस काट अग्नि जैसा लाल कर मुझे खिलाया गया ।

७०. "तुझे सुरा, सीधु, मँरेय और मधु—ये मदिराएँ प्रिय थीं—यह याद दिलाकर मुझे जलती हुई चर्वी और रुधिर पिलाया गया ।

७१ "सदा भवमीश, सर्वज्ञ, दुःखित और अविन रूप में रहते हुए मैंने परम दुःखमय वेदना का अनुभव किया है।

७२ "सीध, पण्ड, प्रमाद, भोर, अत्यन्त गम्भीर वेदनाओं का मैंने नरक-लोक में अनुभव किया है।

७३ "माता पिता ! अनुपम-नाक में जैसी वेदना है उससे अनन्तगुना अधिक दुःख देने वाली वेदना नरक-लोक में है।

७४ 'मैंने अभी ब-बों में दुःखमय वेदना का अनुभव किया है। वहाँ एक निमेष का अन्तर पड़े उसी भी अनुभव वेदना नहीं है।"

७५. माता पिता ने उससे कहा—'बुध ! तुम्हारी इच्छा है ता प्रवर्धित हो जाय। परन्तु अमय बनने के बाद राखों की चिन्तना नहीं की जाती। यह चिन्तना कठिन मान है ?'

७६ उसने कहा—'माता पिता ! आपने जो कहा वह ठीक है। किन्तु जगत में रहने वाले हरिण और पक्षियों की चिन्तना कौन करता है ?

७७ "जैसे जल में हरिण अकेला बिचरता है वैसे मैं भी समय और तप के माध एकाकी माध को प्राप्त कर मम का नाश करूँगा।

७८ 'जब महाभय में हरिण के शरीर में जातक उत्पन्न होता है तब किसी हल के पास बैठे हुए उस हरिण की कौन चिन्तना करता है ?

७९. "कौन उसे औषधि देता है ? कौन उससे मुक्त की बात पूछता है ? कौन उसे जाने-पीने को भोजन वाली लाकर देता है ?

८० "जब वह स्वस्थ हो जाता है तब गोबर में जाता है। जाने-पीने के लिए लूना निकुञ्ज और जलाशय में जाता है।

८१ "सता-निकुञ्ज और जलाशयों में जा-पीकर वह भृग-चर्पा (जर्पा) के द्वारा भृग-चर्पा (स्वतन्त्र विहार) के लिए जाता है।

८२ "इसी प्रकार समय के लिए उठा हुआ मितु स्वतन्त्र विहार करता हुआ भृग-चर्पा का नाश कर ले-दिखा—मोक्ष का बता जाता है।

८३ 'जिस प्रकार हरिण अकेला, अकेले स्त्रियों से भोजन-पानी लेने वाला और गाबर से ही जीवन-पोषण करने वाला होता है उसी प्रकार गाबर-प्रविष्ट भूनि जब जिन्ना के लिए जाता है तब किसी की मरणा और निन्दा नहीं करता।

८४ "मैं भृग-चर्पा का नाश करूँगा।' बुध ! जैसे तुम्हें मुक्त हो बने करो।" इस प्रकार माता पिता की अनुमति पाकर वह चैपवि को छोड़ रहा है।

८५. "मं तुम्हांगे अनुमति पाकर मय दुःखों में मृद्विन् दिलाने वाली मृग-चर्या का आचरण करूँगा ।" (माना-पिता ने कहा)—"पुत्र ! जैसे तुम्हें सुग हो वैसे करो ।"

८६. "उन प्रकार वह नाना उपायों ने माना-पिता को अनुमति के लिए राजी कर ममत्व का छेदन कर रहा है जैसे महानाग काँचुली वा छेदन करता है ।

८७. "श्रद्धा, धन, मित्र, पुत्र, कलत्र और शानिजनो को कपड़े पर लगी हुई धूलि की भाँति टाटक कर वह निकल गया—प्रयत्नित हो गया ।

८८. "वह पाँच महाव्रतों में युक्त, पाँच ममिनियाँ में ममिन, तीन गुणियों में गुप्त, आन्तरिक और बाहरी तपस्या में तत्पर—

८९. "ममत्व-रहित, अहंकार-रहित, निर्लेप, गौरव को त्यागने वाला, यश और स्थावर सभी जीवों में ममभाव रखने वाला—

९०. "लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण, निराश-प्रशंसा, मान-अपमान में मम रहने वाला—

९१. "गौरव, कषाय, दण्ड, क्षत्य, भय, हास्य और शोक से निवृत्त, निदान और वन्धन से रहित—

९२. "इहलोक और परलोक में अनासक्त, वसुने में काटने और चन्दन लगाने पर तथा आहार मिलने या न मिलने पर मम रहने वाला—

९३. "प्रशस्त द्वारों में आने वाले कमपुद्गलों का मर्त्यः निरोध करने वाला, शुभ-ध्यान की प्रवृत्ति से प्रशस्त एवं उपशम-प्रधान साधन में रहने वाला हुआ ।

९४. "इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप और विमुक्त भावनाओं के द्वारा आत्मा को खली-भाँति भावित कर—

९५. "बहुत वर्षों तक धमण-धर्म का पालन कर, अन्न में एक महीने का अन्नशन कर वह अनुत्तर मिद्धि—मोक्ष को प्राप्त हुआ ।

९६. "संबुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण जो होते हैं वे ऐसा करते हैं । वे भोगों में उसी प्रकार निवृत्त होते हैं, जिस प्रकार मृगा-पुत्र ऋषि हुए थे ।

९७. "महा प्रभावशाली, महान् यशस्वी मृगा-पुत्र का कथन, तप-प्रधान उत्तम-आचरण और त्रिलोक-विश्रुत प्रधान-गति (मोक्ष) को नुन कर—

९८. "धन को दुःख बढ़ाने वाला और ममता के वन्धन को महान् भयंकर जान कर सुग देने वाली, अनुत्तर निर्वाण के गुणों को प्राप्त कराने वाली, महान् धर्म की धुरा को धारण करो ।"

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

दोसरी अध्यायन

## महानिग्रन्थीय

१ सिद्धों और सत्य-अप्रमाथों को भाव भरा नमस्कार कर मैं सब (साध्य) और सब का ज्ञान कराने वाली सत्य-गुण अनुधामना का निरूपण करता हूँ । वह मुझसे बुरी ।

२ प्रभु रत्नों से सज्ज, भगवत्ता जगति राजा ऐश्वर्य महिभूति नामक उद्यान में विहार-यात्रा (भीड़ा-यात्रा) के लिए गया ।

३ वह उद्यान नामा प्रचार के इन्हीं और जगत्तों से आशीम, नामा प्रचार के परिषदा से आशित, नामा प्रचार के सुमुखों से पूर्ण है का हुआ और मन्दमन्द के समान था ।

४ वहाँ राजा ने संयत, मानमित्र समाधि से सम्पन्न, रत्न के पास बैठे सुहृद्धार और भुज मीमने शीघ्र साधु की देखा ।

५ उसके रूप को देखकर राजा उस संयत के प्रति आकृष्ट हुआ और उसे अत्यन्त आकृष्ट और अनुसमीय विस्मय हुआ ।

६ आश्चर्य ! कैसा यहाँ और कैसा रूप है ! आश्चर्य ! भाव की कैसी शीघ्रता है ! आश्चर्य ! कैसी ज्ञान और निर्भीकता है ! आश्चर्य ! जोगों में कैसी जगामति है ।

७ उसके चरनों में कमलार और प्रदक्षिणा कर, न भतिदूर, न अनिनिवट यह राजा ने हाथ जोड़ कर पूछा—

८ “आय ! जमी तुम तबल हा । सवत ! तुम जोग-नाम में प्रव्रित हो, आश्रम के लिए उपस्थित हुए हो इसका क्या प्रयोजन है ? मैं सुनना चाहता हूँ ।”

९ “महाराज ! मैं जनाप हूँ मेरा कोई भाव नहीं है । भुज पर अनुभव करने वाला या निव कोई नहीं या रहा है ।”

१० यह सुनकर भगवानिपति राजा ऐश्वर्य और से हुआ और बोला—  
“तुम ऐसे सहज सीमाव्यवहारी हो फिर कोई तुम्हारा भाव कैसे नहीं है ?



११. "हे भद्र ! मैं तुम्हारा नाथ होना हूँ । गयन ! मित्र और जानियों ने परिवृत होकर विषयों का नांग करो । यह मनुष्य-जन्म बहुत दुर्लभ है ।"

१२. "हे भगवत् के अधिपति श्रेणिक ! तू स्वयं अनाथ है । स्वयं अनाथ होने हुए तू हमरों का नाथ कैसे होगा ?"

१३. श्रेणिक पहले ही विस्मयान्वित बना हुआ था और गाण्ड के द्वारा—'तू अनाथ है'—ऐसा अभ्युत्पन्न-वचन श्रेणिक के जाने पर यह अत्यन्त व्याकुल और अत्यन्त आश्चर्यमग्न हो गया ।

१४. "मेरे पास हाथी, घोड़े और मनुष्य हैं, नगर और अन्न-पुत्र हैं, मैं मनुष्य सम्बन्धी लोगों को भोग रहा हूँ, आज्ञा और ऐश्वर्य मेरे पास हैं ।

१५. "जितने मुझे सब काम-भोग समर्पित किये हैं वे भी उन्मत्त सम्पदा होते हुए मैं अनाथ कैसे हूँ ? भद्रन्त ! असत्य मन थालो ।"

१६. "हे पायिब ! तू अनाथ शब्द का अर्थ और उगको उत्पत्ति—मैंने तुझे अनाथ क्यों कहा—तुझे वही जानता, इसलिए मैंने अनाथ या मनाथ होना है, मैंने नहीं जानता ।

१७. "महाराज ! तू अव्याकुल चित्त से यह सुन—जैसे कोई पुरुष अनाथ होता है और जिस रूप में मैंने अनुभव किया है ।

१८. "प्राचीन नगरों में असाधारण सुन्दर कौशाम्बी नाम की नगरी है । वहाँ मेरे पिता रहते हैं । उनके पास प्रचुर धन का सचय है ।

१९. "महाराज ! प्रथम-वय में मेरी आँगों में असाधारण वेदना उत्पन्न हुई । पायिब ! मेरा समूचा शरीर पीटा देने वाली जलन में जल उठा ।

२०. "जैसे क्रुपित बना हुआ शत्रु शरीर के छेदों में अत्यन्त नीचे दान्यों को घुसेड़ता है, उसी प्रकार मेरी आँगों में वेदना हो रही थी ।

२१. "मेरे कटि, हृदय और मस्तक में परम दारुण वेदना हो रही थी, जैसे इन्द्र का वज्र लगने से घोर वेदना होती है ।

२२. "विद्या और मन्त्र के द्वारा चिकित्सा करने वाले मन्त्र और औषधियों के विशारद अद्वितीय शास्त्र-कुशल प्राणाचार्य मेरी चिकित्सा करने के लिए उपस्थित हुए ।

२३ "उन्होंने जैसे मेरा हित हो वैसे अनुष्ठा<sup>१</sup> चिन्तित<sup>२</sup> की, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके—यह मेरी अनादना है ।

२४ "मेरे पिता ने मेरे लिए उन प्राधान्यों की बहुमुख्य वस्तुएँ दीं, किन्तु वे (पिता) मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके—यह मेरी अनादना है ।

२५ "महाराज ! मेरी माता पुत्र-शोध व दुःख से पीड़ित हाती हुई भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी—यह मेरी अनादना है ।

२६ "महाराज ! मेरे बड़े-छोटे सब भाई भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके—यह मेरी अनादना है ।

२७ "महाराज ! मेरी बड़ी-छोटी सभी बहनें भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकीं—यह मेरी अनादना है ।

२८ "महाराज ! मुझमें अनुरक्त और पतिव्रता मेरी पत्नी भाँवू भरे नयनों से मेरी छाती को चिथोली चली ।

२९ "यह बाला मेरे प्रत्यक्ष का परीण न जन्म, पाल, स्नान, गन्ध, मास्य और विलेपन का भोग नहीं कर रही थी ।

३० "यह क्षण भर के लिए भी मुझसे दूर नहीं हा रही थी, किन्तु वह मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी—यह मेरी अनादना है ।

३१ "तब मैंने इस प्रकार कहा—इस अनन्य समार में बार-बार पुस्तक मैत्रा का अनुभव करना होता है ।

३२ "इस विपुल बटना से यदि मैं एक बार ही मुक्त हो जाऊँ तो शान्त, शान्त और निरारम्भ होकर अनन्तर-रुति का स्वीकार कर लूँ ।

३३ "हूँ नराचि<sup>३</sup> ! ऐसा चिन्तन कर मैं तो गया । बीसवीं हुई रात्रि के साथ साथ मेरी बटना भी खींच हो गई ।

३४ "उनके पञ्चांग प्रमात्राण में मैं स्वयं हो गया । मैं अपने बन्धु-जनों की पूजा भाग, शान्त और निरारम्भ होकर अनन्तर-रुति में आ गया ।

३५ "तब मैं अपना और दूसरे का, सभी भक्त और स्वाधर भीषों का नाथ हो गया ।

१ अनुष्ठा चिन्तित—चिन्तित के बार बार होने हैं—बस, औषध, रोगी और परिचारक । जहाँ इन चारों का पुनः योग होता है उसे अनुष्ठा कहते हैं ।

३६. "मेरी आत्मा ही बँवरणी नदी, है और आत्मा ही दूट मान्गरी दुश्त है। आत्मा ही काम-दुःखा-धेनु दे और आत्मा ही नन्दन-वन है।

३७. "आत्मा ही दुःख-मुग्ध की करने वाली और उनका दण्ड करने वाली है। सत्प्रवृत्ति में लगी हुई आत्मा ही मित्र है और दुष्टप्रवृत्ति में लगी हुई आत्मा ही शत्रु है।

३८. हे रजन् ! वह एक दूमरी अनायना ही है। एसाप्रचित्त, स्विक-सान्त होकर तुम उसे मुझसे सुनो। जैसे कई एक व्यक्ति बहुत कामर होते हैं। वे निर्ग्रन्थ-धर्म को पाकर भी बप्टों का अनुभव करते हैं—निर्ग्रन्थाचार के पालन करने में विधिल हो जाने से।

३९. "जो महाजनों को स्वीकार कर भरीभाति उनका पालन नहीं करता, अपनी आत्मा का निग्रह नहीं करता, रमो में मूर्च्छित होता है, वह धर्म का मूलोच्छेद नहीं कर पाता।

४०. "ईर्ष्या, भाषा, गपणा, आदान-निक्षेप और उगार-प्रत्यगण की परिस्थापना में जो सावधानी नहीं बनाता, वह उग-मार्ग का अनुगमन नहीं कर सकता जिस पर बीर पुरुष चले हैं।

४१. "जो व्रतों में स्थिर नहीं है, तप और नियमों में भ्रष्ट है, वह चिरकाल तक मुड्कचि (साधु) होकर भी, चिरकाल तक आत्मा को कष्ट देकर भी, संसार का पार नहीं पा सकता।

४२. "जो पोली मुट्टी की भाँति असार है, सिके की भाँति नियन्त्रण-रहित है, काँचमणि होते हुए भी वैभूय जैसे चमकता है, वह जानकार व्यक्तियों की दृष्टि में मूल्य-हीन हो जाता है।

४३. "जो कुशोल-वेश और श्रृपि-ध्वज (रजोहरण आदि मुनि-चिह्नों) को धारण कर उनके द्वारा जीविका चलाता है, अमयत होते हुए भी अपने-आप को मयत कहता है, वह चिरकाल तक विनाश को प्राप्त होता है।

४४. "पिया हुआ काल-कूट विष, अविधि से पकड़ा हुआ शस्त्र और नियन्त्रण में नहीं लाया हुआ बैताल जैसे विनाशकारी होता है, वैसे ही यह विषयो से युक्त धर्म भी विनाशकारी होता है।

४५. "जो लक्षण-शास्त्र, स्वप्न-शास्त्र का प्रयोग करता है, निमित्त शास्त्र और कीतुक<sup>१</sup> कार्य में अत्यन्त आसक्त है, मिथ्या आश्चर्य उत्पन्न करने वाले

१. कीतुक—सन्तान-प्राप्ति के लिए विशेष द्रव्यों से मिश्रित जल से स्नान आदि करना।

विद्यात्मक आश्रय-द्वार से जीविका चलाना है वह कम या कम भुगतन के समय विद्ये की धारण का प्राप्ति नहीं होगा ।

४६ "यह शीघ्र-रहित मायु अपने तीव्र अज्ञान में सज्ज दुःखों हाकर विपरीत दृष्टि वाला हो जाता है । यह अमायु ग्रहण वाला मुनि धर्म की विराधना कर नरक और नियम्याभि य आश्रय-जाता रहता है ।

४७ "जो 'बोहेसिक', 'कोट्टुन', 'नित्वाड' और कुछ भी अनेकपणों को नहीं छोड़ता, वह अग्नि की तरह सब-भूतों द्वारा, पान-पत्र का अन्न करता है और यहाँ से घर घर दुःखित हो जाता है ।

४८ "अपनी दुःखदृष्टि या अवर्त उन्मूलन करनी है वह अनप गंगा काटने वाला शत्रु भी नहीं करता । यह दुःखदृष्टि करने वाला क्या विहीन अनुप्य शत्रु के भुग्न से पट्टने के समय परचात्ताप के साथ इन मध्य का जान पाएगा ।

४९ "जो अस्तिम समय की आराधना से भी विपरीत बुद्धि रखता है—दुःखदृष्टि का सग्न ग्रहण भागना है उसकी समय-रहित भी निरपेक्ष है । उसके लिए यह शीघ्र भी नहीं है, परकाय भी नहीं है । यह शीघ्रों शीघ्रों से अन्त होकर शान्त कोषों के प्रवीजन की धूमि न कर सकने के कारण चिन्ता से छीम जाता है ।

५० "एसी प्रकार कषाच्छन्द (स्वच्छन्द भाव से विहार करने वाला) और बुद्धाल छात्रु विनात्मक अवधान के भाग की विराधना कर परिताप का प्राप्त होता है जैन—जीन रक्ष में आसक्त होकर अवहीन बिम्बा करने वाली शीघ्र बगिची ।

५१ 'देवाधी दुःख इस अनुपानि, पान-भुग्न से भुक्त अनुमानन का भुक्तद भुक्ति व्यक्तिया के सग्न भाग का छात्रु महानिग्रह के भाग न पत्र ।

५२ 'किर चरित के आचरण और ज्ञान आदि भुगा से नम्यन निरन्ध अनुसर समय का पालन कर, कष्टों का छत्र कर निरासक्त होता है और यह विदुलीतम शास्त्र स्थान—मात्र में बना जाता है ।"

५३ 'इन प्रकार उद-दान्त, महा-न्यायन, महा-अनिष्ट, महान् यदरथा उन महामुनि ने इन महाधुत, महानिग्रहीव अध्यायन को महान् विनार के साथ कहा ।

५४. श्रेणिक राजा तुष्ट हुआ और दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला—  
“भगवन् ! तुमने अनाथ का यथार्थ स्वरूप मुझे समझाया है ।

५५. “हे महर्षि ! तुम्हारा मनुष्य-जन्म मुलब्व है—मफल है । तुम्हें जो उपलब्धियाँ हुई हैं वे भी मफल हैं । तुम सनाथ हो, सवान्वव हो क्योंकि तुम तीर्थकर के मार्ग में अवस्थित हो ।

५६. “हे मंयत ! तुम अनाथों के नाथ हो, तुम मव जीवों के नाथ हो । हे महाभाग ! मैं अनुशामित होना चाहता हूँ ।

५७. “मैंने तुमने प्रश्न कर जो ध्यान मे विघ्न किया और भोगों के लिए निमन्त्रण दिया, मेरे उन सब व्यवहारों को तुम सहन करो—क्षमा करो ।”

५८. इस प्रकार राजसिंह—श्रेणिक अनगार-सिंह की परम भक्ति से स्तुति कर अपने विमल चित्त से रनिवास, परिजन और बन्धु-जन सहित धर्म में अनुरक्त हो गया ।

५९. राजा के रोम-रूप उच्छ्वसित हो रहे थे । वह मुनि की प्रदक्षिणा कर, सिर झुका, वन्दना कर चला गया ।

६०. वह गुण से समृद्ध, त्रिगुप्तियों से गुप्त, तीन दण्डों से विरत और निर्मोह मुनि भी विहग की भाँति स्वतन्त्र-भाव से भूतल पर विहार करने लगा ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## इन्डोसर्वा अध्ययन

### समुद्रपालीय

१ कन्या नगरी में वालिन नामक एक बनिर-धावक हुआ । वह महात्मा भगवान् महावीर का शिष्य था ।

२ वह धावक निम्नप्र प्रवचन में बोलि" था । वह बहुत से व्यापार करने वाला हुआ विदुष नगर में आया ।

३ विदुष नगर में व्यापार करने समय उस किन्ही बनिर् में पुरी दी । कुछ समय ठहरने के बाद वह नगरी की गेट पर रुकने की विद्या हुआ ।

४ वालिन की स्त्री ने समुद्र में पुत्र का प्रसव किया । वह समुद्र में उभरा हुआ इमनि" उनका नाम समुद्रपाल रखा ।

५ वह बनिर-धावक समुद्र" कन्या नगरी में अपने घर आया । वह गुप्ताचिन पुत्र होने पर न कहने लगा ।

६ उसने बहुत कमाई की थी और वह नीति-बोधि" बना । वह पूर्ण जीवन में सुख और श्रम समझे लगे ।

७ उसका रिश्ता उनके लिए बनिरी नामक नगर स्त्री लाया । वह शत्रु" देव की भाँति उनका साथ नुर" प्रामा" में कीड़ा करने लगा ।

८ वह बनी एक बार प्रामा" के घराने में बड़ा हुआ था । उसने बध्य-वनाचिन मछली में शामिल" बन्ध की मछ" न बाहर से जाने हुए देगा ।

---

१ बध्य-वनीचिन मछली से शामिल - इन शब्दों में एक प्राचीन वरम्भ का संकेत मिलता है । प्राचीन काल में बोरी करने वाले की कनेर रण्ड दिया जाता था । जिसे बध्य की मछली होती जाती थी उसने गले में कनेर के लाल पुर्णों की जाना धागाई जाती उसे लाल कनेर पर बाए जाने उसने प्ररीर पर लाल कनेर का लेन दिया जाता और उसे गारे मगर में धुमाने हुए उसने बध्य होने की जानकारी देने हुए उसे समझने की ओर से आया जाता था ।

६. उसे देग वैराग्य में बीना हुआ समुद्रपाल यी बीना—“बहो ! यह अमुन कर्मों का दुःख अवमान है ।”

१०. वह जानी समुद्रपाल परम वैराग्य की प्राप्ति हुआ और मनुष्य बन गया । उसने माना-पिता को पुण्यकर्म माधुन्य स्वीकार किया ।

११. मुनि महान् वनेश और महान् मोक्ष को उदात्त करनेवाली दृष्टि में बयावट् आसक्ति को छोड़ कर पर्याय-धर्म (प्रव्रज्या), दया और नील गया परीपहों में अभिरुचि ने ।

१२. अहिंसा, मध्य, अनौर्य, वल्लभ्य और अग्रिम्य—इन पाँच महाधर्मों को स्वीकार कर विज्ञान मुनि नीलगाय-उपदिष्ट धर्म का आनन्द करे ।

१३. सुमहाहित-उद्दिष्ट थाता भिक्षु मय जीवों के प्रति दयानुसन्धी रहे । वह धमा-भाव में कृपानो को महने माना, मयन और वृत्ताचारी हो । यह नायक योग का वर्जन करना हुआ विनश्य परे ।

१४. मुनि अपने वलायत की गोप्यर वालोंगित कामें करना हुआ राष्ट्र में विहरण करे । यह मिष्ट की भाँति भगवत् लक्षों में संश्रम्य न हो । यह युवचन गुन असम्य वचन न बोले ।

१५. संयमी मुनि कुवचनो की उपेक्षा करना हुआ परिग्रहण करे । प्रिय और अप्रिय सब कुछ महें । जो कुछ देने उसी की अभिलाषा न करे तथा पूजा और गर्हा की भी अभिलाषा न करे ।

१६. समार में मनुष्यों में जो अनेक अभिप्राय होते हैं वन्नु-एत्या वे भिक्षु में भी होते हैं । किन्तु भिक्षु उन पर अनुयायन करे और माधुपन में देव, मनुष्य अथवा तिर्यक्यन्त मध्यन्धी मय पैदा करनेवाले भौतण-भौतणम उपमर्ग उत्पन्न हों, उन्हें सहन करे ।

१७. जहाँ अनेक दुःखह परीपह प्राप्ति होते हैं, वहाँ बहुत सारे कायर लोग गिर हो जाते हैं । किन्तु भिक्षु उन्हें प्राप्त होकर व्यथित न बने, जैसे—मग्राम-जीर्ण (मोर्चे) पर नागराज व्यथित नहीं होता ।

१८. शीत, उष्ण, टीन, मन्द्यर, नृण-स्पर्श और विविध प्रकार के आतक जब देह का स्पर्श करे तब मुनि दान्ध भाव में उन्हें सहन करे, पूर्णजन कर्मों को क्षीण करे ।

१९. विचक्षण भिक्षु राग, द्वेष और मोह का सतत त्याग कर, वायु में मेरु की भाँति अकम्पमान होकर तथा आत्म-गुप्त बनकर परीपहों को सहन करे ।

२० पूजा में उन्नत और महा म अचनत म हनिशाना मरुपी मुनि उनमें निज न हो । अनिज्य रहन बाणा वह विरज सपथो आत्रव का र्शिकार कर निर्वाण मार्ग को प्राप्ति होता है ।

२१ जा मरति और रति को रहने बाणा, परिचय को छीन करने बाणा, अवर्तम्य के विरज रहन बाणा, अस्मिन्-स्मिन् करने बाणा तथा मयमवान् होता है । वह धिन्-दाव, समय और अकिपन हाजर परमाव-यन् में स्थित होता है ।

२२ बापी मुनि महावयम्बो अपिषो द्वारा आर्षीन, अनिज्य और बीज आदि के रहित लक्षण स्वामी का भवन कर तथा बाया स परीपहा का महान बरे ।

२३ मरुदान में ज्ञान प्राप्ति करने वाला महर्षी मुनि अनुतर घम-मलय का आचरण कर अनुतर ज्ञानवारी और वाम्बो हीजर अठरिज म भूर्व की भाँति वीप्तिमान् होता है ।

२४ समुद्रपाल मयम म मिश्रक और मरुत मुक्त हीजर, मृष्य और पाप शोभिका छीन कर तथा विद्याव नसाव प्रवाह का मनुज की भाँति तर कर अनुतराम-नानि (मौन) में गया है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।



## चाईसवाँ अव्ययन

### रथनेमीय

१. सोरियपुर नगर में राज-लक्षणां में युक्त वमुदेव नामक महान् ऋद्धिमान् राजा था ।
२. उसके रोहिणी और देवकी नामक दो भार्याएँ थीं । उन दोनों के राम और केशव—ये दो प्रिय पुत्र थे ।
३. सोरियपुर नगर में राज-लक्षणां से युक्त समुद्रविजय नामक महान् ऋद्धिमान् राजा था ।
४. उसके शिवा नामक भार्या थी । उसके भगवान् अरिष्टनेमि नामक पुत्र हुआ । वह लोकनाय एवं जितेन्द्रियों में प्रधान था ।
५. वह अरिष्टनेमि स्वर-लक्षणां में युक्त, एक हजार आठ शुभ-लक्षणां का धारक, गीतम गोत्री और व्याम वर्ण वाला था ।
६. वह वज्रऋषभ सहनन<sup>१</sup> और ममचतुरन्त्र संस्थान<sup>२</sup> वाला था । उसका उदर मछली के उदर जैसा था । केशव ने उसके लिए भार्या के रूप में राजीमती कन्या की मांग की ।
७. वह राजकन्या मुशील, मनोहर-चितवन वाली, स्त्री-जनोचित मर्व-लक्षणां से परिपूर्ण और चमकती हुई विजय जैसी प्रभा वाली थी ।

---

१. सहनन का अर्थ है—अस्थि-बन्धन । सुदृढ़तम अस्थि-बन्धन का नाम है—‘वज्रऋषभनाराच सहनन’ । विशेष व्याख्या के लिए देखें—उत्तराव्ययन (स-टिप्पण संस्करण) ।

२. संस्थान का अर्थ है—शरीर की आकृति । पालयी भार कर बैठे हुए जिस व्यक्ति के चारों कोण सम होते हैं, वह ‘ममचतुरन्त्र संस्थान’ है । विशेष व्याख्या के लिए देखें—उत्तराव्ययन (स-टिप्पण संस्करण) ।

८ उसके बिना उद्योग ने पशुन् अग्निमान् बामुदेव से कहा—“बुमार यहाँ आए तो मैं अपनी बम्बा दे सकता हूँ।”

९. अरिष्टनेमि को सब भीषणियों ने जल में गहकाया गया, शीतुक<sup>१</sup> और मगध किये गए, दिव्य बस्त्र-मुक्त गहकाया गया और आश्वरथ<sup>२</sup> से विभूषित किया गया।

१० बामुदेव के मतवाले ज्येष्ठ मन्त्रहस्ती<sup>३</sup> पर आठ अरिष्टनेमि मिर पर बुधमणि की भाँति बहुत मुनीमित हो रहा था।

११ अरिष्टनेमि ऊँचे छत्र-पावण से मुनीमित और दशारथ<sup>४</sup> से सर्वत्र परिचल था।

१२ यथाक्रम सगई ॥ चतुरंगिनी-मेना और वासा के मगध-स्त्री<sup>५</sup> विधवाएँ—

१३ ऐसी छत्रम अग्नि और छत्रम धृति के साथ वह इति-भुक्त<sup>६</sup> अपने भवन से जाता।

१४ मार्ग में आते हुए उसने जब से मंचल, बाढ़ी और पित्ररी में निवस, आप्तम मुनीत धानियों को देता।

१५ वे मरवाणम गया का श्राप के और मांवाहार के लिए आए जाय जाने के। उन्हें देखकर महाशत्रु अरिष्टनेमि के शरण से इस प्रकार कहा—

१६ “कुन की चाह रखने वाले वे मग प्राणी किमनित् इन बाढ़ी और पित्ररी में रोके हुए हैं?”

१७ शरण से कहा—“वे मग प्राणी तुम्हारे विवाह-कार्य में बहुत जनों को बिलाने के लिए यहाँ रोके हुए हैं।”

१८ शरण का बहुत जीवा के मग का प्रतिपादक मगध बुध कर जीवा के प्रति मगधन उस महाशत्रु अरिष्टनेमि ने बोला—

१९ “यदि मेरे निमित्त से इन बहुत से जीवों का मग होने वाला है तो यह परतोष मेरे लिए अस्वर नहीं होना।”

१ शीतुक—विवाह आदि कलक-कार्यों में किया जाने वाला मेघ-चार।

२ मगधहस्ती—ज्येष्ठ हस्ती, जिसकी ध्वज से दूसरे हस्ती भाग जाने हैं या निर्ध्वज हो जाते हैं।

३ दशारथ-दस गावों का सङ्ग। देवों—उत्तराध्याय (सदित्यम आश्वरथ)।

४ इति-भुक्त—इतिभुक्त का प्रमाण पुराण।

२०. उस महायशस्वी अरिष्टनेमि ने दो कुण्डल, तरघनी और सारे आभूषण उतार कर सारथि को दे दिये ।

२१. अरिष्टनेमि के मन में जैसे ही निष्क्रमण (बीधा) की भावना हुई, वैसे ही उसका निष्क्रमण-महोत्सव करने के लिए औचित्य के अनुसार देवता आए । उनका समस्त वैभव और उनकी परिपक्वता उनके साथ थी ।

२२. देव और मनुष्यों में परिवृत्त भगवान् अरिष्टनेमि त्रिविक्रान्त में आरुढ़ हुआ । द्वारका में चल कर वह रैवतक (गिरनार) पर्वत पर स्थित हुआ ।

२३. अरिष्टनेमि सहस्राभूषण उद्यान में पहुँच कर उत्तम त्रिविक्रान्त में नीचे उतरा । भगवान् ने एक हजार मनुष्यों के साथ चित्रानक्षत्र में निष्क्रमण किया ।

२४. समाहित अरिष्टनेमि ने मुग्ध में मुवासित, सुकुमार और घुँघराहे वालों का पचमुष्टि से अपने-आप तुरन्त लोच किया ।

२५. वासुदेव ने लुप्त-केश और जितेन्द्रिय भगवान् से कहा—“दमोदर ! तुम अपने इच्छित-मनोरथ को योद्धा प्राप्त करो ।

२६. ‘‘तुम ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, क्षान्ति और सुखित में बढ़ो ।’’

२७. इस प्रकार राम, केशव, दयार तथा दूमेरे बहुत से लोग अरिष्टनेमि को वन्दना कर द्वारकापूरी लौट आए ।

२८. अरिष्टनेमि के प्रव्रज्या की बात को सुन कर राजकन्या राजीमती अपनी हँसी, खुशी और आनन्द को खो बैठी । वह शोक में स्तब्ध हो गई ।

२९. राजीमती ने सोचा—मेरे जीवन को धिक्कार है, जो अरिष्टनेमि के द्वारा परित्यक्त है । अब मेरे लिए प्रव्रजित होना ही श्रेय है ।

३०. धीरे एवं कृत-निश्चय राजीमती ने कूर्च व कंधी से सँवारे हुए भारे जैसे काले केशों का अपने-आप लूचन किया ।

३१. वासुदेव ने लुप्त-केशा और जितेन्द्रिय राजीमती से कहा—“हे कन्ये ! तू घोर ससार-सागर का अतिशीघ्रता से पार प्राप्त कर ।’’

३२. शीलवती एवं बहुश्रुत राजीमती ने प्रव्रजित हो कर द्वारका में बहुत स्वजन और परिजन को प्रव्रजित किया ।

३३. वह रैवतक पर्वत पर जा रही थी । बीच में वर्षा से भीग गई । वर्षा हो रही थी, अंधेरा छाया हुआ था, उस समय वह गुफा में ठहर गई ।

३४) चीवरों का मुकाबले के लिए फैलाती हुई राजीमती को रखनेमि ने जानकर में देखा । वह मग्न चित्त हो गया । बाह में राजीमती ने भी उस देव लिया ।

३५) एकान्त में उस संवत्ति का देव वह करी और दोनों मुखाभा के गुच्छन से बल को हाँक कर चारों ओर बैठ गई ।

३६) उस समय समुद्रविषय के जयज राज-गुन रखनेमि ने राजीमती को भीतर और प्रवर्धित देव कर वह बचन कहा—

३७) "मरे ! मैं रखनेमि हूँ । मुझे ! आरुणाविनि ! तू मुझे स्वीकार कर । तुझ ! तुझे कोई पीडा नहीं होगी ।

३८) "आ, हम भावें भावें । निर्विकल ही समुद्र-जीवन बहुत पुनः है । मुक्त जानी हा, फिर हम जिन-मान पर चले ।"

३९) रखनेमि को तबम में उल्लाहलीन और भावों से पराजित देव कर राजीमती अभ्यास नहीं हुई । उसने वहीं अपने घरीर की बत्तों से हाँक लिया ।

४०) नियम और वल में मुक्तिन राजकर-बन्दा राजीमती ने जानि, कुल और पील भी रखा करते हुए रखनेमि ने कहा—

४१) "यदि तू रूप से बंधन है, नास्तिक से नल्लूवर है और तो क्या, यदि तू भाषाएं बोल है तो भी मैं तुझे नहीं चाहती ।

"(अगमन कुछ न उल्लास सब उल्लास, विकराल, भूमधिल भूमि में प्रकाश कर जात है परन्तु—जीने के लिए—कमन किए हुए विष को वापिस पीने की इच्छा नहीं करते ।)

४२) "हे यम-कामिन् ! चिरात है तुझे । जो तू जोषी-जीवन के लिए बनी हुई बलु की पीने की इच्छा करता है । इधरे तो तरा बरना भय है ।

४३) "मैं मात्र राज की पुत्री हूँ और तू अन्धक-हृदय का पुत्र । हम कुछ में गमन सर्व की तरह न हूँ । तू सिपर मन हाकर तबम का पासन कर ।

४४) "यदि तू स्त्रियों की देव उनके प्रति इस प्रकार राग भाव करेगा तो बापु से माह्न हट की तरह अस्तिताया हो जायेगा ।

४५) "जैम गारात और भाण्डराय भावों और किराने के भ्रामी नहीं होत, इसी प्रकार तू भी भामन्य का स्वामी नहीं होत ।

"(तू जोष और मान का निवृत्त कर । भावा और लोभ पर सब प्रकार से विषय पा । इन्द्रियों की मगने अधीन बना । अपने घरीर का उपमहार कर—उम अभावार से निवृत्त कर ।)"

४६. संयमिनी के इन गुणवित्त गतनों को गुन कर, रयनेमि पमं मे वंसे ही स्थिर हो गया, जैसे अकुल मे हावी होता है ।

४८. यह मन, वचन और वाया मे गुप्त, तिलेन्द्रित गया दृश्यनी हो गया । उमने फिर आजीवन निश्चय भाग मे भ्रामण का पालन किया ।

४८. उग्र-नप का आचरण कर ये दोनों (रात्रीमनी और रयनेमि) केवल दृष्ट और मय कमों गो गया अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त हुए ।

४९. मम्बुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण पुरुष ऐसा ही करते हैं—ये भोगों मे घंसे ही दूर हो जाने हैं, जैसे कि पुरुषोत्तम रयनेमि हुआ ।

—ऐसा मैं कहना हूँ ।

## तेईसवाँ अध्याय केशि-गौतमीय

१ पादव नाम के जिन हुए । वे बहन्, लोच-वृद्धि, मधुदायमा, मधन, मम-दीप क प्रवर्ण और चीनराज के ।

२ ताक को प्रकाशित करने वाल उन मनवान् पादव के केही नामक गिण्य हुए । वे महान् यक्ष्मी, बिछा और भाचार के पारगामी कुमार-अमन के ।

३ वे अर्धजि ज्ञान और धुन-मन्त्र के तत्त्वों को जानते के । वे गिण्य-राज न परिहृत हाकर कामानुष्ठान विहार करते हुए भावस्त्री में आए ।

४ उन मगर के पारव नाम 'सिबुन' उद्यान था । वही जीव-मनु रहित शम्पा (मवान) और मन्त्रार(आमन) मकर के छहर गए ।

५ उन समय मनवान् मयमान विहार कर रहे थे । वे धर्म-दीप के प्रवर्ण, जिन और समूचे लोच न विभुत के ।

६ ताक को प्रकाशित करने वाले उन मनवान् मयमान के गौतम नाम क गिण्य के । वे महान् यक्ष्मी, मनवान् तथा बिछा और भाचार के पारगामी के ।

७ वे बारह भंवा की जानने वाले और बुद्ध थे । गिण्य-राज के परिहृत हाकर कामानुष्ठान विहार करते हुए वे भी भावस्त्री में आ गए ।

८ उन मगर के पारव नाम में 'लोच्छन' उद्यान था । वही जीव-मनु रहित शम्पा और मन्त्रार मेकर के छहर गए ।

९ कुमार-अमन केही और महान् यक्ष्मी गौतम—दीनों वही विहार कर रहे थे । वे मातम-मीन और मन की मयाधि के मन्त्र के ।

१० उन राजा के गिण्य-मधु मयन, लक्ष्मी बुधवान् और चायो के । वही उनके मन में सब तक उत्पन्न हुआ ।

११. यह हमारा धर्म कैसा है और यह उनका धर्म कैसा है ? आचार-धर्म की व्यवस्था यह हमारी कैसी है और वह उनकी कैसी है ?

१२. जो चातुर्याम-धर्म है, उसका प्रतिपादन महामुनि पार्श्व ने किया है और यह जो पच-शिक्षात्मक-धर्म है, उसका प्रतिपादन महामुनि वर्धमान ने किया है ।

१३. महामुनि वर्धमान ने जो आचार-धर्म की व्यवस्था की है वह अचेलक<sup>१</sup> है और महामुनि पार्श्व ने जो यह आचार-धर्म की व्यवस्था की है, वह अंतरीय और उत्तरीय वस्त्र वाली है । जबकि हम एक ही उद्देश्य में चले हैं तो फिर इस भेद का क्या कारण है ?

१४. उन दोनों—केशी और गौतम ने अपने-अपने शिष्यों की वितर्कणा को जान कर परस्पर मिलने का विचार किया ।

१५. गौतम ने विनय की मर्यादा का औचित्य देखा । केशी का कुल ज्येष्ठ था, इसलिए वे शिष्य-सघ को साथ लेकर त्रिदुक वन में चले आए ।

१६. कुमार-श्रमण केशी ने गौतम को आए देख कर सम्यक् प्रकार से उनका उपयुक्त आदर किया ।

१७. उन्होंने तुरत ही गौतम को बैठने के लिए प्रामुक पयाल<sup>२</sup> और पांचवीं कुण्ड नाम की घास दी ।

१८. चन्द्र और सूर्य के समान शोभा वाले कुमार-श्रमण केशी और महान् यशस्वी गौतम—दोनों बैठे हुए योगित हो रहे थे ।

१९. वहाँ कौतूहल को दूँढ़ने वाले दूसरे-दूसरे सम्प्रदायों के अनेक माधु आए और हजारों-हजार गृहस्थ आए ।

२०. देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर और अदृश्य भूतों का वहाँ मेला-सा हो गया ।

२१. 'हे महाभाग ! मैं तुम्हें पूछता हूँ—केशी ने गौतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गौतम ने इस प्रकार कहा—

१. आचार-धर्म—वेप-धारण आदि घाहू किया-कलाप ।

२. भगवान् महावीर ने अचेल (निर्वस्त्र) या केवल अल्पमूल्य के सफेद वस्त्र वाले धर्म का निरूपण किया । भगवान् पार्श्वनाथ ने सन्तुत्तर धर्म का निरूपण किया । अन्तर का अर्थ है—अन्तरीय (अधोवस्त्र) और उत्तर का अर्थ है—उत्तरीय (ऊपर का वस्त्र) ।

३. पयाल—चार प्रकार के अनाजों के डठल ।

२२. 'अनि ! जैसी इच्छा हो वैसे पूछो।' कभी ने प्रश्न करने की अनुज्ञा पाकर गीतम ने इस प्रकार कहा—

२३. 'आ चातुर्वर्ण्य-धर्म । उसका प्रतिपादन महामुनि पार्ष्णि ने किया है और यह जो सब सिद्धांतक धर्म है, उसका प्रतिपादन महामुनि वर्धमान ने किया है।

२४. 'एक ही उद्देश्य के लिए हम चले हैं तो फिर इस भेद का क्या कारण है ? मेधाविन् ! जब के इन दो प्रकारों में तुम्हें संदेह कैसे नहीं होगा ?

२५. 'कौन के कहते-कहते ही गीतम ने इस प्रकार कहा—'धर्म के परम अर्थ की, जिसमें सत्त्वा का विनिरूपण हुआ है, अमीना प्रज्ञा से हाज़ी है।

२६. 'यहूने तीर्थंकर के साधु ऋतु और बड़ हाते हैं। अग्नि तीर्थंकर के साधु बड़ और बड़ हाते हैं। बीच में तीर्थंकर के साधु ऋतु और प्राण होने हैं, इसलिए सब के दो प्रकार किए हैं।

२७. 'यहूने तीर्थंकर के साधुओं के लिए मुनि के आचार की ब्याख्या ग्रहण कर लना मठिन है। अग्नि तीर्थंकर के साधुओं के लिए मुनि के आचार का पालन करना मठिन है। मध्यवर्ती तीर्थंकर के साधु उस ब्याख्या ग्रहण कर लते हैं और उसका पालन भी मध्यवर्ती से करते हैं।

२८. 'गीतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा। तुमने मेरे इस सत्य को दूर किया है। मुझे एक दूसरा सत्य भी है। गीतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतनामा।

२९. 'महामुनि वर्धमान ने जो आचार सब की व्यवस्था की है वह अत्यन्त है और महान् यशस्वी पावन ने जो यह आचार-धर्म की व्यवस्था की है वह अमरीय और उत्तरीय बल वाली है।'

३०. 'एक ही उद्देश्य के लिए हम चले हैं तो फिर इन भेद का क्या कारण है ? मेधाविन् ! जब के इन प्रकारों में तुम्हें संदेह कैसे नहीं होगा ?'

३१. 'कौन के कहते-कहते ही गीतम ने इस प्रकार कहा—'विज्ञान से मेधाविन् जान कर ही सब के साधना—उपकरणों की अनुमति दी गई है।

३२. 'लोगों को यह प्रतीति हो कि वे साधु हैं इसलिए नाना प्रकार के उपकरणों की परिकल्पना की गई है। जीवन-वाशा का निमाना और 'मैं साधु हूँ, ऐसा ध्यान आते रहना—वेच धारण के इन साधुओं के प्रयोजन हैं।

३३. 'यदि भोग की वास्तविक साधना की प्रतिज्ञा हो तो निश्चय-दृष्टि में उसका सामन ज्ञान, दान और चारित्र्य ही है।'

३४. 'गीतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा। तुमने मेरे सत्य को दूर किया है। मुझे एक दूसरा सत्य भी है। गीतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतनामा।



३५. 'गीतम ! तू हज़ारों-हज़ारों शत्रुओं के बीच खड़े हो । वे तुम्हें जीतने के लिए तुम्हारे सामने आ रहे हैं । तुमने उन्हें कैसे पराजित किया है ?'

३६. 'एक को जीत लेने पर पाँच जीते गए । पाँच को जीत लेने पर दस जीते गए । दसों को जीत लेने पर मैं सब शत्रुओं को जीत लेता हूँ ।'

३७. 'शत्रु कौन कहलाता है?'—केशी ने गीतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गीतम इस प्रकार बोले—

३८. 'एक न जीती हुई आत्मा ही शत्रु है । कषाय और द्वन्द्वियाँ शत्रु हैं । मुने ! मैं उन्हें जीत कर नीति के अनुसार विहार कर रहा हूँ ।'

३९. 'गीतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । तुमने मेरे मशय को दूर किया है । मुझे एक दूसरा मशय भी है । गीतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।'

४०. 'इस ससार में बहुत जीव पाश से बन्धे हुए दीख रहे हैं । मुने ! तू पाश से मुक्त और पवन की तरह प्रतिबन्ध-रहित होकर कैसे विहार कर रहे हो ?'

४१. 'मुने ! उन पाशों को सर्वथा काट कर, उपायो से विनष्ट कर मैं पाश-मुक्त और प्रतिबन्ध-रहित होकर विहार करता हूँ ।'

४२. 'पाश किसे कहा गया है ?'—केशी ने गीतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गीतम इस प्रकार बोले—

४३. 'प्रगाढ़ राग-द्वेष और स्नेह भयंकर पाश हैं । मैं उन्हें काट कर मुनि-धर्म की नीति और आचार के साथ विहार करता हूँ ।'

४४. 'गीतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । तुमने मेरे इस मशय को दूर किया है । मुझे एक दूसरा मशय भी है । गीतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।'

४५. 'गीतम ! हृदय के भीतर उत्पन्न जो लता है जिसके विष-तुल्य फल लगते हैं, उसे तुमने कैसे उखाड़ा ?'

४६. 'उस लता को सर्वथा काट कर, जड़ में उखाड़ कर मैं मुनि-धर्म की नीति के अनुसार विहार करता हूँ, इसलिए मैं विष-फल के खाने से मुक्त हूँ ।'

४७. 'लता किसे कहा गया है ?'—केशी ने गीतम से कहा । केशी के कहते-कहते ही गीतम इस प्रकार बोले—

४८. 'भव-तृष्णा को लता कहा गया है । वह भयंकर है और उसमें भयंकर फलों का परिपाक होता है । महामुने ! मैं उसे उखाड़ कर मुनि-धर्म की नीति के अनुसार विहार करता हूँ ।'

४८. 'गीतम् ! उलम् है गुह्यारी प्रजा । मुझने मेरे इन मंगल को दूर किया है । मुझे एक दुनरा मंगल भी है । गीतम् ! उसके विषय में श्री गुरु मुझे बतलावो ।

२० गीतम् ! चार अग्निज्वा प्रज्वलित हो रही हैं आसरीर में गृही गृही मनुष्य का जन्म रही है । उन्हें मुझने बने बुझाया ?'

२१ महादय मे उग्रमय निर्मल मे मय अभी में उलम् जन मकर में उन्हें भीलना रागा है । वे सीधो हुई अग्निज्वा मुझे गृही जन्मानी ।

२२ 'अग्नि जित्ने कहा गया है ?'—करी मे गीतम् मे कहा । केरी के कहने कहने ही गीतम् इन प्रचार जाने—

२३ 'कथायां को अग्नि कहा गया है । धुन हीन और मय मय जन्म है । धुन की चारा मे आहुत विग जाने पर निगम्य करी गई वे मुझे गृही जन्मानी ।

२४ गीतम् ! उलम् है गुह्यारी प्रजा । मुझने मेरे इन मंगल को दूर किया है । मुझे एक दुनरा मंगल भी है । गीतम् ! उसके विषय में श्री गुरु मुझे बतलावो ।

२५ 'मह माग्निय, मयकर, दुष्ट मय सीध रहा है । गीतम् ! गुरु उन पर को दूरा है । वह मुझे उग्रमय में बने गृही के जाना ?'

२६ 'मैंने इसे धुन की मंगल मे सीध लिया है । यह अब रागार्ण की और हीनता है तब में इन पर राग मया मया है । इमनिय मेरा मय उग्रमय को गृही जन्म माग में ही जन्मना है ।'

२७ 'अग्नि जित्ने कहा गया है ?'—करी मे गीतम् मे कहा । केरी के कहने-कहने ही गीतम् इन प्रचार जाने—

२८ 'यह जा माग्निय मयकर, दुष्ट मय सीध रहा है वह मय है । उमे में अभी अग्नि मयने अग्निम रचता है । यम जिना डारा वह उलम् अग्नि का मय हा गया है ।'

२९ 'गीतम् ! उलम् है गुह्यारी प्रजा । मुझने मेरे इन मंगल का दूर किया है । मुझे एक दुनरा मंगल भी है । गीतम् ! उसके विषय में श्री गुरु मुझे बतलावो ।'

३० 'जो म गुमाय बहुत है जिन् पर अपने जाने लाम मटक जाने है । गीतम् ! माग में अपने हुए गुरु बने गृही मटकने ?'

३१ 'जा माग मे अपने है और का उग्रमय म अपने है । वे मय मुझे माग है । धुन । इमनिय में गृही मटक रहा है ।'

६२. 'मागं किने कहा गया है ?'—केशी ने गीतम ने कहा । केशी के कहने-कहने ही गीतम इस प्रकार बोले—

६३. 'जो कुप्रवचन के प्रती है, वे सब सम्मार्ग की ओर जा रहे हैं । जो राग-द्वेष को जीतने वाले जिन ने कहा है, वह सम्मार्ग है, क्योंकि वह सबसे उत्तम मार्ग है ।'

६४. 'गीतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । तुमने मेरे इस मंश को दूर किया है । मुझे एक दूसरा मंश भी है । गीतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।'

६५. 'मुने ! महान् जल-प्रवाह के वेग ने बहते हुए जीवों के लिए तुम शरण, गति, प्रतिष्ठा और द्वीप जिसे मानते हो ?'

६६. 'जल के मध्य में एक लम्बा-चौड़ा महाद्वीप है । वहाँ महान् जल-प्रवाह की गति नहीं है ।'

६७. 'द्वीप जिसे कहा गया है ?'—केशी ने गीतम ने कहा । केशी के कहने-कहने ही गीतम इस प्रकार बोले—

६८. 'जरा और मृत्यु के वेग ने बहते हुए प्राणियों के लिए घमें द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है ।'

६९. 'गीतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । तुमने मेरे इस मंश को दूर किया है । मुझे एक दूसरा मंश भी है । गीतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।'

७०. 'महा प्रवाह वाले समुद्र में नौका नीच गति में चली जा रही है । गीतम ! तुम उसमें आरुढ़ हो । उस पार कैसे पहुँच पाओगे ?'

७१. 'जो छेद वाली नौका होती है, वह उम पार नहीं जा पाती । किन्तु जो नौका छेद वाली नहीं होती, वह उम पार चली जाती है ।'

७२. 'नौका किने कहा गया है ?'—केशी ने गीतम ने कहा । केशी के कहने-कहने ही गीतम इस प्रकार बोले—

७३. 'शरीर को नौका, जीव को नाविक और मंमार को समुद्र कहा गया है । महान् मोक्ष की एषणा करने वाले उसे तैर जाते हैं ।'

७४. 'गीतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रज्ञा । तुमने मेरे इस मंश को दूर किया है । मुझे एक दूसरा मंश भी है । गीतम ! उसके विषय में भी तुम मुझे बतलाओ ।'

७५. 'लोगों को अन्ध बनाने वाले घोर निमिर में बहुत लोग रह रहे हैं । इस समूचे लोक में उन प्राणियों के लिए प्रकाश कौन करेगा ?'

७६ 'समूचे लोक में प्रकाश करने वाला एक विषय मान्यता है। यह समूचे लोक में प्राप्ति के लिए प्रकाश करता है।

७७ 'मानु किसे कहा गया है?'—कभी ने भीतम से कहा। कभी के कहते-कहते ही भीतम इस प्रकार बोले—

७८ 'जिसका मतलब होता है कुरा है। जो भव्य है वह बहुत-सी बातों पर समूचे लोक के प्राप्ति के लिए प्रकाश करता है।

७९ 'भीतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रथा। तुम्हें यह हम समय का दूर किया है। तुम्हें एक दूसरा समय भी है। भीतम ! हमारे विषय में भी तुम मुझे बताओ।

८० 'मुझे ! सारीरिक और मानसिक दुःखों में पीड़ित हुए प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ, शिव और अनायास स्वामि किसे मानते हैं ?'

८१ 'लोक के अग्रजान में एक ऐसा आदर स्वामि है जो बहुत बाना बहिन है और जहाँ नहीं है—जरा, मृत्यु व्याधि और वयस।'

८२ 'क्या किसे कहा गया है ? —कभी ने भीतम से कहा। कभी के कहते-कहते ही भीतम इस प्रकार बोले—

८३ 'जो निर्वाण है, जो अनायास, शिव, अनायास, श्रेष्ठ, शिव और अनायास है, जिस महान् की एवमा कल वाक प्राप्ति करते हैं,

८४ 'यह प्रथा का अन्त करने वाला मुनि जिस प्राप्ति पर लोक से मुक्त हो जाते हैं, जो लोक के निष्ठ में आत्मनः रूप में अवस्थित हैं, जहाँ बहुत बाना बहिन है, उसे मैं स्वामि कहता हूँ।'

८५ 'भीतम ! उत्तम है तुम्हारी प्रथा। तुम्हें यह हम समय का दूर किया है। है अनायास ! है अनायास-महान् ! मैं तुम्हें अस्फुट करता हूँ।

८६-८७ इस प्रकार समय दूर हो जाने और अनायास बान केरी ने महान् घासों भीतम का निर से अभिन्न कर अनायास-महान् बान का मानना से स्वीकार किया। के पुनः मार्ग से अनायास पश्चिम मार्ग में प्रविष्ट हुए।

८८ उस वन में होने वाला कभी और भीतम का सतत मिलन पुनः और लोक का उन्मुख करने वाला और महान् प्रवाहन बान अर्थात् विविध करने वाला था।

८९ 'जिनकी प्रति-विधि के जारीपरिपक्व को सन्नाह दृष्टा और यह समाग पर उपस्थित हुई, के परिपक्व द्वारा प्रयत्न अनायास कभी और भीतम प्रमाण है।

—येमा में कहता हूँ।

## चीवीसवाँ अध्याय

### प्रवचन-माता

१. आठ प्रवचन-माताएँ हैं—गमिनि और गुप्ति । गमिनिवाँ पाँच और गुप्तिवाँ तीन ।
२. दीर्घा-गमिनि, भावा गमिनि, गूढज्ञा-गमिनि, आराज-गमिनि, उषार-गमिनि, मनो-गुप्ति, यचन-गुप्ति और आठवीं वाय-गुप्ति है ।
३. ये आठ गमिनिवाँ मध्ये में बँटी गई हैं । इनमें जिन-भादिन दादनाहू रूप प्रवचन गमाया हुआ है ।
४. गयमी मुनि आत्मबन, काल, मार्ग और यगता—इन चार चारणों से गन्धुद गति में बने ।
५. इनमें दीर्घा का आत्मबन ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य है । उसका काल दिवस है और उदाय का उर्जन करना उगना मार्ग है ।
६. द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में बसना चार प्रकार की कही गई है । यह मैं कह रहा हूँ, सुनो ।
७. द्रव्य में—धातुओं में देने । क्षेत्र में—युग-मात्र की भूमि को देने । काल से—जब तक चले तब तक देने । भाव में—उपद्रुत (गमन में वृत्ति) रहे ।

- 
१. प्रवचन-माता—पाँच गमिनियों और तीन गुप्तियों—इन आठों में सारा निषेध प्रवचन समा जाना है इसलिए यद्यपि इन आठों से प्रवचन का प्रमय होता है इसलिए इन्हें प्रवचन-माता कहा जाना है ।
  २. समितियाँ केवल पाँच ही हैं किन्तु यहाँ आठ समितियों का उल्लेख हुआ है । तीन गुप्तियों की समिति के अतर्गत मानने का कारण यह है कि गुप्तियाँ केवल निवृत्त्यात्मक ही नहीं होतीं किन्तु प्रवृत्त्यात्मक भी होती हैं । इसी अपेक्षा से उन्हें समिति कहा गया है ।
  ३. युग-मात्र—शरीर या गाड़ी के जुए जितनी लंबी ।

८ डि-ड्या के विषया और पाँच प्रकार के स्वाध्याय का वजन कर, ईशों में लगभग हा उमे प्रभुत्व बना उपयोग पुनर्कथन ।

९ - भोज, धान, माया, स्नेह, हास्य, मय, वाचासता और विषया क प्रति सावधान रहे—इनका प्रयोग न करे ।

१० प्रजावान् मुनि इन आठ स्वाना का वजन कर महासमय निरवय और परिमित कथन करते ।

११ बाहार, उपवि और ध्या के विषय न भवेयता, सहर्षयता और परिभार्यता—इन तीन का विरोधन करे ।

१२ यतनाधिक यति प्रथम एवमा (नवयता-एवमा) में उत्तम और उत्पादन—दोनों का साधन करे । दूसरी एवमा (बहुन-एवमा) न एवमा (बहुन) सम्बन्धी दोषों का धोषन करे और परिभार्यता न दोष-बहुन का धोषन करे ।

१३ मुनि ओष उपवि<sup>१</sup> और औपग्रहिक-उपवि<sup>२</sup>—दोनों प्रकार के उपकरणों का लेने और रखने में इन विधि का प्रयोग करे—

१४ तथा मध्यम-महत्त और यननागीन यति दोनों प्रकार के उपकरणों का यन्त्र में प्रतिनयन कर तथा रमोहरण आदि में प्रयोजन कर उन्हें ले और रखे ।

१५ उच्चार, प्रत्ययन, हौम्य नाक का धौन, धौन बाहार, उपवि, गरीर या उगी प्रकार की दूसरी कोई उत्तम करने योग्य यन्त्र का उपयुक्त स्थिति में उपकरण करे ।

१६ स्थिति का प्रकार के होते हैं—

१ अनाराध-अन्योक्त—जहाँ नीचों का आवागमन न हो, वे दूर में भी न दीलने हों ।

२ अनाराध-अन्योक्त—जहाँ नीचों का आवागमन न हो किन्तु वे दूर में दीलने हों ।

३ आवाग-अन्योक्त—जहाँ लोच का आवागमन हो किन्तु वे दूर में न दीलने हों ।

१ संयोजना, मन्त्रमात्र, अन्तर बुद्ध और कारण—ये चार धौन हैं ।

२ ओष-उपवि—स्वाधी रूप में रखा जाने वाला सामान्य उपकरण ।

३ औपग्रहिक उपवि—विशेष कारण बना रखा जाने वाला उपकरण ।

४. आगमन-मंजोरु—जहाँ लोगों का आगमन भी हो और वे द्वार में दिखने भी हों ।

१७. जो स्थण्डिल अनामान-अनंदोरु, हमारे के लिए अनुमानागामी, मन, पाल या शरण रहित, कुछ समय पहले ही निर्जोष बना हुआ -

१८. कम से कम एक लाख विष्णुन तथा नीचे से चार अंगुल की निर्जोष पत्र वाद्या, गाय आदि में दूर, तिन रहित और वन प्राणी तथा बीजों में रहित हों—उमंग उच्चार आदि का उमंग करें ।

१९. ये पाँच सामानियाँ मन्त्र में बड़ी गई हैं। यहाँ में प्रमत्तः भीन मुनियों कहेंगे ।

२०. गत्या, नृपा, मन्त्यानृपा और नीची अमत्यानृपा—एक प्रकार मनों-मुनि के चार प्रकार हैं ।

२१. यतनाशील पनि मरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान मन का निवर्तन करे ।

२२. गत्या, नृपा, मन्त्यानृपा और अमत्यानृपा—एक प्रकार यवन-मुनि के चार प्रकार हैं ।

२३. यतनाशील पनि मरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान यवन का निवर्तन करे ।

२४. यतनाशील पनि धैर्य, मेहन, उन्नत-धन-धन करने और इन्द्रियों के व्यापार में—

२५. मरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान काया का निवर्तन करे ।

२६. ये पाँच सामानियाँ चात्रि की प्रवृत्ति के लिए हैं और तीन मुनियों सब अशुभ विषयों से निवृत्ति करने के लिए हैं ।

२७. जो पंडित मुनि इन प्रवर्तन-मानाओं का सम्यक् आचरण करता है, वह भीष्ट ही सर्व समार में मुक्त हो जाना है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## पञ्चीसवीं अध्याय

### यज्ञीय

- १ बाह्य कृष्ण में उत्पन्न एक महान् यमसी बिज बा । वह जीव महारक्त यज्ञ में मगा रहता था । जगत्ता नाम का जयघोष ।
- २ वह इन्द्रिय-समुद्र का निरुद्ध करने वाला नाम-भाभी महामुनि ही गया । एक गाँव न दूम्ने गाँव भाठा हुआ यज्ञ बाह्यपक्षी पूरी पहुँच गया ।
- ३ वाराणसी के बाहर मनोरम उद्यान में प्रानुक्त छाया और बिछीना निकर बही रहा ।
- ४ उसी समय जब पूरी में वहाँ का जानने वाला विजयघोष नाम का बाह्य यज्ञ करता था ।
- ५ वह जयघोष मुनि एक नाम की उपस्था का वारता करने के लिए विजयघोष के यज्ञ में बिना लेने को उपस्थित हुआ ।
- ६ यज्ञ-कर्त्ता ने वही उपस्थित हुए मुनि को विषय की जाया में कहा—  
'बिना ! तुम्हें बिना नहीं दूंगा और कहीं बाचना करो ।
- ७-८. 'हे बिना ! वह लवके द्वारा अनिश्चित मान्य उन्हीं की देना है जो बिना की जानने वाले बिज हैं यज्ञ के लिए या बिज हैं, जो वर के ग्यातिव जाति छाही अर्गी' को मान्य मान है जो जय-वाल्मी के वारवाभी है जो अयना और वर का उद्धार करने में मग्न है ।'
- ९ वह उत्तम जय (याज्ञ) की वनेपना करने वाला महामुनि वही यज्ञकर्त्ता के द्वारा प्रतिषेध दिए जाने पर न रुष्ट ही हुआ और न मुद्र ही ।
- १० न जग्न के लिए न यज्ञ के लिए और न किसी जीवन निर्बाह के मायन के लिए बिन्नु उन बाह्यों को विमुक्ति के लिए मुनि ने इस प्रकार कहा—

---

१ वेद के हनु जय मे हैं—विज्ञा वत्स, व्याकरण, विज्ञान छंद और व्योमिव ।



११. "तू वेद के मुग को नहीं जानता। यज्ञ का जो मुग है, उसे भी नहीं जानता। नक्षत्र का जो मुग है और धर्म का जो मुग है, उसे भी नहीं जानता।

१२. "जो अपना और पर का उद्धार करने में मग्न है, उन्हें तू नहीं जानता। यदि जानता है तो यत्ना।"

१३. मुनि के प्रश्न का उत्तर देने में अपने को अनमय माने हुए द्विज ने परिपक्व महिन हाथ जोड़ कर उम महापुनि ने पूछा —

१४. "तुम कहो, वेदों का मुग क्या है? यज्ञ का जो मुग है वह तुम्हीं बतलाओ। तुम कहो, नक्षत्रों का मुग क्या है? धर्मों का मुग क्या है, तुम्हीं बतलाओ।

१५. "जो अपना और पर का उद्धार करने में मग्न है (उन्को विषय में तुम्हीं कहो)। हे माधु ! यह मुझे सारा मंग्य है, तुम मेरे प्रश्नों का समाधान दो।"

१६. "वेदों का मुग अग्निहोत्र है, यज्ञों का मुग यज्ञार्थी है, नक्षत्रों का मुग चन्द्रमा है और धर्मों का मुग काश्यप—ऋषभदेव है।

१७. "जिन प्रकार चन्द्रमा के सम्मुख ग्रह आदि हाथ जोड़े हुए, वन्दना-नमस्कार करते हुए और विनीत भाव में मन का हरण करने हुए रहते हैं उसी प्रकार भगवान् ऋषभ के सम्मुख सब लोग रहते थे।

१८. "जो यज्ञ-वादी हैं वे ब्राह्मण की नम्रदा—विद्या में अनभिज्ञ हैं। वे बाहर में स्वाध्याय और तपस्या में उसी प्रकार ढँके हुए हैं जिस प्रकार अग्नि रात्र में ढँकी हुई होती है।

१९. "जिसे कुशल पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है, जो अग्नि की भाँति नदी लोक में पूजित है, उसे हम कुशल पुरुष द्वारा कहा हुआ ब्राह्मण कहते हैं।

२०. "जो जाने पर आसक्त नहीं होता, जाने के समय शोक नहीं करता, जो आर्य-वचन में रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

२१. "अग्नि में तपा कर शुद्ध किए हुए और घिमे हुए मोने की तरह जो विशुद्ध है तथा राग-द्वेष और मय में रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

"(जो तपस्वी है, कृश है, दान्त है, जिसके माम और शोणित का अपचय हो चुका है, जो सुव्रत है, जो गान है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।)

२२. "जो अस और म्यावर जीवों को नलीभाँति जान कर मन, वाणी और शरीर से उनकी हिंसा नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

२३ "ओ कोच, हास्य, लोभ या भय के कारण अमत्य नहीं बोलना उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

२४ "जा सभित या अनित कोई भी पदार्थ, बौद्ध या अधिक स्थिना ही क्यों न हो, उनके अधिकारी के दिए बिना नहीं सत्ता उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

२५. "जा देव मनुष्य और त्रियम्ब संबंधी मनुष्य का मन, भयम और काया से सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

२६ "जिन प्रकार जल में उत्पन्न हुआ कमल जल में लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार नाम धाम के बाधाहरण न उत्पन्न हुआ या मनुष्य उसमें लिप्त नहीं होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

२७ "जा मानुष नहीं है जो निर्दोष विज्ञान जीवन का निवाह करता है, जो पुष्ट-व्यापक है जो अविभक्त है, जो पुष्टियों में अनासक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

"(जो पूव-अपीयो, प्राप्ति जनों की क्षासक्ति और बांधवों को छोड़ कर उनमें आसक्त नहीं होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।)

२८ "जिनके पिता-पुत्र पशुओं की बलि के लिए यज्ञ स्थलों में बांधे जाने के अनुबन्ध हैं वे सब कैद और पशु-बलि बांधि पाप-कर्म के द्वारा बंधे जाने वाले यज्ञ दुराचार-सम्पन्न उस यज्ञ-कर्त्ता का ज्ञान नहीं देने, क्योंकि कम बलवान् होता है।

२९. 'केवल निर मूढ़ मेने से कोई धन्य नहीं होता, 'ओम्' का उप करने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, केवल अरुण्य में रहने से कोई मुनि नहीं होता और कुल का पीवर पहनने मात्र से कोई तापस नहीं होता।

३० "मममात्र की साधना करने से योग्य होता है, ब्राह्मण के वासन न ब्राह्मण जाना है ज्ञान की प्राप्ति—मनन करने से मुनि होता है, तप का आचरण करने से तापस होता है।

३१ 'मनुष्य कम से ब्राह्मण होता है, कम से अभिषि होता है, कम से वरुण होता है और कम से ही पुत्र होता है।

३२ "दम सत्ता को अर्हन् ने प्रकट किया है। इसके द्वारा जो मनुष्य स्नातक होता है जो सब कर्मों से मुक्त होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

३३ "दम प्रकार जो दुष्ट-अल्पत्र द्विजोत्तम हाते हैं, वे ही अपना और पर का उद्धार करने में समर्थ हैं।"

३४. इस प्रकार मंथन दूर होने पर विजयघोष ब्राह्मण ने जयघोष की याची को भली-भाँति ममता थी—

३५. महामुनि जयघोष से मंतुष्ट हो, हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा—  
“तुमने मुझे यथायं ब्राह्मणत्व का वर्य ही अच्छा अर्थ ममताया है।

३६. “तुम यज्ञों के गजपति हो, तुम वेदों को जानने वाले विद्वान् हो, तुम वेद के ज्योतिष आदि सत्तों अर्थात् जानते हो, तुम गर्मों के पाश्यामी हो।

३७. “तुम अपना और पर का उद्धार करने में मम्य हो, इसलिए ते निधु-  
श्रेष्ठ ! तुम हम पर निश्ठा लेने का अनुग्रह करो।”

३८. “मुझे निश्ठा ने कोई प्रयोजन नहीं है। हे दिन ! तू तुरन्त ही निष्क्रमण कर मुनि-जीवन को रोजगार कर, तिममें भय के भावनों के आधीन  
इस घोर मगार-सागर में तुझे चक्कर लगाना न पड़े।

३९. “भोगों में उपनिष होना है। अनोगी विपत्ति नहीं होता। भोगी मगार  
में भ्रमण करता है। अनोगी द्रव्य में मुक्त हो जाना है।

४०. “मिट्टी के दो गोले—एक गोला और एक मृगा—फेंके गए। दोनों  
भीत पर गिरे। जो गोला था वह यहाँ चिपक गया।

४१. “इसी प्रकार जो मनुष्य दुर्बुद्धि और काम-भोगों में आसक्त होने है, वे  
विषयो से चिपट जाते हैं। जो विरक्त होने हैं, वे उनमें नहीं चिपटते, जैसे  
मृगा गोला।”

४२. इस प्रकार वह विजयघोष जयघोष अनगार के समीप अनुनर धर्म  
मुन कर प्रयोजित हो गया।

४३. जयघोष और विजयघोष ने संयम और तप के द्वारा पूर्व सन्निध कर्मों  
को क्षीण कर अनुत्तर निधि प्राप्त की।

—मेमा मैं कहता हूँ।

## छवीसवीं अध्याय

### सामाचारी

१ मैं जब दुःखों से मुक्त करन वाली उन सामाचारी का निरूपण करूँगा, तबका सावरण कर निश्चय तबका-सावरण को कर गये ।

२ पहली सावरणको, दूसरी नैतिकी, तीसरी सावरणको, चौथी प्रतिपक्षिता—

३ पहली छविता, छठी इच्छाकार, सातवीं विध्याकार, आठवीं उपाकार—

४ नीची अभ्युत्थान, नौवीं उपसंघा । अबका मैं इन सब जग वाली सावरणों की सामाचारी का निरूपण किया है ।

५ (१) स्थान से बाहर जाति समय सावरणकी करे—'बादस्तही' का उच्चारण करे ।

(२) स्थान में प्रवेश करते समय नैतिकी करे—'निरिस्तही' का उच्चारण करे ।

(३) अपना काम करने में पूर्व सावरण करे—गुरु से अनुमति ले ।

(४) एक काम से दूसरा काम करते समय प्रतिपक्षिता करे—गुरु से पुन अनुमति ले ।

६ (५) पुन-वृद्धि इच्छा से छविता करे—गुरु यात्रि का निमन्त्रित करे ।

(६) सारता (जीवित से काम करने और कराने) में इच्छाकार का प्रयोग करे—आपकी इच्छा हो तो मैं आप का समुक्त काम करूँ । आपकी इच्छा हो तो किया गया समुक्त काम करे ।

(७) अपापरित की निन्दा के लिए विध्याकार का प्रयोग करे ।

(८) प्रतिपक्ष (गुरु द्वारा प्राप्त उपदेश की स्वीकृति) के लिए उपाकार (यह एवं ही है) का प्रयोग करे ।

७ (९) गुरु-पूजा (आचार्य, गुरु, गुरु यात्रि सावरण) के लिए अभ्युत्थान करे—आहार आदि काय ।

(१०) दूसरे गण के आचार्य आदि के पाम रहने के लिए उपमम्पदा ले—मर्यादिन काल तक उनका दिव्यत्व स्वीकार करे ।

इस प्रकार दश-विध नामाचारी का निरूपण किया गया है ।

८. सूर्य के उदय होने पर दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग में भाण्ड-उपकरणों की प्रतिलेखना करे । तदनन्तर गुरु की वन्दना कर—

९. हाथ जोड़ कर पूछे—अब मुझे क्या करना चाहिये ? भन्ते ! मैं चाहता हूँ कि आप मुझे वैयावृत्य या स्वाध्याय में से किसी एक कार्य में नियुक्त करें ।

१०. वैयावृत्य में नियुक्त किये जाने पर अग्लान भाव ने वैयावृत्य अथवा सर्व दुःखों से मुक्त करने वाले स्वाध्याय में नियुक्त किये जाने पर अग्लान भाव से स्वाध्याय करे ।

११. विचक्षण भिक्षु दिन के चार भाग करे । उन चार भागों में उत्तर-गुणों (स्वाध्याय आदि) की आराधना करे ।

१२. पहले प्रहर में स्वाध्याय और दूसरे में ध्यान करे । तीसरे में भिक्षाचरी और चौथे में पुनः स्वाध्याय करे ।

१३. आपाट मास में दो पाद प्रमाण, पीप मास में चार पाद प्रमाण, चैत्र तथा आश्विन मास में तीन पाद प्रमाण पीरूपी होती है ।

१४. सात दिन-रात में एक अंगुल, पक्ष में दो अंगुल और एक मास में चार अंगुल वृद्धि और हानि होती है ।<sup>१</sup>

१५. आपाट, भाद्रपद, कार्तिक, पीप, फाल्गुन और वैशाख—इनके कृष्ण-पक्ष में एक-एक अहोरात्र (निधि) का क्षय होता है ।

१६. ज्येष्ठ, आपाट, श्रावण इस प्रथम-त्रिक में छह, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक इस द्वितीय-त्रिक में आठ, मृगशिर, पीप, माघ इस तृतीय-त्रिक में दश और फाल्गुन, चैत्र, वैशाख इस चतुर्थ-त्रिक में आठ अंगुल की वृद्धि करने से प्रतिलेखना का समय होता है ।

१७. विचक्षण भिक्षु रात्रि के भी चार भाग करे । उन चारों भागों में उत्तर-गुणों की आराधना करे ।

१. श्रावण मास से पीप मास तक वृद्धि और माघ से आपाट तक हानि होती है ।

१८ पहले ग्रह में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में नीम और चीमे में पुनः स्वाध्याय करे।

१९ जो मनत्र जिस राशि की पूर्ति करना हो, वह (मन्त्र) जब आनाम के अनुषंग भाग में आये (प्रथम ग्रह पर समाप्त हो) तब प्रणव-बाल (राशि के प्रारम्भ) में प्रारम्भ स्वाध्याय में विरत हो जाए।

२० वही मनत्र जब आकाश के अनुषंग भाग में आये तब नव वैरागिक बाल आया हुआ जानकर फिर स्वाध्याय में प्रवृत्त हो जाए।

२१ दिन के प्रथम ग्रह के प्रथम अनुषंग भाग में आरम्भ उपकरणों का प्रतिक्रमण कर, शुभ का बन्दना कर, दुःख के मुक्त करने वाला स्वाध्याय करे।

२२ पीन पीरपी पीठ जाने पर बूढ़ की बन्दना कर, बाल का प्रतिक्रमण—बायींछय बिजे बिना ही जावन की प्रतिरोधना करे।

२३ कुल-वस्त्रिका की प्रतिक्रमण कर वाष्पन की प्रतिक्रमण करे। वाष्पन का अनुष्ठानों में प्रवृत्त कर जावन का डोकने के पटला की प्रतिक्रमण करे।

२४ सबसे पहल ऊपर आत्म में बैठ कर जो ऊँचा रस स्थिर रहे और शीघ्रता द्वि बिना उनकी प्रतिक्रमण करे—बहु मे हैन। दूसरे में वस्त्र को हाटवाए और तानरे में वस्त्र की प्रमादना करे।

२५ प्रतिक्रमण करते समय (१) वस्त्र का धरिरे की न मचाए (२) न भाड़े (३) वस्त्र के दृष्टि से अनलिप्त विचार न करे (४) वस्त्र का भीत आदि से स्पर्श न करे (५) वस्त्र के छेद बूँद और भी ग्राह्य कर और (६) आ कोई प्राणी हो उसका स्पर्श पर भी बार विनोयन (प्रमादना) करे।

२६ मुनि प्रतिक्रमण के सूत्रों का वचन करे—

(१) आरम्भ—विधि न विधीन प्रतिक्रमण करना अपना एक वस्त्र का पुरा प्रतिक्रमण बिना बिना आहुता में दूसरे वस्त्र को दक्ष्य करना।

(२) तानर्दी—प्रतिक्रमण करते समय वस्त्र को इस प्रकार पकड़ना कि उसके बीच में नमूने पड़ जाय अथवा प्रतिक्रमणीय छानि पर बैठ कर प्रतिक्रमण करना।

- (३) भोमली—प्रतिलेखन करते समय वस्त्र को ऊपर, नीचे, निरन्त्रे किमी वस्त्र या पदार्थ में मघटित करना ।
- (४) प्रस्फोटन—प्रतिलेखन करते समय रज-लिप्त वस्त्र को गृहस्थ की तरह वेग में झटकना ।
- (५) विशिष्टा—प्रतिलेखित वस्त्रों को अप्रतिलेखित वस्त्रों पर रगना अथवा वस्त्र के अञ्चल को इनना ऊँचा उठाना कि उसकी प्रतिलेखना न हो सके ।
- (६) वेदिका—प्रतिलेखना करते समय घुटनों के ऊपर, नीचे या पायन में हाथ रखना अथवा घुटनों को भुजाओं के बीच रखना ।

२७. भुनि प्रतिलेखना के निम्न दोषों का वर्जन करे—

- (१) प्रणिधिल—वस्त्र को ढीला पकड़ना ।
- (२) प्रलम्ब—वस्त्र को विषमता में पकड़ने के कारण कोनों का लटकना ।
- (३) लोल—प्रतिलेख्यमान वस्त्र का हाथ या भूमि में मंघर्षण करना ।
- (४) एकामर्शा—वस्त्रों को बीच में से पकड़ कर उसके दोनों पाक्षों का एक बार में ही स्पर्श करना—एक दृष्टि में ही समूचे वस्त्रको देख लेना ।
- (५) अनेक रूप घुनना—प्रतिलेखना करते समय वस्त्र को अनेक बार (तीन बार से अधिक) झटकना अथवा अनेक वस्त्रों को एक साथ झटकना ।
- (६) प्रमाण-प्रमाद—प्रस्फोटन और प्रमार्जन का जो प्रमाण (नौ-नी बार करना) बतलाया है, उसमें प्रमाद करना ।
- (७) गणनोपगणना—प्रस्फोटन और प्रमार्जन के निर्दिष्ट प्रमाण में गड़्ढा होने पर उसकी गिनती करना ।

२८. वस्त्र के प्रस्फोटन और प्रमार्जन के प्रमाण में अन्यून-अनतिरिक्त और अविपरीत प्रतिलेखना करनी चाहिए । इन तीनों विशेषणों के आधार पर प्रतिलेखना के आठ विकल्प बनते हैं । इनमें प्रथम विकल्प (अन्यून-अनतिरिक्त और अविपरीत) प्रशस्त है और शेष अप्रशस्त ।





३७. चौथे प्रहर के चतुर्थ भाग में पौन पौष्णी यौन जाने पर स्वाध्याय के पदचात् गुरु को वन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण कर धर्मों की प्रतिलेखना करे ।
३८. यतनाशील यति फिर प्रश्रवण और उन्नार-भूमि की प्रतिक्रमण करे । तदनन्तर सर्व-दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ।
३९. ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य सम्बन्धी दैविक अतिचार का अनुक्रम से चिन्तन करे ।
४०. कायोत्सर्ग को समाप्त कर, गुरु को वन्दना करे । फिर अनुक्रम से दैविक अतिचार की आलोचना करे ।
४१. प्रतिक्रमण से निःशून्य होकर गुरु को वन्दना करे । फिर सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ।
४२. कायोत्सर्ग को समाप्त कर गुरु को वन्दना करे । फिर स्तुति-मंडल करके काल की प्रतिलेखना करे ।
४३. पहले प्रहर में स्वाध्याय<sup>१</sup>, दूसरे में ध्यान, तीसरे में नीद और चौथे में पुनः स्वाध्याय करे ।
४४. चौथे प्रहर में काल की प्रतिलेखना कर अनन्तर व्यक्तिगतों को न जगाता हुआ स्वाध्याय करे ।
४५. चौथे प्रहर के चतुर्थ भाग में गुरु को वन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण कर काल की प्रतिलेखना करे ।
४६. सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला काय-अपुत्सर्ग (कायोत्सर्ग) का समय आने पर सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ।
४७. ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप-सम्बन्धी रात्रिक अतिचार का अनुक्रम से चिन्तन करे ।
४८. कायोत्सर्ग को समाप्त कर, गुरु को वन्दना करे । फिर अनुक्रम से रात्रिक अतिचार की आलोचना करे ।
४९. प्रतिक्रमण से निःशून्य होकर गुरु को वन्दना करे, फिर सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ।
५०. मैं कौन-सा तप ग्रहण करूँ—कायोत्सर्ग में ऐसा चिन्तन करे । कायोत्सर्ग को समाप्त कर गुरु को वन्दना करे ।

---

१. स्वाध्याय काल से निवृत्त होकर ।

੨੧ ਆਪਣੇ ਆਪ ਹੀ ਤੇਰੇ ਪ੍ਰੀਤ ਦੁਆਰੇ ਆਉਣਾ ਹੈ । 'ਦਰ' ਤੇਰੇ  
ਪ੍ਰੀਤ ਦੁਆਰੇ ਤੇਰੇ ਪ੍ਰੀਤ ਦੁਆਰੇ (ਪ੍ਰੀਤ) ਹੈ ।

੨੨ ਤੇਰੇ ਪ੍ਰੀਤ ਦੁਆਰੇ ਤੇਰੇ ਪ੍ਰੀਤ ਦੁਆਰੇ ਹੈ । ਤੇਰੇ ਪ੍ਰੀਤ ਦੁਆਰੇ ਤੇਰੇ ਪ੍ਰੀਤ  
ਦੁਆਰੇ ਤੇਰੇ ਪ੍ਰੀਤ ਦੁਆਰੇ ਹੈ ।

—ਪ੍ਰੀਤ ਦੇ ਪ੍ਰੀਤ ? ।

## सताईसवाँ अध्याय.

### खलुंकीय

१. एक गगं नामक मुनि हुआ । वह स्यविर, गणधर और शास्त्र-विशारद था । वह गुणो मे आकीर्ण गणी पद पर स्थित होकर समाधि का प्रतिसन्धान करता था ।
२. वाहन को वहन करते हुए बैल के अरण्य स्वयं उल्लंघित हो जाता है, वैसे ही योग को वहन करते हुए मुनि के संसार स्वयं उल्लंघित हो जाता है ।
३. जो अयोग्य बैलो को जोतता है वह उनको आहत करता हुआ बलेश पाता है । उसे असमाधि का संवेदन होता है और उसका चाबुक टूट जाता है ।
४. वह क्रुद्ध हुआ वाहक किसी एक की पूछ को काट देता है और किसी एक को बार-बार बीघता है । तब कोई अयोग्य बैल जुए की कील को तोड़ सत्य में प्रस्थान कर जाता है ।
५. कोई एक पादवं से गिर पड़ता है, कोई बैठ जाता है तो कोई लेट जाता है । कोई क्रुद्धता है, कोई उछलता है तो कोई शठ तरुण गाय की ओर भाग जाता है ।
६. कोई धूर्त बैल शिर को निढाल बना कर लुट जाता है तो कोई क्रुद्ध होकर पीछे की ओर चलता है । कोई मृतक-सा बन कर गिर जाता है तो कोई बेग से दौड़ता है ।
७. छिनाल वृषभ रास को छिन्न-भिन्न कर देता है, दुर्दान्त होकर जुए को तोड़ देता है और सो-सो कर वाहन को छोड़ कर भाग जाता है ।
८. जुते हुए अयोग्य बैल जैसे वाहन को भग्न कर देते हैं, वैसे ही दुर्बल वृत्ति वाले गिप्यों को धर्म-यान में जोत दिया जाता है तो वे उसे भग्न कर ढालते हैं ।
९. कोई गिप्य ऋद्धि का गौरव करता है तो कोई रस का गौरव करता है, कोई साता का गौरव करता है तो कोई चिरकाल तक क्रोध रखने वाला होता है ।<sup>१</sup>



## अठाईसवां अध्याय

### मोक्ष-मार्ग-गति

१. चार कारणों ने मयुक्त, ज्ञान-दर्शन लक्षण वाली, जिन-भाषित मोक्ष-मार्ग की गति को मुनो ।

२. ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप —यह मोक्ष-मार्ग है, ऐसा ऋद्धी अर्द्धी ने प्ररूपित किया ।

३. ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप—इस मार्ग को प्राप्त करने वाले जीव मुक्ति में जाते हैं ।

४. ज्ञान पाँच प्रकार का है—युक्त ज्ञान, आभिनिर्वोधिक ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनः ज्ञान और केवल ज्ञान<sup>१</sup> ।

५. यह पाँच प्रकार का ज्ञान सर्व द्रव्य, गुण और पर्यायों का अवबोधक है—ऐसा ज्ञानियों ने बतलाया है ।

६. जो गुणों का आश्रय होता है, वह द्रव्य है । जो किसी एक द्रव्य के आश्रित रहते हैं, वे गुण<sup>२</sup> होते हैं । द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित रहना पर्याय का लक्षण है ।

१. (क) श्रुत ज्ञान—आगम या अन्य शास्त्रों से अथवा शब्द, संकेत आदि से होने वाला ज्ञान ।

(ख) आभिनिर्वोधिक ज्ञान—वर्तमानप्राप्ती इन्द्रिय-ज्ञान ।

(ग) अवधि ज्ञान—सूक्ष्म द्रव्यों को साक्षात् करने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान ।

(घ) मनःज्ञान (मनःपर्यव ज्ञान)—मानसिक ज्ञान । मन के पर्यायों को साक्षात् करने वाला ज्ञान ।

(ङ) केवल ज्ञान—निरावर्ण ज्ञान । सम्पूर्ण ज्ञान ।

(विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तराध्याय

(सटिप्पण सत्करण) ।

२. गुण—द्रव्य का सहभावी धर्म, व्यवच्छेदक धर्म ।

७ धम, अधम, आवाग, वाण, पुद्गल और जीव—ये छह द्रव्य हैं। यह पद द्रव्यात्मक आ है वही वाक है—येसा वरणाजि हुना ने प्रकटित किया है।

८ धम, अधम आवाग—य तीन द्रव्य एक एक हैं। वाण पुद्गल और जीव—य तीन द्रव्य अलग-अलग हैं।

९ धम का लक्षण है गति, अधम का लक्षण है स्थिति और आवाग मय द्रव्यों का भाजन है। उक्तका मतलब है अवस्था।

१० धनना वाण का लक्षण है। जीव का लक्षण है उन्मील। यह ज्ञान दर्शन, गुण और बुद्धि में जाना जाता है।

११ ज्ञान, धन, धारिज, धर, जीव और उपचाण—ये साव के लक्षण हैं।

१२ मण अणकार, उच्छान, प्रमा छावा जानन, वय रम, गन और स्थान—ये पुद्गल के लक्षण हैं।

१३ एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, सम्मान ममान और विभाग—ये वर्णाका के लक्षण हैं।

१४ जीव, अजीव, वाक, पुद्गल, धार, आधव गवर, निमग और मात—य भी सध्य (सम्य) है।

१५ इन नव्य जातों के सद्भावों के निरूपण में जो अण-करण से भेदा बताया है, उन सम्यक्त्व होता है। उन अण करने की भेदा का ही मगधान् न सम्यक्त्व कहा है।

१६ यह दम प्रकार का है—निमग गति उपवेस रवि आजा रवि, धुन-रवि बीज-रवि, अभिवस-रवि, विम्वार-रवि, निरा-रवि गधेर रवि और धम-रवि।

१७ जो वरापरीण के बिना केवल अजीव आत्मा में उन्मील हुए मधार्थ ज्ञान से जाव, अजीव धुन, धार का जानना है और जो आधव और गवर पर भेदा बताया है वह निरु-रवि है।

१८ जो बिने-द्रव्या उपलब्ध तथा द्रव्य क्षेत्र बाध और जाव में विरोधित वगैरों पर स्वयं ही—'वह ऐसा ही है जगदा मर्दा है—'मेरी भेदा रचना है उसे निमर्ग-रवि वाला जानना चाहिए।

१९ जो दूसरा—सद्भाव या विन—के द्वारा उन्मील प्राप्त कर, उन मधार्थ पर भेदा करना है उन इन्मील-रवि वाला जानना चाहिए।

१ सद्भाव—वागविव अतिव्यव।

२ रवि—सत्य की भेदा सम्यक्त्व।

२०. जो व्यक्ति राग, द्वेष, मोह और अज्ञान के दूर हो जाने पर भीतराग की आज्ञा में रुचि रखता है, वह आज्ञा-रुचि है।

२१. जो अंग-प्रविष्ट या अंग-बाह्य सूत्रों को पटता हुआ सम्यक्त्व पाता है, वह सूत्र-रुचि है।

२२. पानी में डाले हुए तेल की बूंद की तरह जो सम्यक्त्व एक पद से अनेक पदों में फैलता है, उसे बीज-रुचि जानना चाहिए।

२३. जिसे ग्यारह अंग, प्रकीर्णक और दृष्टिवाद आदि श्रुत-ज्ञान अर्थ महित प्राप्त हैं, वह अभिगम-रुचि है।

२४. जिसे द्रव्यों के सब भाव, सभी प्रमाणों और सभी नय-विधियों में उपलब्ध हैं, वह विस्तार-रुचि है।

२५. दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य, तप, विनय, सत्य, ममिति, गुप्त आदि क्रियाओं में जिनकी वास्तविक रुचि है, वह क्रिया-रुचि है।

२६. जो जिन-प्रवचन में विचारद नहीं है और अन्यान्य प्रवचनों का अभिज्ञ भी नहीं है, किन्तु जिसे कुदृष्टि का आग्रह न होने के कारण स्वल्प मात्रा से जो तत्त्व-श्रद्धा प्राप्त होती है, उसे नक्षेप-रुचि जानना चाहिए।

२७. जो जिन-प्रवृत्ति अस्तिकाय-धर्म, श्रुत-धर्म और चारित्र्य-धर्म में श्रद्धा रखता है, उसे धर्म-रुचि जानना चाहिए।

२८. परमार्थ का परिचय, जिन्होंने परमार्थ को देखा है उनकी सेवा, सम्यक्त्व से भ्रष्ट और कुदर्शनी व्यक्तियों का वर्जन, यह सम्यक्त्व का श्रद्धान है।

२९. सम्यक्त्व-विहीन चारित्र्य नहीं होता। सम्यक्त्व में चारित्र्य की भजना है। सम्यक्त्व और चारित्र्य एक साथ उत्पन्न होते हैं और जहाँ वे एक साथ उत्पन्न नहीं होते, वहाँ पहले सम्यक्त्व होता है।

३०. असम्यक्त्वों के ज्ञान (सम्यग् ज्ञान) नहीं होता। ज्ञान के बिना चारित्र्य-पुण्य नहीं होते। अगुणी व्यक्ति की मुक्ति नहीं होती। अमुक्त का निर्वाण नहीं होता।

३१ निराशा, निराशा, निर्विचित्रिणा, अमृद-दृष्टि, उग्रहृत् स्मृति करण, वारमन्ध और प्रभावना—य जाठ मन्त्रस्व क अंग है ।<sup>१</sup>

३२ चारित्र्य पात्र प्रकार के होने हैं वृत्ता—नामाविष, कुमरा—शेनोपम्यादनाय, तीमरा—परिहार विद्वि, चौदा—भूतम-भयराय और—

३३ पाँचवीं—यथाभ्यास-चारित्र्य कपाय रहित हाता है । वह उद्मत्त्व और बेवसी—बानों के हाता है । य सभी चारित्र्य वम-मन्त्र को रित्त करते हैं, इसीलिए इन्हें चारित्र्य कहा जाता है ।

३४ तन वा प्रकार का कहा है—वास्त और आभ्य-उत्तर । वास्त तन यह प्रकार का कहा है । इसी प्रकार आभ्य-उत्तर-नय यह प्रकार का है ।

३५ जीव ज्ञान से वसाधों को जानना है, वान से पछा करना है, चारित्र्य से नियंत्रण करना है और तन से पुष्ट होना है ।

३६ सर्व दुःखों से मुक्ति पाने का मन्त्र रत्नने बाने महर्षि नयम और तन के द्वारा पुन-कर्मों का सब कर निवृत्ति को प्राप्त होते हैं ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

- १ (१) निराशा—अनि जाविन, नस्व के प्रति अतिवृत्तीभना ।
  - (२) निराशा—एकान्त दृष्टि बाने वानों के स्वीकार की अनिचज्ञा ।
  - (३) निर्विचित्रिणा—कर्म-कर्म में अतरेह ।
  - (४) अमृददृष्टि—मोहमयी दृष्टि का अभाव ।
  - (५) उग्रहृत्—साम्य वान की दृष्टि ।
  - (६) स्मृतिकरण—जब ज्ञान से विचलित व्यक्तियों को पुन बर्न में स्थिर करना ।
  - (७) वारमन्ध—आकर्षकों के प्रति कर्तव्य वाच ।
  - (८) प्रभावना—अनि साम्य की महिमा बढ़ाना ।
२. पाँच प्रकार के चारित्र्य के विवरण के लिए देखें (वत्तराभ्यसन—संस्कृत-संस्करण) ।



## उनतीसवाँ अध्ययन

### सम्यक्त्व-पराक्रम

सू०१. आयुष्मन् ! मैंने मुना है मगवान् ने इन प्रकार कहा है—हम निषेध-प्रवचन में तद्वन्-गोत्रो अमग्न भगवान् महावीर ने मग्गमग्ग-पराक्रम नाम का अध्ययन कहा है, जिस पर भक्तीभीति श्रद्धा कर, प्रकीर्ति कर, शक्ति दग दग, स्मृति में दग कर, समग्र रूप में हस्तगत कर, गुरु को पठित पाठ का निवेदन कर, गुरु के समीप उच्चारण की श्रुति कर, सही अर्थ का बोध प्राप्त कर और अहंत् की धाजा के अनुसार अनुमानन कर बहुत जीय मित्र होने हैं, घुद होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण होते हैं और सब दुःखों का भूत मरते हैं। सम्यक्त्व-पराक्रम का अर्थ इस प्रकार कहा गया है, जैसे—

१. सवेग
२. निर्वेद
३. धर्म-श्रद्धा
४. गुरु और साधर्मिक की श्रुश्रूपा
५. आलोचना
६. निन्दा
७. गहरी
८. सामायिक
९. चतुर्विंशति-स्तव
१०. वदन
११. प्रतिक्रमण
१२. कायोत्तम
१३. प्रत्यात्पान
१४. स्तव-स्तुति-मंगल
१५. काल-प्रतिक्षण
१६. प्रायश्चित्तकरण

- १३ शासना
- १४ रक्षाध्याय
- १५ वाचना
- २० अतिप्रसन्नता
- २१ परावर्तना
- २२ अनुप्रेषा
- २३ धर्म-न्याय
- २४ धुनाराधना
- २५ एकादश-मन्त्री की स्थापना
- २६ मन्त्र
- २७ तप
- २८ व्यवसाय
- २९ युद्ध की शृङ्खला का स्थापन
- ३० अतिप्रसन्नता
- ३१ विविध-प्रकारों के लेखन
- ३२ विविध-लेखन
- ३३ मन्त्रानु-प्रकारों का
- ३४ उपाधि-प्रकारों का
- ३५ शासन-प्रकारों का
- ३६ वसाय-प्रकारों का
- ३७ धर्म-प्रकारों का
- ३८ धर्म-प्रकारों का
- ३९ मन्त्र-प्रकारों का
- ४० मन्त्र-प्रकारों का
- ४१ मन्त्र-प्रकारों का
- ४२ धर्म-प्रकारों का
- ४३ धर्म-प्रकारों का
- ४४ मन्त्र-प्रकारों का
- ४५ धर्म-प्रकारों का
- ४६ धर्म-प्रकारों का
- ४७ धर्म-प्रकारों का



मान, माया और मोक्ष का लक्ष करता है। नये कर्मों का लक्ष नहीं करना। कर्मायु म सीधे होने से प्रकट होने वाले मिथ्यात्व-विगुटि कर दान (सम्यक्-अदान) की आराधना करता है। दान-विशेष के विगुटि होने पर कई एक जीव उमी जन्म से सिद्ध हो जाते हैं और कई उसके विगुटि होने पर तीसरे जन्म का अतिशय नहीं करते—उसमें अवश्य ही सिद्ध हो जाते हैं।

सू०२ अन्ते ! निर्वेद<sup>१</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

निर्वेद से वह देव, अमुष्य और त्रिवक् सम्बन्धी काम-भोगों में मोक्ष का प्राप्त होता है। सब विषयों से विरक्त हो जाता है। सब विषयों से विरक्त होता हुआ वह आरम्भ और परिहर्ष का परिहास करता है। आरम्भ और परिहर्ष का परिहास करता हुआ समार-माय का विच्छेद करता है और निश्चिन्ता-भाग को प्राप्त होता है।

सू०३ अन्ते ! काम-अदान में जीव क्या प्राप्त करता है ?

काम-अदान से वह वैश्विक सुखों की आनन्दित होकर विरक्त हो जाता है, अपार-यम—सुखी की स्वाम देता है। वह अनन्त होकर ऐश्वर्य-अदान, सदाय विषय आदि भौतिक और मानसिक सुखों का विच्छेद करता है और निर्वेद (माया रहित) सुख को प्राप्त करता है।

सू०४ अन्ते ! सुख और साधनिक की सुखों से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सुख और साधनिक की सुखों से वह विनय का प्राप्त करता है। विनय को प्राप्त करने वाला व्यक्ति सुख का अविनाश या परिहास करने वाला नहीं होता, इसलिए वह वैश्विक, त्रिवक्-योगिक, अमुष्य और ईश्वर सम्बन्धी सुखों का निरीक्ष करता है। दानाया सुख प्रदान, भक्ति और बहुमान के द्वारा अमुष्य और देव सम्बन्धी सुखों से सम्बन्ध होता है। निश्चिन्ता और सुखों का भाग प्रदान करता है। विनय-सुख से प्राप्त करने वालों का सिद्ध करना है और दूसरे बहुत व्यक्तियों को विनय के लक्ष पर लक्षित है।

सू०५ अन्ते ! आनन्दना<sup>२</sup> में जीव क्या प्राप्त करता है ?

आनन्दना में वह अनन्त लक्षों को बढ़ाने वाले, मोक्ष-भाग में विनय उन्मत्त करने वाले, माया, निदान तथा मिथ्या-दान—इन तीनों द्वारा का निवास करता है और अन्तु भाव का प्राप्त होता है। अन्तु भाव का प्राप्त

१ निर्वेद—मह-वैराग्य।

२ आनन्दना—सुख के अमुष्य अपनी सुखों का निर्वेदन करना।

हृत्वा व्यक्ति अभायी होता है, इसलिए वह स्त्री-वेद और गण्डम-वेद कर्म का वन्द्य नहीं करता और यदि वे पहले वन्द्य हुए हों तो उनका क्षय कर देता है।

सू०६. भन्ते ! निन्दा<sup>१</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

निन्दा ने वह पञ्चानास को प्राप्त होता है। उसमें द्वारा विग्नत होता हुआ मोह को क्षीण करने में समर्थ परिणाम-शक्ति को प्राप्त करता है। वैनी परिणाम-धारा को प्राप्त हुआ अनगार मोहनीय-कर्म को क्षीण कर देता है।

सू०७. भन्ते ! गर्हा<sup>२</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

गर्हा ने वह अनादर को प्राप्त होता है। अनादर को प्राप्त हुआ वह जप्रगन्त, प्रवृत्तियों में निवृत्त होता है और प्रशम्न प्रवृत्तियों को अर्गीकार करता है। वैना अनगार आत्मा के अनन्त-पिकाम का घात करने वाले ज्ञानावरण आदि कर्मों की परिणतियों को क्षीण करता है।

सू०८. भन्ते ! सामायिक<sup>३</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सामायिक ने वह असत् प्रवृत्ति की विरति को प्राप्त होता है।

सू०९. भन्ते ! चतुर्विंशति-स्तव<sup>४</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

चतुर्विंशति-स्तव से वह गम्यवत्त्व की विभुद्धि को प्राप्त करता है।

सू०१०. भन्ते ! वन्दना से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वन्दना से वह नीचे-कुल में उत्पन्न करने वाले कर्मों को क्षीण करता है; ऊँचे-कुल में उत्पन्न करने वाले कर्म का अर्जन करता है और जिसकी आज्ञा को लोग निरोधायं करे वैसा अवाधित मोभाग्य और जनता की अनुकूल भावना को प्राप्त होता है।

सू०११. भन्ते ! प्रतिक्रमण से जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रतिक्रमण ने वह व्रत के छेदों को ढँक देता है। जिसने व्रत के छेदों को ढँक दिया वैसा जीव आश्रयों को रोक देता है, चारित्र्य के घटकों को मिटा देता है, आठ प्रवचन-माताओं में नावधान हो जाता है, मंथन में एक-रस हो जाता है और भली-भाँति समाधिस्थ होकर विहार करता है।

सू०१२. भन्ते ! कायोत्सर्ग से जीव क्या प्राप्त करता है ?

१. निन्दा—अपनी भूलों के प्रति अनादर का भाव प्रकट करना।

२. गर्हा—दूसरों के समक्ष अपनी भूलों को प्रकट करना।

३. सामायिक—समभाव की साधना।

४. चतुर्विंशति-स्तव—चीबीस तीर्थंकरों की स्तुति।

कायोत्तम ने वह अतीत और वर्तमान के प्रायश्चित्तान्वित कार्यों का विनोषन करना है। ऐसा करने वाला व्यक्ति भार की नीचे रज्ज देन वाले चार-बाहक की भाँति स्वल्प हृदय वाला — हल्का हो जाता है और प्रायश्चित्त-ध्यान में लीन होकर सुखपूर्वक विहार करता है।

सू० ११ मन्ते ! प्रत्याख्यान से जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रत्याख्यान से वह आयर-द्वारों (कम कर्म के हेतुओं) का निरोध करता है।

सू० १४ मन्ते ! स्तव और स्तुति कर्म मन्त्र से जीव क्या प्राप्त करता है ?

स्तव और स्तुति कर्म मन्त्र से वह ज्ञान, दत्तन और चारित्र्य की बोधि का लाभ करता है। ज्ञान, बोधि और चारित्र्य के बाध-नाश में सम्पूर्ण व्यक्ति मोक्ष-प्राप्ति का वैधानिक क्षेत्रों में उत्तम होने योग्य आराधना करता है।

सू० १५ मन्ते ! काल-प्रतिवेक्षण<sup>१</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

काल प्रतिवेक्षण से वह ज्ञानावरणीय कर्म को खींच करता है।

सू० १६ मन्ते ! प्रायश्चित्त करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रायश्चित्त करने से वह पाप-मात्र की विमृष्टि करता है और निरुत्तिचार हो जाता है। सम्पद-प्रकार में प्रायश्चित्त करने वाला व्यक्ति माय (मम्यकर्म) और मात-कल (ज्ञान) का निर्मल करता है तथा आचार (चारित्र्य) और आचार-कल (शुद्धि) की आराधना करता है।

सू० १७ मन्ते ! क्षमा करने में जीव क्या प्राप्त करता है ?

क्षमा करने में वह मानसिक प्रसन्नता की प्राप्ति होता है। मानसिक प्रसन्नता की प्राप्ति हुआ व्यक्ति मग्न प्राप्त, सुखी जीव और मर्यादों के माय मैत्री भाव उत्पन्न करता है। मैत्री भाव की प्राप्ति हुआ जीव आधना का विमृष्ट बनाकर निमग्न हो जाता है।

सू० १८ मन्ते ! स्वाध्याय से जीव क्या प्राप्त करता है ?

स्वाध्याय से वह ज्ञानावरणीय कर्म को खींच करता है।

१ काल-प्रतिवेक्षण—स्वाध्याय आदि के उपयुक्त समय का ज्ञान करना।

सू०१६. भन्ते ! वाचना (अध्यापन) मे जीव क्या प्राप्त करता है ?

वाचना मे वह कर्मों को क्षीण करता है । श्रुत की उपेक्षा के दोष से वच जाना है । इस उपेक्षा के दोष मे वचने वाला तीर्थ-धर्म का अवलम्बन करता है—वह गणधर की भाँति शिष्यों को श्रुत देने मे प्रवृत्त होता है । तीर्थ-धर्म का अवलम्बन करने वाला कर्मों और भंसार का अन्त करने वाला होता है ।

सू०२०. भन्ते ! प्रतिप्रश्न करने मे जीव क्या प्राप्त करना है ?

प्रतिप्रश्न करने से वह सूत्र, अर्थ और उन दोनों से सम्बन्धित सन्देहों का निवर्तन करता है और कांक्षा-मोहनीय कर्म का विनाश करता है ।

सू०२१. भन्ते ! परावर्त्तना<sup>१</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

परावर्त्तना से वह अक्षरों को उत्पन्न करता है—स्मृत को परिपक्व और विस्मृत को याद करता है तथा व्यजन-लब्धि<sup>२</sup> को प्राप्त होता है ।

सू०२२. भन्ते ! अनुप्रेक्षा<sup>३</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

अनुप्रेक्षा से वह आयुष्-कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मों की गाढ-बन्धन मे बँधी हुई प्रकृतियों को शिथिल-बन्धन वाली कर देता है; उनकी दीर्घ-कालीन स्थिति को अल्प-कालीन कर देता है; उनके तीव्र अनुभाव को मंद कर देता है; उनके बहु-प्रदेशों को अल्प-प्रदेशों मे बदल देता है । आयुष्-कर्म का बन्धन कदाचित् करता है, कदाचित् नहीं भी करता । असात-वेदनीय कर्म का बार-बार उपचय नहीं करता और अनादि-अनंत लम्बे-मार्ग वाली तथा चतुर्गति-रूप चार अन्तों वाली ससार-अटवी को तुरन्त ही पार कर जाता है ।

सू०२३. भन्ते ! धर्म-कथा से जीव क्या प्राप्त करता है ?

धर्म-कथा से वह प्रवचन की प्रभावना करता है । प्रवचन की प्रभावना करने वाला जीव भविष्य में कल्याणकारी फल देने वाले कर्मों का अर्जन करता है ।

सू०२४. भन्ते ! श्रुत की आराधना से जीव क्या प्राप्त करता है ?

श्रुत की आराधना से वह अज्ञान का क्षय करता है और राग-द्वेष आदि से उत्पन्न होने वाले मानसिक सक्लेशों से वच जाता है ।

१. परावर्त्तना—पठित-पाठ का पुनरावर्त्तन ।

२. व्यंजन-लब्धि—वर्ण-विद्या । एक व्यञ्जन के आधार पर शेष व्यञ्जनों को प्राप्त करने वाली क्षमता ।

३. अनुप्रेक्षा—अर्थ-चिन्तन ।

सू०२५ अन्ते ! एक अन्न (आत्मनः) पर मन को स्थापित करने में जीव क्या प्राप्त करता है ?

एकान्त मन की स्थापना से वह चित्त का निरास करता है ।

सू०२६ अन्ते ! तपस से जीव क्या प्राप्त करता है ?

तपस से वह व्यासक्त का निरोध करता है ।

सू०२७ अन्ते ! तप से जीव क्या प्राप्त करता है ?

तप से वह व्यवधान<sup>१</sup> को प्राप्त होता है ।

सू०२८ अन्ते ! व्यवधान से जीव क्या प्राप्त करता है ?

व्यवधान से वह अक्रिया<sup>२</sup> को प्राप्त होता है । वह अक्रियावान् हुंकर निवृत्त होता है, कुड होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और दुःख का अन्त करता है ।

सू०२९ अन्ते ! मुक्त की स्मृति का निवारण करने में जीव क्या प्राप्त करता है ?

मुक्त की स्मृति का निवारण करने से वह विषया के प्रति अनुसृज-भाव को प्राप्त करता है । विषयों के प्रति अनुसृज जीव अनुसृज्य करने वाला, प्रयान्त और लोभ-मुक्त होकर चारित्र्य को विहृत करने वाले माह-कर्म का शय करता है ।

सू०३० अन्ते ! अप्रतिबद्धता<sup>३</sup> में जीव क्या प्राप्त करता है ?

अप्रतिबद्धता से वह असक्त हो जाता है—वास्तव असक्तों से मुक्त हो जाता है । असक्तता में जीव अकेला (राज-वेद्य रहित), एकवच चित्त वाला, दिन और रात बाह्य-वस्तुओं की छोड़ता हुआ प्रतिबन्ध रहित होकर विहरण करता है ।

सू०३१ अन्ते ! विविक्त<sup>४</sup> ध्यानासन के सेवन से जीव क्या प्राप्त करता है ?

१ व्यवधान—पूर्व-अभिज्ञ कर्मों के जय से होने वाली चिन्तुद्धि ।

२ अक्रिया—बन, लचन और क्षरीर की प्रवृत्ति का पूर्ण निरोध ।

३ अप्रतिबद्धता—बन्ध की अनासक्ति ।

४ विविक्त—एकान्त, आवागमन रहित और स्त्री-पुरु-आश्रित स्थान ।



विविक्त-शयनासन के सेवन से वह चारित्र्य की रक्षा को प्राप्त होता है। चारित्र्य की सुरक्षा करने वाला जीव पीष्टिक आहार का वर्जन करने वाला, दृढ़ चरित्र वाला, एकांत में रत, अन्तःकरण से मोक्ष की साधना में लगा हुआ होता है। वह आठ प्रकार के कर्मों की गाँठ तोड़ देता है।

सू० ३२. भन्ते ! विनिवर्तना<sup>१</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

विनिवर्तना से वह नए सिरे से पाप-कर्मों को नहीं करने के लिए तत्पर रहता है और पूर्व-अजित पाप-कर्मों का क्षय कर देता है। इस प्रकार वह पाप-कर्म का विनाश कर देता है। उनके पश्चात् चार-गति रूप चार अन्तों वाली संसार-अटवी को पार कर जाता है।

सू० ३३. भन्ते ! सम्भोग-प्रत्याख्यान<sup>२</sup> करने वाला जीव क्या प्राप्त करता है ?

सम्भोग-प्रत्याख्यान से वह परावलम्बन को छोड़ता है। उस परावलम्बन को छोड़ने वाले मुनि के सारे प्रयत्न मोक्ष की मिट्टि के लिए होते हैं। वह भिक्षा में स्वयं को जो कुछ मिलता है उन्हीं में सन्तुष्ट हो जाता है। दूसरे मुनियों को मिली हुई भिक्षा में आस्वाद नहीं लेता, उसकी ताक नहीं रखता, उसकी स्पृहा नहीं करता, प्रार्थना नहीं करता और अभिलाषा नहीं करता। हमारे को मिली हुई भिक्षा में आस्वाद न लेता हुआ, उसकी ताक न रखता हुआ, स्पृहा न करता हुआ, प्रार्थना न करता हुआ और अभिलाषा न करता हुआ दूसरी मुख-क्षम्या को प्राप्त कर विहरण करता है।

सू० ३४. भन्ते ! उपधि<sup>३</sup> के प्रत्याख्यान से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उपधि के प्रत्याख्यान से वह स्वाध्याय-ध्यान में होने वाली क्षति से बच जाता है। उपधि रहित मुनि अभिलाषा से मुक्त होकर उपधि के अभाव में मानसिक सकलेश को प्राप्त नहीं होता।

सू० ३५. भन्ते ! आहार-प्रत्याख्यान से जीव क्या प्राप्त करता है ?

आहार-प्रत्याख्यान से वह जीवित रहने की अभिलाषा के प्रयोग का विच्छेद कर देता है। जीवित रहने की अभिलाषा का विच्छेद कर देने वाला व्यक्ति आहार के बिना (तपस्या आदि में) सकलेश को प्राप्त नहीं होता है।

१. विनिवर्तना—इन्द्रिय और मन को विषयों से दूर रखना।

२. सम्भोग-प्रत्याख्यान—मण्डली-भोजन का त्याग।

३. उपधि—वस्त्र आदि उपकरण।

सू०३६ मने ! कषाय के प्रत्याख्यान से जीव क्या प्राप्त करता है ?

कषाय प्रत्याख्यान से वह नीतराग भाव का प्राप्त होना है । नीतराग भाव का प्राप्ति हुआ जीव सुख-दुःख में मग्न हो जाता है ।

सू०३७ मने ! याग<sup>१</sup> के प्रत्याख्यान से जीव क्या प्राप्त करता है ?

याग प्रत्याख्यान से वह अवोदय (संन्यास-प्रकल्प भाव) को प्राप्त होता है । अवोदगी जीव नष्ट कर्मों का अर्जन नहीं करता और पूर्वार्जित कर्मों का क्षीय कर देता है ।

सू०३८ मने ! शरीर के प्रत्याख्यान (देह-मुक्ति) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

शरीर के प्रत्याख्यान से वह मुक्त-आत्माओं के अनिमग्न गुणों को प्राप्त करता है । मुक्त-आत्माओं के अनिमग्न गुणों को प्राप्त करने वाला जीव साक के निम्नर में पहुँचकर परम भूमी हो जाता है ।

सू०३९ मने ! सहाय-प्रत्याख्यान<sup>२</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

सहाय प्रत्याख्यान से वह अकेलेपन को प्राप्त होता है । अकेलेपन को प्राप्त हुआ जीव दम्भ के आत्मस्वन का अभ्यास करता हुआ कोपाह्वकूल गणों से मुक्त, बाधित-कलह से मुक्त, अयथे से मुक्त कषाय से मुक्त दुःख से मुक्त तपस-बहुल, सत्कर-बहुल और समाधिस्थ हो जाता है ।

सू०४० मने ! मत्त-प्रत्याख्यान (मदमग्न) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

मत्त प्रत्याख्यान से वह अनेक सैकड़ों जन्म-मरणा का निरोध करता है ।

सू०४१ मने ! मद्भाष-प्रत्याख्यान<sup>३</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

मद्भाष-प्रत्याख्यान से वह अनिर्वृत्ति का प्राप्ति होता है—जन्म बाणी और शरीर की प्रवृत्ति नहीं करता । अनिर्वृत्ति को प्राप्त हुआ अनार केवली के विद्यमान चार कर्मों—वेदनीय आयुष, माय और माय का क्षीय कर देता है । उनके परवान् वह निष्ठ होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण होता है और सब दुःखों का अंत करता है ।

१ योग—मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति ।

२ सहाय प्रत्याख्यान—दुष्टों के सहयोग का त्याग ।

३ मद्भाष प्रत्याख्यान—परमानंद से होने वाला प्रत्याख्यान । पूर्ण संवर या गौरी अवस्था ।

सू०४२. मते ! प्रतिरूपता<sup>१</sup> मे जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रतिरूपता मे वह हल्केपन को प्राप्त होता है । उपकरणों के अल्पीकरण से हल्का बना हुआ जीव अप्रमत्त, प्रकटलिंग वाला, प्रशस्तलिंग वाला, विशुद्ध सम्यक्त्व वाला, पराक्रम और ममिति मे परिपूर्ण, सर्व प्राण, भूत, जीव और मत्त्वों के लिए विद्वन्मनीय रूप वाला, अल्प-प्रतिनिवेदन वाला, जितेन्द्रिय तथा विपुल तप और समितियों का मन्त्र प्रयोग करने वाला होता है ।

सू०४३. मते ! वैयावृत्य से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वैयावृत्य से वह तीर्थङ्कर नाम-गोत्र का अर्जन करता है ।

सू०४४. मते ! सर्व-गुण-सम्पन्नता मे जीव क्या प्राप्त करता है ?

सर्व-गुण-सम्पन्नता मे वह अपुनरावृत्ति (मुक्ति) को प्राप्त होता है । अपुनरावृत्ति को प्राप्त करने वाला जीव शारीरिक और मानसिक दुःखों का भागी नहीं होता ।

सू०४५. मते ! वीतरागता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

वीतरागता से वह स्नेह के अनुबन्धनों और तृष्णा के अनुबन्धनों का विच्छेद करता है तथा मनोज्ञ (और अमनोज्ञ) शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध मे विरक्त हो जाता है ।

सू०४६. मते ! क्षमा से जीव क्या प्राप्त करता है ?

क्षमा से वह परीपहो पर विजय प्राप्त कर लेता है ।

सू०४७. मते ! मुक्ति (निर्लोभता) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

मुक्ति से वह अकिंचनता को प्राप्त होता है । अकिंचन जीव अर्थ-लोलुप पुरुषों के द्वारा अप्रार्थनीय होता है—उसके पास कोई याचना नहीं करता ।

सू०४८. मते ! ऋजुता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

ऋजुता से वह काया की सरलता, भाव की सरलता, भाषा की सरलता और अविसवाद को प्राप्त होता है । अविसंवाद की वृत्ति से सम्पन्न जीव धर्म का आराधक होता है ।

सू०४९. मते ! शृद्धता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

शृद्धता से वह अनुद्धत मनोभाव को प्राप्त करता है । अनुद्धत मनोभाव वाला जीव शृद्ध-मार्दव से सपन्न होकर मद के आठ स्थानों का विनाश कर देता है ।

सू०१० भवे ! भाव-सत्य<sup>१</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

भाव-सत्य से वह भाव की विमूर्ति का प्राप्ति होता है। भाव विमूर्ति में अन्यान्य जीव अहन्-प्रकल्प धर्म की आराधना के लिए तैयार होता है। अहन्-प्रकल्प धर्म की आराधना में तत्पर होकर वह परलोच-धर्म का आराधक होता है।

सू०११ भवे ! करण-सत्य<sup>२</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

करण-सत्य से वह अप्रुव कार्य करने में सामर्थ्य को प्राप्त होता है। करण-सत्य में वतमान जीव जसा कहता है वैसा करता है।

सू०१२ भवे ! योग-सत्य<sup>३</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

योग-सत्य से वह मन बाणी और कथा की प्रवृत्ति को विमूर्ति करता है।

सू०१३ भवे ! मनोमुप्तता<sup>४</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

मनो-मुप्तता से वह एकाग्रता को प्राप्ति होता है। एकाग्रचित्त वाला जीव अगुह तकली से मन की रक्षा करने वाला और स्वयं की आराधना करने वाला होता है।

सू०१४ भवे ! बाग्-मुप्तता<sup>५</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

बाग्-मुप्तता से वह निर्विकार भाव को प्राप्त होता है। निर्विकार जीव बाग्-मुप्त, अध्यात्मवीर्य और ध्यान से मुक्त हो जाता है।

सू०१५ भवे ! काय-मुप्तता<sup>६</sup> से जीव क्या प्राप्त करता है ?

काय-मुप्तता से वह संवर<sup>७</sup> को प्राप्त होता है। संवर के द्वारा कायिक शिखर को प्राप्त करने वाला जीव फिर पाप धर्म के उपादान-हेतुमा (माधवो) का निरोध कर देता है।

१ भाव-सत्य—अन्तरात्मा की सच्चाई।

२ करण-सत्य—विहित-काय को सत्यक प्रकार से और तत्पथ हाकर करना।

३ योग-सत्य—मन बाणी और कथा की सच्चाई।

४ मनोमुप्तता—मुक्त मन की प्रवृत्ति।

५ बाग्-मुप्तता—मुक्त बन्धन की प्रवृत्ति।

६ काय-मुप्तता—मुक्त काय की प्रवृत्ति।

७ संवर—अगुह प्रवृत्ति का निरोध।

सू०५६. मते ! मन-समाधारणा<sup>१</sup> में जीव क्या प्राप्त करता है ?

मन-समाधारणा में वह एकाग्रता की प्राप्ति होता है। एकाग्रता की प्राप्ति होकर ज्ञान-पर्ययो (ज्ञान के प्रकारों) की प्राप्ति होता है। ज्ञान-पर्ययो की प्राप्ति कर सम्पन्न-दर्शन की विमुक्ति और मिथ्या-दर्शन को क्षीण करना है।

सू०५७. मते ! वाक्-समाधारणा<sup>२</sup> में जीव क्या प्राप्त करता है ?

वाक्-समाधारणा में वह वाणी के विषय-भूत दर्शन-पर्ययो की (मन्त्रक-दर्शन के प्रकारों) की विमुक्ति करता है। वाणी के विषयभूत दर्शन-पर्ययो की विमुक्ति कर बोधि की गुल्मता को प्राप्ति करता है और बोधि की दुर्लभता को क्षीण करता है।

सू०५८. मते ! काय-समाधारणा<sup>३</sup> में जीव क्या प्राप्त करता है ?

काय-समाधारणा में वह चरित्र-पर्ययो (चरित्र के प्रकारों) की विमुक्ति करता है। चरित्र-पर्ययो की विमुक्ति कर यथाग्रन्त चरित्र (सौत्तराग्रभाय) की प्राप्ति करने योग्य विमुक्ति करता है। यथाग्रन्त चरित्र को विमुक्ति कर केवली के विद्यमान चार कर्मों—आयुः, वेदनीय, नाम और मोक्ष की क्षीण करता है। उनके पञ्चान् मिद्व होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, चरित्रनिर्माण होता है और सब दुःखों का अन्त करता है।

सू०५९. मते ! ज्ञान-सम्पन्नता में जीव क्या प्राप्त करता है ?

ज्ञान-सम्पन्नता में वह सब पदार्थों को ज्ञान नेता है। ज्ञान-सम्पन्न जीव चार गति-रूप चार अन्तों वाली समार-अटवी में चिन्तित नहीं होता।

जिम प्रकार समूत्र (धामे में पिरोई हुई) मुट्टी गिरने पर भी गुम नहीं होती, उसी प्रकार समूत्र (ध्रुत महिन) जीव समार में रहने पर भी चिन्तित नहीं होता।

१. मन-समाधारणा—समाधारणा का अर्थ है—सम्यग्-व्यवस्थापन या नियोजन। मन का धृत में व्यवस्थापन या नियोजन करना मन-समाधारणा है।

२. वाक्-समाधारणा—वचन का स्वाध्याय में व्यवस्थापन या नियोजन।

३. काय-समाधारणा—काया का चरित्र की आराधना में व्यवस्थापन या नियोजन।

ज्ञान-मपन्न शक्ति शक्ति आदि विविध ज्ञान, ध्यान, तप और चारित्र्य का योग का प्राप्त करता है तथा स्वतन्त्र<sup>१</sup> और परतन्त्र<sup>२</sup> की ध्याना या तुलना के लिए प्रायोगिक मुख्य माना जाता है।

सू० ६० मत्त ! दान संपन्नता में जीव क्या प्राप्त करता है ?

दान-संपन्नता में वह सप्ताह-व्यय के हेतु भूत मिथ्यात्व का उच्छेद करना है—प्रायिक सम्बन्ध-दान को प्राप्त होता है। उसने जाने उसकी प्रशस्त-गिना कुञ्जी नहीं। वह अनुत्तर ज्ञान और स्वयं की आत्मा से नयोजित करता हुआ, उन्हें सम्बन्ध प्रकार से भाग्यमान करना हुआ निहङ्ग करता है।

सू० ६१ मत्त ! चारित्र्य-संपन्नता में जीव क्या प्राप्त करता है ?

चारित्र्य संपन्नता में वह शैलेयी भाव को प्राप्त होता है। शैलेयी-गंगा को प्राप्त करने वाला अनन्तर केवली के विद्यमान चार कर्मों का शीघ्र करता है। उनके परवान् वह विद्य होता है बुद्ध हुआ है, मुक्त हुआ है परिनिर्वाण हुआ है और सब दुःखा का मत्त करता है।

सू० ६२ मत्त ! शीलेन्द्रिय का निग्रह करने में जीव क्या प्राप्त करता है ?

शीलेन्द्रिय के निग्रह में वह मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है। वह मत्त-मन्त्राधी राग-द्वेष के निमित्त से होने वाला कर्म-बंधन नहीं करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को शीघ्र करता है।

सू० ६३ मत्त ! कर्ण-इन्द्रिय का निग्रह करने में जीव क्या प्राप्त करता है ?

कर्ण-इन्द्रिय के निग्रह में वह मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है। वह मत्त-मन्त्राधी राग-द्वेष के निमित्त से होने वाला कर्म-बंधन नहीं करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को शीघ्र करता है।

सू० ६४ मत्त ! घ्राण-इन्द्रिय का निग्रह करने में जीव क्या प्राप्त करता है ?

घ्राण-इन्द्रिय के निग्रह में वह मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है। वह मत्त-मन्त्राधी राग-द्वेष के निमित्त से होने वाला कर्म-बंधन नहीं करता और पूर्व-बद्ध तन्निमित्तक कर्म को शीघ्र करता है।

सू० ६५ मत्त ! त्रिह्रा-इन्द्रिय का निग्रह करने में जीव क्या प्राप्त करता है ?

१ स्वतन्त्र—अन विद्यान्तः।

२ परतन्त्र—अ-वतीविकी के विद्यान्तः।

जिह्वा-इन्द्रिय के निग्रह ने वह मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है। वह रस-सम्बन्धी राग-द्वेष के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं करना और पूर्व-वद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण करता है।

सू० ६६. भन्ते ! स्पर्श-इन्द्रिय का निग्रह करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

स्पर्श-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्शों में होनेवाले राग और द्वेष का निग्रह करता है। वह स्पर्श-सम्बन्धी राग-द्वेष के निमित्त से होने वाला कर्म-बन्धन नहीं करता और पूर्व-वद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण करता है।

सू० ६७. भन्ते ! श्रोत्र-विजय से जीव क्या प्राप्त करता है ?

श्रोत्र-विजय से वह क्षमा को उत्पन्न करता है। वह श्रोत्र-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं करता और पूर्व-वद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण करता है।

सू० ६८. भन्ते ! मान-विजय से जीव क्या प्राप्त करता है ?

मान-विजय से वह मृदुता को उत्पन्न करता है। वह मान-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं करता और पूर्व-वद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण करता है।

सू० ६९. भन्ते ! माया-विजय से जीव क्या प्राप्त करता है ?

माया-विजय से वह ऋजुता को उत्पन्न करता है। वह माया-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं करता और पूर्व-वद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण करता है।

सू० ७०. भन्ते ! लोभ-विजय से जीव क्या प्राप्त करता है ?

लोभ-विजय से वह संतोष को उत्पन्न करता है। वह लोभ-वेदनीय कर्म-बन्धन नहीं करता और पूर्व-वद्ध तन्निमित्तक कर्म को क्षीण करता है।

सू० ७१. भन्ते ! प्रेम, द्वेष और मिथ्या-दर्शन के विजय से जीव क्या प्राप्त करता है ?

प्रेम, द्वेष, और मिथ्या-दर्शन के विजय से वह ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की आराधना के लिए उद्यत होता है। आठ कर्मों में जो कर्म-ग्रन्थि<sup>१</sup> (घात्य-कर्म) है, उसे खोलने के लिए वह उद्यत होता है। वह जिसे पहले कभी भी पूर्णतः क्षीण नहीं कर पाया उस अठाईस प्रकार वाले मोहनीय कर्म को क्रमशः सर्वथा क्षीण करता है, फिर वह पाँच प्रकार वाले जानावरणीय, नी प्रकार वाले दर्शनावरणीय और पाँच प्रकार वाले अतराय—इन तीनों विद्यमान कर्मों को एक

१. कर्म-ग्रन्थि—घात्य-कर्म को ग्रन्थि कहा जाता है। घात्य-कर्म चार हैं—  
ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय।

मात्र क्षीण करता है। उसके पदचान् वह अनुत्तर, अनन, इत्यन्त, प्रणिपूज, निराकरण, विमिर रक्षित, विभुद, नाव और अलोच की प्रवाहित करने वाले वेबल-ज्ञान और केवल-ज्ञान का उत्पन्न करता है। जब तक वह स्यागी हाता है तब तक उनके ईर्ष्या-विष-कम का बंध हुआ है। वह बंध पुन-मय हाता है। उसकी स्थिति दो समय की होती है और तीसरे समय में वह निर्जीव हो जाता है। वह कर्म बद्ध होता है, मृष्ट होता है, उत्थ में जाता है, भोगा जाता है नष्ट हो जाता है और अंत में अवयव भी हो जाता है।<sup>१</sup>

सू०७२ वेबली होने के पदचान् वह मेव आयुष्य का निर्वाह करता है। जब अत्रर-मुक्त परिमाण कायु रोप रहती है तब वह माय निराव करने में प्रवृत्त होता है। जब समय सूक्ष्म फिर अग्रविगत नामक मुख्य ध्यान में लीन बना हुआ वह सबसे पहल मनायों का निराव करता है फिर बचन-मान का निरोध करता है, उसके पदचान् आनायान का निरोध करता है। उसके पदचान् स्वल्पज्ञान तक पाँच हस्तचरणों (अ इ उ ए ऋ) का उच्चारण किया जाए उसने काम तक अनुष्ठित जिन अनिवृत्ति नामक मुख्य ध्यान में लीन बना हुआ अनन्तर वेबली, आयुष्य मान और बीच—इन चारों मल्यों को एक मात्र क्षीण करता है।

सू०७३ उसके अनन्तर ही जीवार्थिक और कामल तरीर की पूर्ण अमन्त्रित के रूप में छोड़ कर वह भीन स्थान में पहुँच साकारावमुक्त (ज्ञान प्रवृत्ति वाल) में चित्त हुआ है, मुक्त होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण हुआ है और सब दु-खों का अंत करता है। निज हान में पूर वह अनुपेयी में गति करता है। उसकी गति ऊपर की होती है आत्म प्रदेय जिनमें ही आवाय-प्रदेशों का रचना करने वाली होती है और एक समय की होती है—अनु होती है।

सम्यक्-पराक्रम अध्ययन का यह पुरीन अर्थ अथवा अथवा महवीर के द्वारा आक्याप्त, प्रज्ञानित प्रवृत्ति रक्षित और उत्पन्न है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१ कम-वर्गि मेहन की प्रक्रिया के विशेष विवरण के लिए देखें—  
(उत्तराध्याय—सहित-संस्करण)



## तोसर्वां श्रध्दयन तपो-मार्ग-गति

१. राग-द्वेष से अजित पाप-कर्म को पित्रु तपस्या ने जिस प्रकार क्षीण करता है, उसे एकाग्र-मन होकर मुन ।

२. प्राण-वध, शृपावाद, अदत्त-ग्रहण, मैथुन, परिग्रह और रात्रि-भोजन से विरत जीव अनाश्रव होता है ।

३. पाँच समितियों से समित, तीन गुप्तियों से गृप्त, अकपाय, जितेन्द्रिय, गर्व रहित और निःशल्य जीव अनाश्रव होता है ।

४. इनमे विपरीत आचरण में राग-द्वेष से जो कर्म उपाजित होता है, उसे मिथु जिस प्रकार क्षीण करता है, एकाग्र-मन होकर मुन ।

५. जिस प्रकार कोई बड़ा नालाव जल आने के मार्ग का निरोध करने से, जल को उलीचने में सूर्य के ताप में क्रमशः सूख जाता है—

६. उमी प्रकार संयमी पुरुष के पाप-कर्म आने के मार्ग का निरोध होने से करोड़ों भवों के मचित कर्म तपस्या के द्वारा निर्जोर्ण हो जाते हैं ।

७. वह तप दो प्रकार का कहा है—बाह्य और आन्तरिक ।

बाह्य तप छह प्रकार का है । उमी प्रकार आन्तरिक तप भी छह प्रकार का है ।

८. (१) अनशन (२) ऊनोदरिका (३) मिथ्या-व्रतों (४) रम-परित्याग (५) काय-वर्नेश और (६) सलीनता—यह बाह्य तप है ।

९. अनशन दो प्रकार होता है—इत्वरिक और भरण-काल । इत्वरिक सावकांक्षी और दूसरा निरवकांक्ष होता है ।

१०. जो इत्वरिक तप है, वह मंक्षेप में छह प्रकार का है—(१) श्रेणि-तप (२) प्रतर-तप (३) घन-तप (४) वर्ग तप—

११. (५) वर्ग-वर्ग-तप (६) प्रकीर्ण-तप ।

इत्वरिक तप नाना प्रकार के मनोवांछित फल देने वाला होता है ।

१२ 'भरण-भाल' अनशन के काय-केमटा ने आहार पर सविचार<sup>१</sup> और अविचार<sup>२</sup>—य दो भेद होते हैं ।

१३ भववा इसके दो-दो भेद य होते हैं—सपरिकर्म<sup>३</sup> और अपरिकर्म<sup>४</sup> । अविचार अनशन के निर्हारी<sup>५</sup> और अनिर्हारी<sup>६</sup>—ये दो भेद होते हैं । आहार का त्याग दाना (अविचार और अविचार तथा सपरिकर्म और अपरिकर्म) य हुआ है ।

१४ इन्द्रिय, शरीर काय और पर्यायी की दृष्टि से अवमीक्ष्य (अनोन्विष्ट) लक्षण में पाँच प्रकार का है ।

१५ जिसका जितना आहार है उतना कम खाता है, कम से कम एक सामान्य-रूप खाता है और अधिक में अधिक एक बरतन कम खाता है, उसके इन्द्रिय में अवमीक्ष्य रूप होता है ।

१६ ग्राम नगर राजधानी निषध, आरुद्र, पत्नी, भेड़ा, बचट, प्रोचमुच पलन, मण्डन, सुबाध—

१७ आसन-नर, विहार, अभिषेक, समान चाय, स्थली, सेवा का निविर, बाध, बचट, बोट—

१८ पाड़ा, पत्नियाँ घर—इनमें लक्षवा इस प्रकार के अन्य दोषा में से पूर्व निषध के अनुसार निर्धारित क्षेत्र में बिना के किए जा सकता है । इस प्रकार यह क्षेत्र में अवमीक्ष्य रूप होता है ।

१९ (प्रकाशान्तर से) पैदा भट्टे-पेटा, योग्यविद्या, पशु-वीथिया सम्भूतवाता और आसन-गत्या-वस्थापना—यह सब प्रकार का क्षय से अवमीक्ष्य रूप होता है ।

२० विषय के चार प्रहृण य जिनका अनिष्ट-काम हूँ उसमें भिन्ना के लिए जाऊँगा, अन्यथा नहीं—इस प्रकार चर्चा करने वाले भुक्ति के बाल से अवमीक्ष्य रूप होता है ।

१ सविचार—ममनाममन रहित ।

२ अविचार—ममनाममन रहित ।

३ सपरिकर्म—पुष्पा या सत्तेलना रहित ।

२०६

४ अपरिकर्म—पुष्पा या सत्तेलना रहित ।

१२३

५ निर्हारी—उपासक से आहार किया जानेवाला अनशन ।

६ अनिर्हारी—उपासक में किया जाने वाला अनशन ।

२१. अथवा कुछ न्यून तीगरे प्रहर (चतुर्थ भाग आदि न्यून प्रहर) में जो भिक्षा की एषणा करता है, उसे (दस प्रकार) कान में अवमोदयं तप होता है।

२२. स्त्री अथवा पुरुष, धनंशुत अथवा अननंशुत, अमृत वय याते, अमुक वस्त्र वाले—

२३. अमुक विशेष प्रकार की दद्या, वरुण या भायम् गुणन दाता में भिक्षा ग्रहण करेगा, अन्यथा नहीं—दस प्रकार चर्या करने वाले मुनि के भाय में अवमोदयं तप होता है।

२४. द्रव्य, धेनु, काल और भाव में जो पर्याप्त (भाव) कहे गए हैं, उन सबके द्वारा अवमोदयं करने वाला भिक्षु परमवन्द्य होता है।

२५. आठ प्रकार के गोचराग्र तथा सान प्रकार की एषणाएँ और जो अन्य अभिप्रहृ हैं, उन्हें भिक्षा-चर्या कहा जाता है।

२६. दूध, दही, घृत आदि प्रणीत पान-भोजन और रमों के वर्जन को रम-विवर्जन तप कहा जाना है।

२७. आत्मा के लिए मुक्तकर वीरासन आदि उत्कट आसनो का जो अभ्यास किया जाता है उसे कायकमेध तप कहा जाता है।

२८. एकात, जहाँ कोई आना-जाना न हो और स्त्री-पशु आदि में रहित शयन और आसन का सेवन करना विविधत-भयनासन (मन्त्रीनता) तप है।

२९. यह बाह्य तप संक्षेप में कहा गया है। अब मैं अनुक्रम में आभ्यन्तर तप को कहूँगा।

३०. प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और द्युःसर्ग—यह (छह प्रकार का) आभ्यन्तर तप है।

३१. आलोचनाहं आदि जो दस प्रकार का प्रायश्चित्त है, जिसका भिक्षु सम्यक् प्रकार से पालन करता है, उसे प्रायश्चित्त कहा जाता है।

३२. अभ्युत्थान (खड़े होना), हाथ जोड़ना, आमन देना, गुरुजनो को भक्ति करना और भावपूर्वक श्रुश्रूपा करना विनय कहलाता है।

३३. आचार्य आदि सम्बन्धी दस प्रकार के वैयावृत्य का यथाशक्ति आसेवन करने को वैयावृत्य कहा जाता है।

३४. स्वाध्याय पाँच प्रकार का होता है—

(१) वाचना (अध्यापन)

(२) पृच्छना

- (१) परिवर्तना (पुनरावृत्ति)
- (४) अनुप्रेषा (अव-चिन्तन)
- (५) धर्म-कथा ।

३५. सुप्रमाहित मुनि आत्मा और रौद्र ध्यान को छोड़ कर धम्म और सुप्रमा  
ध्यान का अभ्यास करे । बुद्ध-जन उसे ध्यान कहते हैं ।

३६. सोने, बठने या लड़े रहने के समय जो बिधु काया को नहीं हिलाता-  
जुलाता उसके काया की चेष्टा का जो परिणाम होता है उसे मृतसर्प कहा  
जाता है । वह आत्म-तप का सदा प्रकार है ।

३७. इस प्रकार का पण्डित मुनि दोनों प्रकार के तपों का सम्यक रूप से  
आचरण करता है, वह मीठा ही समस्त सत्कार से युक्त हो जाता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## इकतीसवाँ अध्यायन

### चरण-विधि

१. श्व मे जीव को गुप्त देने वाली उस चरण-विधि का कथन करेंगा जिसका आचरण कर वृद्ध मे जीव मंगार-नागर को तर गए ।
२. भिक्षु एक स्थान मे निवृत्ति करे और एक स्थान मे प्रवृत्ति करे । अमंथमे से निवृत्ति करे और मयमे मे प्रवृत्ति करे ।
३. राग और द्वेष—ये दो पाप, पाप-कर्म के प्रवर्तक हैं । जो भिक्षु इनका मदा निरोध करता है, वह ममार मे नहीं रहता ।
४. जो भिक्षु तीन-तीन दण्डों<sup>१</sup>, गौरवों<sup>२</sup> और शल्यों<sup>३</sup> का मदा त्याग करता है, वह संसार मे नहीं रहता ।
५. जो भिक्षु देव, नियञ्च और मनुष्य-सम्बन्धी उपसर्गों को सदा सहता है, वह ममार मे नहीं रहता ।

१. दंड का अर्थ है—आत्मा को दडित करने वाली प्रवृत्ति । ये तीन हैं—

१. मनोदंड—मन का दुष्प्रणिधान ।

२. वचोदंड—वचन की दुष्प्रयुक्तता ।

३. कायदंड—काया की दुष्प्रवृत्ति ।

२. गौरव का अर्थ है—अभिमान से उत्पन्न चित्त की अवस्था । उसके तीन प्रकार हैं—

१. श्रद्धि गौरव—ऐश्वर्य का अभिमान ।

२. रम गौरव—रसों का अभिमान ।

३. सात गौरव—मुक्तों का अभिमान ।

३. शल्य का अर्थ है—अंतर मे घुसा हुआ दोष । शल्य तीन हैं—

१. मायाशल्य—मायापूर्ण आचरण ।

२. निदानशल्य—भौतिक उपलब्धि के लिए धर्म का विनिमय ।

३. मिथ्यादर्शनशल्य—आत्मा का विपरीत दृष्टिकोण ।

१. वा मिश्र विक्रयार्थों, ब्यापारों, सहायों तथा भातों और रीतों—इन दो ध्याना वा मन्त्र ध्यान करता है वह समार में नहीं रहता ।
७. जो मिश्र वस्तुओं और समितियों के ध्यान में, दृष्टि विषय और निवास के परिहार में मन्त्र ध्यान करता है वह समार में नहीं रहता ।
८. जो मिश्र छद्म मन्त्रार्थों, छद्म जीवनिकामा और आहार के (विधि-विशेष के) छद्म कारणों में मन्त्र ध्यान करता है वह समार में नहीं रहता ।
९. जो मिश्र आहार-महत्त्व और ध्यान-मन्त्रार्थों नाम प्रतिमाया में तथा सात अवस्थाओं में सदा ध्यान करता है वह समार में नहीं रहता ।
१०. जो मिश्र आठ मन्त्र-ध्याना में, ब्रह्मचर्य की भी श्रुतिगा में और वन प्रचार के मिश्र-यम में सदा ध्यान करता है वह समार में नहीं रहता ।
११. जो मिश्र उपायवा की मन्त्र प्रतिमाया तथा मिश्रवा की मन्त्र प्रतिमाओं में सदा ध्यान करता है वह समार में नहीं रहता ।
१२. जो मिश्र वेद प्रतिमाया चौदह जीवन-मन्त्रों और पञ्च परमा-धर्मिक देवा में मन्त्र ध्यान करता है वह समार में नहीं रहता ।
१३. जो मिश्र नावा-चौदशक और मन्त्र प्रचार के अन्तर्गम में सदा ध्यान करता है वह समार में नहीं रहता ।
१४. जो मन्त्र प्रचार के ब्रह्मचर्य उन्नीस नाम-अध्ययन और भीत अगमाधि-स्थानों में सदा ध्यान करता है वह समार में नहीं रहता ।
१५. जो मिश्र द्वादश प्रचार के चरम-जीवार्थ और आदिम परीषदा में मन्त्र ध्यान करता है वह समार में नहीं रहता ।
१६. जो मिश्र मन्त्रप्रचार के तर्ज अध्ययनों और जीवार्थ प्रचार के देवा में सदा ध्यान करता है वह समार में नहीं रहता ।

१. सत्ता—आसक्ति । वह चार प्रकार की है—आहार-सत्ता, भय-सत्ता, संयुक्त सत्ता और परिग्रह सत्ता ।

२. आहार के विधि विशेष के लिए देखें—२६१-२६४ ।

३. प्रस्तुत अध्ययन के नीचे दत्त से नीचे उन्नीस के अन्तर्गत आठ दृष्ट संवादात्मक विधियों के विवरण के लिए देखें - परिशिष्ट ।

४. नावा-चौदशक—मन्त्रप्रचार के प्रथम अष्टमन्त्र हैं सोलह अध्ययन ।

५. चरम-जीव—आदिम जीवार्थों से प्रारंभ करने वाले शेष ।

१७. जो भिक्षु पचीस भावनाओं और दशाश्रुतस्कय, व्यवहार और बृहत्कल्प के छत्वीस उद्देशों में सदा यत्न करता है वह संसार में नहीं रहता ।
१८. जो भिक्षु साधु के मत्तार्हिन गुणों और अठाईस आचार-प्रकल्पों में सदा यत्न करता है वह संसार में नहीं रहता ।
१९. जो भिक्षु उनतीस पाप-श्रुत-प्रमगों और तीस मोह के स्थानों में सदा यत्न करता है वह संसार में नहीं रहता ।
२०. जो भिक्षु सिद्धों के इक्कीस आदि-गुणों,<sup>१</sup> बत्तीस योग-मंगलों<sup>२</sup> तथा तेतीस आशातनाओं<sup>३</sup> में सदा यत्न करना है वह संसार में नहीं रहता ।
२१. जो पण्डित भिक्षु इस प्रकार इन स्थानों में सदा यत्न करता है वह क्षीघ्र ही ममस्त संसार में मुक्त हो जाता है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ॥

१. देखें—उत्तराध्ययन—सटिप्पण-संस्करण ।

२. मन वचन और काया के व्यापार को 'योग' कहते हैं । यहाँ प्रशस्त योगों का ही ग्रहण किया गया है । योग संग्रह का अर्थ है 'प्रशस्त योगों का एकत्रीकरण' । विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तराध्ययन—सटिप्पण-संस्करण ।

३. आशातना का अर्थ है—अविनय, अशिष्टता या अभद्र व्यवहार । दैनिक व्यवहारों के आधार पर उसके तेतीस विभाग किए गए हैं । विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तराध्ययन—सटिप्पण-संस्करण ।

## बत्तीसवीं अध्यायन

### प्रमाद-स्थान

१. अवादि-कामीन सब दुःखों और उनके कारणों (कषाय-आदि) के मोक्ष का जो उपाय है वह मैं कह रहा हूँ। वह व्यासके लिए हितकर है, अनेक गुण प्रतिपूषित होकर मोक्ष के लिए युक्त।
२. सम्पूर्ण ज्ञान का प्रकाश, अज्ञान और मोह का नाश तथा राग और द्वेष का नाश होने से आत्मा एकान्त मुक्तमय मोक्ष को प्राप्ति पाता है।
३. पुत्र और स्वामिन् मुनियों की सेवा करना, अज्ञानी-जनों का दूर से ही वजन करना, स्वाध्याय करना, एकान्तवास करना, भूख और अर्थ का चिन्तन करना तथा वैराग्य रखना, यह मोक्ष का माध है।
४. समाधि चाहने वाला तपस्वी ध्यान परिमित्र और ऐश्वर्यीय आहार को इच्छा करे। जीव आदि वशात के प्रति निपुण बुद्धि वाले गीतार्थ को सहायक बनाए और स्त्री, पशु, मनुष्य से रहित घर में रहे।
५. यदि अपने में अधिक गुणवान् या अपने समान निपुण सहायक न मिले तो वह पापी का वजन करता हुआ, विपत्तियों में अनागत रह कर अकेला ही विहार करे।
६. जैसे बलाका जगहे से उत्पन्न होती है और बन्धा बन्धन से उत्पन्न होता है उसी प्रकार तृष्णा मोह से उत्पन्न होती है और मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है।
७. राग और द्वेष कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है और वह जन्म-मरण का मूल है। जन्म मरण को दुःख का मूल कहा गया है।
८. जिसके मोह नहीं है, उसने दुःख का नाश कर दिया। जिसके तृष्णा नहीं उसने मोह का नाश कर दिया। जिसके मोह नहीं है, उसने तृष्णा का नाश कर दिया। जिसके पाप कुछ नहीं हैं उसने लोभ का नाश कर दिया।
९. राग, द्वेष और मोह का समूल उन्मूलन चाहने वाले मुनि को जिन जिन उपायों का आलम्बन लेना चाहिए उन्हें मैं क्रमशः कहूँगा।



१०. रमो का अधिक मात्रा में भोजन नहीं करना चाहिए। ये प्रायः मनुष्य की धातुओं को उद्दीप्त करते हैं। जिसकी धातुएं उद्दीप्त होती हैं उसे काम-भोग मत्ताते हैं, जैसे फल बाने वृक्ष को पशी।

११. जैसे पवन के शोकों के नाथ प्रचुर दहन बाने वन में लगा हुआ दावानल उपशान्त नहीं होता, उसी प्रकार दम-दम कर गाने बाने की उन्मियाग्नि (कामाग्नि) शान्त नहीं होती। इसलिए अधिक मात्रा में भोजन करना किसी भी ब्रह्मचारी के लिए हितकर नहीं होता।

१२. जो विविक्त-धर्म्या और आगम में नियमित होने हैं, जो तम गाने हैं और जितेन्द्रिय होने हैं उनके चित्त का राग-द्वेष जैसे ही आशान्त नहीं कर सकता जैसे औषध में पराजित रोग देश को।

१३. जैसे बिहनी की बस्ती के पाम गृहों का रहना अच्छा नहीं होता उसी प्रकार स्त्रियों की बस्ती के पाम ब्रह्मचारी का रहना अच्छा नहीं होता।

१४. उत्तमस्त्री श्रमण स्त्रियों के रूप, नायण, ध्यान, शम्य, मधुर आवाप, इन्द्रिय और चित्त के चित्त में रमा कर उन्हें देखने का सकल न करे।

१५. जो महा ब्रह्मचर्य में रत हैं उनके लिए स्त्रियों को न देखना, न चाहना, न चिन्तन करना और न वर्णन करना हितकर है तथा धर्म-ध्यान के लिए उपयुक्त है।

१६. यह ठीक है कि तीन गुणियों में गुण युक्तियों को विद्विषित देखिया भी विचलित नहीं कर सकती, फिर भी भगवान् ने एकान्त हित की दृष्टि से उनके विविक्त-धर्म को प्रशस्त कहा है।

१७. मोक्ष चाहने वाले ममार-मीर एव धर्म में स्थित मनुष्य के लिए लोक में और कोई वस्तु ऐसी दुस्तर नहीं है जैसी दुस्तर अज्ञानियों के मन को हरने वाली स्त्रियाँ हैं।

१८. जो मनुष्य उन स्त्री-विषयक आसक्तियों का पार पा जाना है, उनके लिए दोष सारी आसक्तियाँ जैसे ही मुग्ध में पार पाने योग्य हो जाती हैं जैसे महासागर का पार पाने वाले के लिए गंगा जैसी बड़ी नदी।

१९. सब जीवों के, और क्या देवताओं के भी जो कुछ कायिक और मानसिक दुःख है वह काम-भोगों की नतत अभिलाषा से उत्पन्न होता है। वीतराग उन दुःख का अन्त पा जाता है।

२०. जैसे किपाक फल खाने के समय रस और वर्ण में मनोरम होते हैं और परिपाक के समय क्षुद्र-जीवन का अन्त कर देते हैं, काम-गुण भी विपाक काल में ऐसे ही होते हैं।

२१ ममाधि चाहने वाला धर्मवी धर्मध इन्द्रिया के जो मनाज विषय हैं उनकी आर भी धन न करे—राम न करे और जा अमनोज विषय हैं उनकी और भी धन न करे—हेय न करे ।

२२ यशु का विषय रूप है । जो रूप राम का हेतु हुआ है उन मनोज कहा जाता है । जो हेय का हेतु होता है उसे अमनोज कहा जाता है । जो मनोज और अमनोज तथा न ममान रहता है वह भीतराम होता है ।

२३ यशु रूप का ग्रहण करता है । रूप यशु का शास्त्र है । जो रूप राम का हेतु होता है उस मनोज कहा जाता है । जो हेय का हेतु होता है उसे अमनोज कहा जाता है ।

२४ जो मनोज रूपी में लीज आसक्ति करता है, वह अकाल न ही विनाश का प्राप्त होता है, जैसे—प्रवास-सागुप वसता रूप में आसक्त हावर घटनु को प्राप्त होता है ।

२५ जो अमनोज रूप में लीज हेय करता है वह अपने पुरम दाप स उसी दाप बु ध की प्राप्त होता है । रूप उसका कोई अपराध नहीं करना ।

२६ जो मनीहर रूप में एकान्त अनुरक्त हुआ है और अमनोज रूप में हेय करना है, वह भक्तानी बु काश्मक पीड़ा को प्राप्त होता है । हमन्ति विरक्त भुनि उनमें निवृत्त नहीं होता ।

२७ मनोज रूप का अभिभाषा के पीछे यन्त्रे बाणा पुरम अनेक प्रकार के यन्त्र-व्यावर जीवा की हिंसा करता है । यन्त्र प्रयाजन की प्रधान मानने वाला वह यन्त्र-युक्त भक्तानी पुरम नामा प्रचार न उन चराचर जीवा को परिशुद्ध और पीडित करता है ।

२८ रूप में अनुराम और यमत्व का भाव होने के कारण मनुष्य उसका उत्पन्न, रक्षण और व्यापार करता है । उसका व्यव और विवाग हुआ है । इन सब में उसे मुक्त नहीं है ? और क्या उसके उपवास-काक न भी उसे मुक्ति नहीं मिलनी ।

२९ जो रूप में अनुरक्त होता है और उसके परिग्रह न आसक्त-उपमन होता है उस मनुष्य नहीं मिलनी । वह असन्तुष्टि के दाप स दु भी और मोम-प्रस होकर दूसरा की रूपान् यन्त्र पुरा लेता है ।

३० वह तप्या में पराजित हावर चारी करता है और रूप-निष्कल्प में अनुरक्त होता है । मनुष्य-दाप न कारण उसका भावा-रुपा की दृष्टि हीनी है । भावा-रुपा का प्रयोग करने पर भी वह दु ध में मुक्त नहीं होता ।

३१. असत्य बोलने के पश्चात्, पहले और बोलने समय वह दुर्गा होता है। उसका पर्यवसान भी दुःखमय होता है। इस प्रकार वह रूप में अतृप्त होकर चोरी करना हुआ दुःखी और आश्रय-हीन हो जाता है।

३२. रूप में अनुरक्त पुरुष को उक्त कथनानुसार कदाचित् किंचित् मुख भी कहाँ में होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख प्राप्त करता है उस उपभोग में भी अतृप्ति का दुःख बना रहता है।

३३. इसी प्रकार जो रूप में द्वेष रखता है वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता है। प्रद्वेष-युक्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म का बंध करता है। वही परिणाम-काल में उसके लिए दुःख का हेतु बनता है।

३४. रूप से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त बन जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल से लिप्त नहीं होता वैसे ही वह ससार में रह कर भी अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं होता।

३५. श्रोत्र का विषय शब्द है। जो मब्द राग का हेतु होता है उसे मनोज्ञ कहा जाता है। जो द्वेष का हेतु होता है उसे अमनोज्ञ कहा जाता है। जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दों में समान रहता है वह वीतराग होता है।

३६. श्रोत्र शब्द का ग्रहण करता है। शब्द श्रोत्र का ग्राह्य है। जो शब्द राग का हेतु होता है उसे मनोज्ञ कहा जाता है। जो द्वेष का हेतु होता है उसे अमनोज्ञ कहा जाता है।

३७. जो मनोज्ञ शब्दों में तीव्र आसक्ति करता है वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है। जैसे—शब्द में अतृप्त बना हुआ रागातुर मुग्ध हरिण नामक पशु मृत्यु को प्राप्त होता है।

३८. जो अमनोज्ञ शब्द में तीव्र द्वेष करता है वह अपने दुर्दम दोष से उसी क्षण दुःख को प्राप्त होता है। शब्द उसका कोई अपराध नहीं करता।

३९. जो मनोहर शब्द में एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर शब्द में द्वेष करता है वह अज्ञानी दुःखात्मक पीडा को प्राप्त होता है। इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता।

४०. मनोहर शब्द की अमिलाया के पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के त्रस-स्थावर जीवों की हिसा करता है। अपने प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह क्लेश-युक्त अज्ञानी पुरुष नाना प्रकार से उन चराचर जीवों को परितप्त और पीड़ित करता है।

४१. शब्द में अनुराग और समत्व का भाव होने के कारण मनुष्य अपना उत्पादन, रक्षण और व्यापार करता है। उसका स्वयं और विभाग होता है। इन मन्त्रों में मुख कहाँ है ? और क्या, उनमें उपवास काय में भी उसे सृष्टि नहीं मिलती।

४२. जो शब्द में अनुपलब्ध होता है उसका परिग्रहण में बाधक उपसक्त होता है, उसे मनुष्य नहीं मिलती। वह असंतुष्टि के साथ से दुःखी और कामप्रसक्त होकर अपने ही गन्धवान् वस्तु में चुरा जाता है।

४३. वह सृष्टि से पराजित होकर बोरी करता है और शब्द परिग्रहण में अनुपलब्ध होता है। असंतुष्टि-साथ के कारण उनमें माया-रूपा की रक्ति होती है। माया-रूपा का प्रयोग करने पर भी वह दुःख में मुक्त नहीं होता।

४४. अनाद्य बालके के पदवान् पहले और बालके समय वह दुःखी होता है। उसका पदवर्मान भी दुःखमय होता है। इन प्रकार वह शब्द में अनुपलब्ध होकर चारी करता हुआ, दुःखी और आध्यात्मिक हो जाता है।

४५. शब्द में अनुरक्त पुरुष को उक्त कथनानुसार चराचिन् किंचिन् मुक्त भी कहाँ से होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख प्राप्त करता है, उन उपभोग में भी असंतुष्टि का दुःख बना रहता है।

४६. इसी प्रकार जो शब्द में होय रहता है, वह उत्तरीतर अनेक दुःखों को प्राप्त होता है। प्रत्येक-मुक्त जिस बाधा व्यक्तित्व कम या बाध करता है। वही परिणाम-बाल में उसके लिए दुःख का हेतु बनता है।

४७. शब्द से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त बन जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र पत्र में स्थित नहीं होता, वैसे ही वह मंसार में रह कर भी अनेक दुःखों की परवर्षा से स्थित नहीं होता।

४८. प्राण का विषय गन्ध है। जो गन्ध राग का हेतु होता है उसे मनोज कहा जाता है, जो द्वेष का हेतु होता है उसे अमनोज कहा जाता है। जो मनाज और अमनोज गन्धों में स्थान रहता है वह बीतराग होता है।

४९. प्राण गन्ध का ग्रहण करता है। गन्ध प्राण का प्राण है। जो गन्ध राग का हेतु होता है उसे मनाज कहा जाता है। जो द्वेष का हेतु होता है उसे अमनोज कहा जाता है।

५०. जो मनोज गन्ध में शीघ्र आसक्ति करता है वह अनाद्य में ही विनाश को प्राप्त होता है। जैसे गन्ध-मनो आदि जीवजिवाँ के गन्ध में छुट बिल से निरुत्तगा हुआ रासातुर गर्व।



६१ रमना का विषय रम है। जो रम राग का अनु भाग है उसे मनात्र कहा जाता है जो द्वेष का अनु भाग है उसे अमनोत्र कहा जाता है। जो मनात्र और अमनोत्र रसों में समान रहता है वह बीनराग होता है।

६२ रमना रम का ग्रहण करती है। रम रसना का धारा है। जो रम राग का अनु भाग है उसे मनात्र कहा जाता है। जो द्वेष का अनु भाग है उसे अमनात्र कहा जाता है।

६३ जो मनात्र रसों में तीव्र आकर्षण करना है वह अस्वस्व म ही बिनाग का प्राप्ति होता है, जब—मान माने में कुछ बना हुआ रागातुर भाव्य कटि की सीका जाता है।

६४ जो अमनात्र रम में तीव्र द्वेष करना है वह अस्वस्व दुःख क्षय में उषी क्षय दुःख की प्राप्ति होता है। रम अस्वस्व की अस्वस्व मही करना।

६५ जो मनोहर रम में एकाग्र अनुसन्ध रहता है और अमनात्र रम में द्वेष करता है वह अमनात्र दुःखायक बीका को प्राप्ति होता है। इसका विरक्त भूमि समझ लिया नहीं होगा।

६६ मनोहर रम की आकर्षण का पीछे चलने वाला पुण्य अनेक प्रकार के मय-स्वाधर बीकों की शिक्षा करता है। अस्वस्व प्रयोजन का प्रयोजन मानने वाला वह अस्वस्व अस्वस्व पुण्य माना अस्वस्व क उस अस्वस्व बीकों का परिणाम और पीछे करता है।

६७ रम में अनुसन्ध और अमनात्र का आम होने का कारण अनुसन्ध उसका उत्पन्न रस और व्यापार करना है। उसका अस्वस्व और विषय होता है। इस मय में उस भुक्त कहा है? और क्या, हमने उपवास-न्याय में भी उस भुक्त नहीं मिली।

६८ जो रस में अनुसन्ध होता है और उसका परिणाम में अमनात्र उत्पन्न होता है उसे अनुसन्ध कहा जाता है। वह अनुसन्ध का राग में भुक्त और अमनात्र हाकर अस्वस्व की रमना अनुसन्ध भुक्त होता है।

६९ वह भुक्त म अस्वस्व हाकर आती करता है और रम-परिणाम में अनुसन्ध होता है। अनुसन्ध-भाव का कारण उसके आकाश-भाव की दृष्टि होता है। आकाश-भाव का प्रभाव करने पर भी वह भुक्त म भुक्त नहीं होता।

७० अमनात्र आकाश का अस्वस्व पहा और अमनात्र मय वह भुक्त होता है। उसका अमनात्र भी अनुसन्ध होता है। उन प्रकार वह रम में अनुसन्ध होकर आती करता हुआ भुक्त और आकाश होता जाता है।

७१. रस में अनुरक्त पुरुष को उक्त कथनानुसार कदाचित् किंचित् सुख भी कहीं से होगा ? जिम उपभोग के लिए वह दुःख प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी अतृप्ति का दुःख बना रहता है ।

७२. इसी प्रकार जो रस में द्वेष रखता है वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता है । प्रद्वेष-युक्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म का वन्ध करता है । वही परिणाम-काल में उसके लिए दुःख का हेतु बनता है ।

७३. रस में विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त बन जाता है । जैसे कमलिनी का पत्र जल में लिप्त नहीं होना वैसे ही वह ममार में रह कर भी अनेक दुःखों की परम्परा से लिप्त नहीं होता ।

७४. काय का विषय स्पर्श है । जो स्पर्श राग का हेतु होता है उसे मनोज कहा जाता है, जो द्वेष का हेतु होता है उसे अमनोज कहा जाता है । जो मनोज और अमनोज स्पर्शों में मग्न रहता है वह वीतराग होता है ।

७५. काय स्पर्श का ग्रहण करना है । स्पर्श काय का ग्राह्य है । जो स्पर्श राग का हेतु होता है उसे मनोज कहा जाता है, जो द्वेष का हेतु होता है उसे अमनोज कहा जाता है ।

७६. जो मनोज स्पर्शों में तीव्र आश्रित करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है । जैसे घटियाल के द्वारा पकटा हुआ, अरण्य-जलाशय के भीतल जल के स्पर्श में मग्न बना गगातुर भैंसा ।

७७. जो अमनोज स्पर्श में तीव्र द्वेष करता है वह अपने दुर्दम दोष में उत्तीर्ण दुःख को प्राप्त होता है । स्पर्श उमका कोई अपराध नहीं करता ।

७८. जो मनोहर स्पर्श में एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर स्पर्श से द्वेष करता है वह अज्ञानी दुःखात्मक पीडा को प्राप्त होता है । इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता ।

७९. मनोहर स्पर्श की अभिलाषा के पीछे चलने वाला पुरुष अनेक प्रकार के त्रस-स्यावर जीवों की हिंसा करता है । अपने प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह क्लेशयुक्त अज्ञानी पुरुष नाना प्रकार के उन चराचर जीवों को परितप्त और पीड़ित करता है ।

८०. स्पर्श में अनुराग और ममत्व का भाव होने के कारण मनुष्य उमका उत्पादन, रक्षण और व्यापार करता है । उमका व्यय और वियोग होता है । इन सब में उसे सुख कहाँ है ? और क्या, उसके उपभोग-काल में भी उम तृप्ति नहीं मिलती ।

८१ जो स्वप्न में अनुपलब्ध होता है और उसके परिग्रहण में आसक्त-उपमग्न होता है उस सत्पुरुष नहीं मिलती। वह अनपुष्टि के दोष से दुःखी और लोभ-घस्त होकर दूसरे की स्वप्नवात् वस्तुओं पुरा नेता है।

८२ वह तप्या से पराजित होकर थारी बरणा है और स्वप्न-परिग्रहण में अनुपलब्ध होता है। अनपुष्टि-दोष के कारण उसका भावा भूषा की बलि होती है। भावा-भूषा का प्रयोग करने पर भी वह दुःख में भुक्त नहीं होगा।

८३ असत्य सोमने के परधान, पहन और बीजने समय वह दुःखी होता है। उषा पयवसान भी भुक्त-भय होता है। इन प्रकार वह स्वप्न में अनुपलब्ध होकर खोरी करता हुआ दुःखी और आभयहीन हो जाता है।

८४ स्वप्न में अनुपलब्ध पुरुष को उक्त कवनानुसार कर्णाक्षित किञ्चित् सुख भी वही में होगा ? जिस उपभोग के लिए वह दुःख प्राप्त करता है, उस उपभोग में भी अनुपलब्धि का दुःख बना रहता है।

८५ इसी प्रकार जो स्वप्न में द्वेष रखता है वह उत्तरीतर अनक दुःख की प्राप्ति होता है। प्रद्वेष-मुक्त चित्त वाला व्यक्ति कम का शय्य करता है। वही परिणाम-काल में उसके लिए दुःख का हेतु बनता है।

८६ स्वप्न से विरक्त अनुपलब्ध लोक-मुक्त बन जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र पल में लिपट नहीं होता वैसे ही वह संसार में रह कर भी मनोदुःखों की परम्परा से लिपट नहीं होता।

८७ मन का विषय भाव (अभिप्राय) है। जो भाव राम का हेतु जाना है उसे मनोज्ञ कहा जाता है, जो द्वेष का हेतु होता है उसे अमनोज्ञ कहा जाता है। जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ भावा में समाप्त रहता है वह बीजराग होता है।

८८ मन भाव का बह्वच करता है। भाव मन का साध है। जो भाव राम का हेतु जाना है उसे मनोज्ञ कहा जाता है। जो द्वेष का हेतु होता है उसे अमनोज्ञ कहा जाता है।

८९ जो मनोज्ञ भावों में तीव्र आनन्दित करता है वह अपाल में ही विनाश को प्राप्ति होता है, जैसे हविनी के पत्र में साकृत् काम-मुक्तों में गड बना हुआ हाथी।

९० जो अमनोज्ञ भाव से तीव्र द्वेष करता है वह अपने दुःख दोष में उसी पल दुःख की प्राप्ति होता है। भाव उसका कोई अपराध नहीं करता।



६१. जो मनोहर भाव में मगान्म अनुरक्त होता है और अमनोहर भाव में में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःखदायक पीड़ा को प्राप्त होता है। इन्द्रिय विराजित मुनि उनमें लिप्त नहीं होता।

६२. मनोहर भाव को अभिप्राया के पीछे चली चला पुण्य अनेक प्रकार के प्रसन्नादायक जीवों की हिमा करता है। अपने प्रयोजन को प्रधान मानने वाला वह संशयपूर्ण अज्ञानी पुण्य नाना प्रकार से इन पवनर जीवों को पश्चिन्ना और पश्चिन्ना करता है।

६३. भाव में अनुरक्त और मगान्म का भाव होने के कारण मनुष्य उमरा उत्तमरत, रक्षण और व्यापार करता है। उमरा रत और विद्याम होता है। इन सब में उसे सुख कहा है। और क्या, उमरा उत्तमर-माल में भी उसे सुख नहीं मिलती।

६४. जो भाव में अनुरक्त होता है और उमरा पश्चिन्ना में मगान्म-उमरत होता है उसे मनुष्य नहीं मिलती। वह अनुरक्त के पीछे में दुःख और लोभ-प्रसन्ना होता है मगान्म ही पश्चिन्ना पुण्य होता है।

६५. वह मगान्म में पश्चिन्ना होता है और मगान्म-उमरत में अनुरक्त होता है। अनुरक्त-दोष के कारण उमरा मगान्म-उमरा की यदि होती है। मगान्म-उमरा का प्रयोग करने पर भी वह दुःख में सुख नहीं होता।

६६. अमन्य बोलने के पश्चात्, पहले और बोलने मगान्म वह दुःखी होता है। उमरा मगान्म भी दुःखमय होता है। इन प्रकार उन मगान्म में अनुरक्त होकर चोरी करता हुआ दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है।

६७. भाव में अनुरक्त पुण्य को उमरा कवनानुसार कदाचित् पश्चिन्ना मुन्य भी कहा में होगा। जिस उपयोग के लिए वह दुःख प्राप्त करता है, उस उपयोग में भी अनुरक्त का दुःख बना रहता है।

६८. उमरा प्रकार जो भाव में द्वेष रहता है वह उत्तमोत्तर अनेक दुःखों को प्राप्त होता है। वह प्रद्वेष-मुक्त चित्त वाला व्यक्ति कर्म का बन्धन करता है। वही परिणाम-काल में उसके लिए दुःख का हेतु बनता है।

६९. भाव में विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त बन जाता है। जैसे पश्चिन्ना का पत्र जल में लिप्त नहीं होता वैसे ही वह मगान्म में रहकर भी अनेक दुःखों को परमरा में लिप्त नहीं होता।

१००. इन प्रकार इन्द्रिय और मन के विषय रागी मनुष्य के लिए दुःख के हेतु होते हैं। वे वीतराग के लिए कभी कित्ति भी दुःखदायी नहीं होते।

१०१ काम-भोग-समता के हेतु भी नहीं होते और विचार के हेतु भी नहीं होते । वा पुरुष उनका प्रति द्वेष या राग करता है वह तद्विषयक मोह के कारण विचार को प्राप्त होता है ।

१०२ जो काम-भोगों में भाग्यमान होता है वह भोग मान, माया, क्रोध, पुण्यमा भवति, रति हास्य भय, मोह, पुण्य-वे, स्त्री-वे, नपुंसक वेद तथा हृष्य, विवाद आदि विविध भाव—

१०३ इन प्रकार अनेक प्रकार के विकारों तथा उनमें उत्पन्न भव्य परिणामों को प्राप्त होता है और वह कल्याण, दीन, सज्जित और सप्रिय बन जाता है ।

१०४ 'यह मेरी धारीरिक सेवा करेगा'—इस निष्ठा के योग्य सिद्ध भी नहीं दृष्टा न करे । मायु बन कर मैंने विनया कष्ट स्वीकार किया—इस प्रकार अनुगमन व भोग-सुखानु हाकर तब के एक की दृष्टा न करे । वा एसी दृष्टा करता है वह इन्द्रियरपी भोरा वा कथवर्ती बना हुआ अवरिमित प्रकार के विकारों का प्राप्त होता है ।

१०५ विकारों की प्राप्ति के कारण उनके ममत्ता उमे माह-महात्म्य व दुर्बाले वाले विषय-संबन्ध के प्रयोग उत्पन्न होते हैं । फिर वह मूल की प्राप्ति और दुःख के विनाश के लिए अनुरक्त बन कर उन प्रयाग की पुनि के लिए उत्थन करता है ।

१०६ अितने प्रकार के मूल यदि इन्द्रिय विषय है व सब विरक्त मनुष्य के मन में मनाजता या सममोजता उत्पन्न नहीं करत ।

१०७ 'अपने राग-द्वेषात्मक सवत्सही सब दीपी व मूल हैं'—जो इस प्रकार के चिन्तन में उत्थन होता है तथा इन्द्रिय विषय दीपी के मूल नहीं है —इस प्रकार का संकल्प करता है, उनके मन व समता उत्पन्न होती है । उनमें उत्तरी काम-भोगों में होने वाली सुस्था प्रयोग हो जाती है ।

१०८ फिर वह कीडराग सब विनाश व कृतकृत्य हाकर लभ भर में जानावरण, समानावरण और अनुराग कम वा लभ कर देता है ।

१०९ तत्पश्चात् वह सब कुछ जानता और देखता है तथा माह और अंतराय रहित हो जाता है । अन्त में वह भाग्य रहित और ध्यान व द्वारा समाधि में मान और कुछ हावर-मायुष्य वा सब हात ही माह की प्राप्ति कर लेता है ।

११०. जो हम जीव को निरन्तर पीटा करता है उस अंग पर हम जीव दीर्घकालीन कर्म-रोग में यह मुक्त हो जाता है। इसका यह प्रमाणहीन, अत्यन्त सुखी और वृत्तार्थ हो जाता है।

१११. भिन्न अनादिमालीन मय दुःखों में मुक्त होने का यह मार्ग बनाया है। उसे स्वीकार कर जीव प्रमत्तः अत्यन्त सुखी हो जाते हैं।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

## तेतीसवीं अध्यायन

### कर्म-प्रकृति

१ मैं अनुपूर्वी मे ब्रह्मानुसार (पूर्वानुपूर्वी से) उन आठ कर्मों का निरूपण करूँगा जिनसे ब्रह्मा हुआ यह जीव ससार में घबटन करता है ।

२ १ आनावरण, दशनावरण, वैदनीय, माह, अम्बु, नाम, भोज और जलराय—इस प्रकार सत्त्व मे ये आठ कर्म हैं ।

४ आनावरण पाँच प्रकार का है—

- (१) शुभ आनावरण
- (२) कामिनिबोधिह आनावरण
- (३) अवधि आनावरण
- (४) धर्म आनावरण
- (५) वैदिक आनावरण ।

२ (६) मित्रा  
(७) प्रचक्षा  
(८) मित्रा मित्रा  
(९) प्रचक्षा प्रचक्षा  
(१०) स्नान तृष्टि

१ (१) चतु-दशनावरण,  
(२) अवधु दशनावरण,  
(३) अवधि-दशनावरण और  
(४) वैदिक-दशनावरण—इस प्रकार दशनावरण भी प्रकार का है ।

४ वैदनीय दो प्रकार का है—ज्ञान वैदनीय और ज्ञात वैदनीय । इन दोनों के अनेक प्रकार हैं ।

८ मोहनीय भी दो प्रकार का है—द्वान मोहनीय और चारित्र मोहनीय ।  
द्वान मोहनीय तीन प्रकार का और चारित्र मोहनीय दो प्रकार का होता है ।

२. (१) सम्पत्त,  
(२) विप्यात,  
(३) सम्पत्त विप्यात—ये द्वान मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ हैं ।

२२८

१०. चारित्र्य मोहनीय दो प्रकार का है—कपाय मोहनीय और नोकपाय मोहनीय ।

११. कपाय मोहनीय कर्म के सोलह भेद होते हैं और नोकपाय मोहनीय कर्म के सात या नौ भेद होते हैं ।

१२. आयु कर्म चार प्रकार का है—

- (१) नैरयिक आयु
- (२) तिर्यग् आयु
- (३) मनुष्य आयु
- (४) देव आयु ।

१३. नाम-कर्म दो प्रकार का है—धुम-नाम और अधुम-नाम । इन दोनों के अनेक प्रकार हैं ।

१४. गोत्र कर्म दो प्रकार का है—उच्च गोत्र और नीच गोत्र । इन दोनों के आठ-आठ प्रकार हैं ।

१५. अन्तराय कर्म संक्षेप में पाँच प्रकार का है—

- (१) दानान्तराय
- (२) लाभान्तराय
- (३) भोगान्तराय
- (४) उपभोगान्तराय
- (५) वीर्यान्तराय ।

१६. कर्मों की ये ज्ञानावरण आदि आठ मूल प्रकृतियाँ और श्रुत-ज्ञानावरण आदि सत्तावन उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं । इसके आगे तू उनके प्रदेशाग्र (परमाणुओं के परिमाण) क्षेत्र, काल और भाव का मुन ।

१५. एक समय में ग्राह्य सब कर्मों का-प्रदेशाग्र अनन्त- है । वह अभव्य जीवों से अनन्त गुण अधिक और सिद्ध आत्माओं के अनन्तवें भाग जितना होता है ।

१८. सब जीवों के मग्न-योग्य पुद्गल छहो दिशाओं—आत्मा से संलग्न सभी आकाश प्रदेशों—में स्थित हैं । वे सब कर्म-परमाणु बन्ध-काल में एक आत्मा के सभी प्रदेशों के साथ सम्बद्ध होते हैं ।

१६-२०. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटि-कोटि सागर और जघन्य स्थिति अन्तर्महत्तं की होती है ।

२१ मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटि-कोटि सागर और बषण्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ।

२२ आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर और बषण्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ।

२३ नाम और योज कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटि-कोटि सागर और बषण्य स्थिति आठ मुहूर्त की होती है ।

२४ कर्मों के अनुभाव सिद्ध आत्माओं के अन्तर्में भाग वित्तन होते हैं । सब अनुभागों का प्रवेश-परिमाण सब जीवों के अधिक होता है ।

२५-: इन कर्मों के अनुभागों को जान कर बुद्धिमान् अपना निरोध और क्षय करने का यत्न करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## चौतीसवां अध्यायन

### लेइया-अध्ययन

१. मैं अनुपूर्वी मे समानुमार (पूर्वानुपूर्वी मे) लेइया-अध्ययन का निगण कलेंगा । छहों कर्म-लेइयाओं के अनुभायों को तुम मृजमे मुनों ।
२. लेइयाओं के नाम, वर्ण, रम, रज्ज, रज्ज, रज्ज, रज्ज, रज्ज, रज्ज, स्थिति, गति और आयुष्य को तुम मृज मे मुनों ।
३. यथाक्रम मे लेइयाओं के ये नाम हैं—(१) कृष्ण (२) नील (३) कर्पूर (४) तेजस (५) पद्म और (६) शुक्ल ।
४. कृष्ण लेइया का वर्ण स्निग्ध मेघ, सहिष्-शृंग, द्रोण-नाक, गज्जन, अज्जन व नयन-तारा के समान होता है ।
५. नील लेइया का वर्ण नील अशोक, चाप पक्षी के परों व स्निग्ध शैल्य मणि के समान होता है ।
६. कपोत लेइया का वर्ण अमसी के पुष्प, तैल-रज्ज व कबूतर के ग्रीवा के समान होता है ।
७. तेजो लेइया का वर्ण हिमाल, मेघ, नवोदित सूर्य, ताँते की चाँच, प्रदीप की ली के समान होता है ।
८. पद्म लेइया का वर्ण भिन्न हरिताल, भिन्न हल्दी, स्रण और अस्रन के पुष्प के समान होता है ।
९. शुक्ल लेइया का वर्ण शम्भ, अंकमणि, कुन्द-पुष्प, दुग्ध-प्रवाह, चाँदी व मुक्ताहार के समान होता है ।
१०. कटुवे तून्वे, नीम व कटुक रोहिणी का रस जैसा कटुता होता है उससे भी अनन्त कटुता रस कृष्ण लेइया का होता है ।
११. त्रिकटु और गजपीपल का रस जैसा तीखा होता है उससे भी अनन्त गुना तीखा रस नील लेइया का होता है ।
१२. कच्चे आम और कच्चे कपित्थ का रस जैसा कसैला होता है उससे भी अनन्त गुना कसैला रस कपोत लेइया का होता है ।

॥३॥ पके हुए आम और पके हुए कपिरस का रस जैसा खट-मीठा होता है ।  
उमने भी अनन्त गुना खट-मीठा रस सेबो सेबो का होता है ।

१४ प्रधान गुण विविध आनवा, मनु और मीरेक मदिरा का रस जैसा  
अम्ल—जैसे ही होता है उससे भी अनन्त गुना अम्ल रस बहुत सेबो का  
होता है ।

१५ खमूर, दाख, छीर, मांड और धक्कर का रस जैसा भीटा होता है  
उमने भी अनन्त गुना भीटा रस कुछ सेबो का होता है ।

१६ गाय, रवान और खप के मूत्र बसेबरे की गन्ध जैसी होती है उससे भी  
अनन्त गुना गन्ध सीमा अप्रचक्षित सेबो की होती है ।

१७ मुगबिन पुणों और पीसे जा रहे मुगबिन पदार्थों की जैसी गन्ध  
हानी है उमने भी अनन्त गुना गन्ध सीमा अप्रचक्षित सेबो की होती है ।

१८ करवत, माव की बीम और धाव बुलों के पत्रों का स्वाद जैसा कर्कश  
होता है उससे भी अनन्त गुना कर्कश स्वाद सीमा अप्रचक्षित सेबो का  
होता है ।

१९ दूर, नवनील और तिरीप के पुणों का स्वाद जैसा बहुत होता है उससे  
भी अनन्त गुना बहुत स्वाद सीमा अप्रचक्षित सेबो का होता है ।

२० सेबो की तीन भी, सताईय, हवासी या दो ही सताईय प्रकार  
के परिणाम होते हैं ।

२१ जो मनुष्य बाँकी आनवा में प्रवृत्त है, तीव्र भूखियों से अगुप्त है, बहुत  
बाय में अचिरण है, तीव्र आरम्भ (सावध-व्यापार) में संलग्न है, गुड है, बिना  
विचारे बाय करने जाता है—

२२ लौकिक और पारलौकिक दोषों की संका से रहित मन शांत है,  
शुद्ध है, अवितेज्य है—जो इन सभी से मुक्त है वह कृष्ण सेबो में परिणत  
होता है ।

२३ जो मनुष्य ईर्ष्यान्तु है, कर्ताही है, अजासवी है, भावाधी है, निर्लज्ज  
है, गुड है, प्रवेप करने जाता है, पठ है, प्रयत्न है, रस-साधु है, मुल का  
शेपक है—

२४ आरम्भ से अचिरण है, गुड है, बिना विचारे बाय करने जाता है—  
या इन सभी से मुक्त है वह नील सेबो में परिणत होता है ।

२५ जो मनुष्य बचन से बक है, निशाना आचरण बक है, कपट करता है,  
मरलता में रहित है अपने दावा को छुताता है, अहं का आचरण करता है,  
मिथ्या-दृष्टि है, अनार्य है—





३९. सुकन सेस्या की अवस्थ स्थिति अतर्भुक्त और उत्कृष्ट स्थिति मनुष्य अधिक सेतीस सागर की होती है ।

४०. सेस्याओं की यह स्थिति आधक्य (अधुष्य भाव) से बड़ी गई है । अब आगे धृष्य भाव में चारों भूमियों में सेस्याओं की स्थिति का वर्णन करेगा ।

४१. नारकीय जीवा के नापोल सेस्या की अवस्थ स्थिति दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति पत्सोपम के असम्प्राप्त के भाग अधिक सेतीस सागर की होती है ।

४२. नील सेस्या की अवस्थ स्थिति पत्सोपम के असम्प्राप्त के भाग अधिक सेतीस सागर और उत्कृष्ट स्थिति पत्सोपम के असम्प्राप्त के भाग अधिक दश सागर की होती है ।

४३. कृष्ण सेस्या की अवस्थ स्थिति पत्सोपम के असम्प्राप्त के भाग अधिक दश सागर और उत्कृष्ट स्थिति सेतीस सागर की होती है ।

४४. यह निर्दिष्ट जीवों के सेस्याओं की स्थिति का वर्णन दिया गया है । इनके आगे त्रिष्य, मनुष्य और देवों की सेस्याओं की स्थिति का वर्णन करेगा ।

४५. त्रिष्य और मनुष्य में जितनी सेस्याएँ होती हैं, उनमें से सुकन सेस्या की छोट कर सेक नव सेस्याओं की अवस्थ और उत्कृष्ट स्थिति अतर्भुक्त की होती है ।

४६. सुकन सेस्या की अवस्थ स्थिति अतर्भुक्त और उत्कृष्ट स्थिति तीसरा स्थूल एव करोड़ वर्ष की होती है ।

४७. यह त्रिष्य और मनुष्य के सेस्याओं की स्थिति का वर्णन दिया गया है । इसके आगे देवों की सेस्याओं की स्थिति का वर्णन करेगा ।

४८. भवर्षादि और मानव्यन्तर देवों के कृष्ण सेस्या की अवस्थ स्थिति दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति पत्सोपम के असम्प्राप्त के भाग की होती है ।

४९. कृष्ण सेस्या की जो उत्कृष्ट स्थिति होती है उसमें एक समय मिलाने पर वह नील सेस्या की अवस्थ स्थिति होती है और उसकी उत्कृष्ट स्थिति पत्सोपम के असम्प्राप्त के भाग जितनी है ।

५०. नील सेस्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है उसमें एक समय मिलाने पर वह करोड़ सेस्या की अवस्थ स्थिति होती है और उसकी उत्कृष्ट स्थिति पत्सोपम के असम्प्राप्त के भाग जितनी है ।

५१. हमने आगे भवनापनि, वापनापनि, उपापनि और समापिप देवा के तेजो लेश्या की स्थिति का निम्नलिखित कहेगा ।
५२. तेजो लेश्या की अधःस्थ स्थिति एक पञ्चोदम और उत्प्लष्ट स्थिति पत्योपम के अगम्यमानवें भाग अधिक हो माग्य की होती है ।
५३. तेजो लेश्या की अधःस्थ स्थिति दश दशरूप रूप और उत्प्लष्ट स्थिति पत्योपम के अगम्यमानवें भाग अधिक हो माग्य की होती है ।
५४. जो तेजो लेश्या की उत्प्लष्ट स्थिति है उसमें एक समय मिथ्याने पर वह पद्म लेश्या की अधःस्थ स्थिति होती है और उसकी उत्प्लष्ट स्थिति अतर्मुहत्त अधिक तेजीय माग्य की होती है ।
५५. जो पद्म लेश्या की उत्प्लष्ट स्थिति है उसमें एक समय मिथ्याने पर वह द्युषल लेश्या की अधःस्थ स्थिति होती है और उसकी उत्प्लष्ट स्थिति अतर्मुहत्त अधिक तेजीय माग्य की होती है ।
५६. टाण, नील और काशोन—ये तीनों अधर्मे-लेश्याएँ हैं । इन तीनों में जीव दुर्गति को प्राप्त होता है ।
५७. तेजम्, पद्म और द्युषल—ये तीनों धर्म-लेश्याएँ हैं । इन तीनों में जीव सुगति को प्राप्त होता है ।
५८. पहले समय में परिणत सभी लेश्याओं में कोई भी जीव हमारे भय में उत्पन्न नहीं होता ।
५९. अन्तिम समय में परिणत सभी लेश्याओं में कोई भी जीव हमारे भय में उत्पन्न नहीं होता ।
६०. लेश्याओं की परिणति होने पर जब अतर्मुहत्त होता जाता है और अतर्मुहत्त शेष रहता है, उस समय जीव परलोक में जाता है ।
६१. इसलिए इन लेश्याओं के अनुभाषों को जान कर मूनि अवश्यस्त लेश्याओं का वर्जन करे और प्रशस्त लेश्याओं को स्वीकार करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## पंतीसवाँ अध्याय

### अनगार-मार्ग-गति

१. सुप्त एवाय भग्न होकर बुद्धों (तीर्थचर) के द्वारा उपनिष्ट भाग का भुक्त से भुक्तो विषय आचरण करना हुआ विष्णु पुनः का भुक्त कर देना है ।
२. जो मुनि गृह-वास को छाड़ कर व्रतव्रत का भयीकार कर चुका है वह उस भ्रातृभिर्यो को जाने, जिनमें मनुष्य निष्ठ होता है ।
३. भयभी मुनि हिमा, झूठ, चारी, अज्ञान-भय-भय, इच्छा-भय (समाप्त भयु की भावना) और मोक्ष—इन सब का परित्याग करे ।
४. जो स्वान मनोहर विषयों से आशीष मान्य और भुक्त से भुक्तानि, विवाह सहित, स्वयं चलावे से भुक्त हा वैन स्वान की भय से भी भयिभाषा न करे ।
५. काम राग की वृद्धि जाने वीने अराध्य में इन्द्रियों पर नियन्त्रण पाना विष्णु के लिए दुष्कर होता है ।
६. इसलिए एकाकी निष्ठ सममान में, भुक्तगृह न, स्वयं के भुक्त से भयभा परवृत्त एकांत स्वान में रहने की इच्छा करे ।
७. परम भयत निष्ठ भ्रातृक भ्रातृभाष और विषयों के उपद्रव से रहित स्वान में रहने का उत्कृष्ट करे ।
८. भिन्नु न स्वयं कर बनाए और न दूसरों से बनवाए । यह निर्माण के समारम्भ में जीवों—भक्त, स्वाधर, भुक्त और आधर—का भय देना जाता है । इसलिए संयत भिन्नु गृह-भयारम्भ का परित्याग करे ।
९. भक्त-भय के वृद्धि और वृद्धि के वृद्धि होनी है, अतः भ्राता और भुक्तों की दया के लिए भिन्नु न बनाए और न वृद्धि ।
१०. भक्त और भय के वृद्धि में भक्त और भय के भावित तथा भुक्तों और भय के भावित जीवों का हुनन होता है इसलिए भिन्नु न बनाए ।
११. भक्ति फलने वाली, भय और से चार वाली और बहुत जीवा का विनाश करने वाली होती है । उनके समान दुनय कोई भय नहीं होता इसलिए भिन्नु उसे न बनाए ।

१३. त्रय और विषय में विरत, मिट्टी के ट्रेने और मोने को समान समझने वाला भिक्षु मोने और चाँदी की मन में भी दृष्टा न करे ।

१४. ब्रह्म को गरीबने वाला प्रसिद्ध होता है और केचने वाला धनिर । त्रय और विषय करने में बर्नेन करने वाला भिक्षु पैसा नहीं होगा—उत्तम भिक्षु नहीं होता ।

१५. भिक्षा-वृत्ति वाले भिक्षु का भिक्षा हो करने चाहिए, त्रय-विषय नहीं । त्रय-विषय महान् दोष है । भिक्षा-वृत्ति मुक्त को देने वाली है ।

१६. मुनि मृत के अनुसार अनिश्चित और सामुदायिक उच्छेद की तृपणा करे । यह लाभ और अलाभ में मनुष्य रहकर पित्र-पान (भिक्षा) का नर्पा करे ।

१७. अलानुप, रम में अगृह, जीभ का दमन करने वाला और अमृच्छित महामुनि म्याद के लिए न जाए, त्रिगु जीवन-निर्वाह के लिए जाए ।

१८. मुनि अर्चना, रचना, वन्दना, पूजा, श्रद्धा और नगर को मन में भी अभिप्राय न करे ।

१९. मुनि धुन-ध्यान ध्याए । अनिश्चय और अकिञ्चन रहे । यह जीवन-भर देहाध्याम में मुक्त होकर विहरण करे ।

२०. समर्थ मुनि माल-धर्म के उपस्थित होने पर आहार या परिग्रह कर मनुष्य शरीर को छोड़ कर दुःखों में प्रसुप्त हो जाता है ।

२१. निर्मम, निरहङ्कार, चोतराग और आश्रयों में रहित मुनि आदित्य केवलज्ञान को प्राप्त कर परिनिर्मुक्त हो जाता है—मर्त्या आत्मस्थ हो जाना है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

## छत्तीसवाँ अध्याय

### जीवाजीव-विभक्ति

१. मृग एकाग्र मन होकर मेरे पाँच जीव और अजीव का वह विभाग सुना जिसे जान कर अथवा समय में मध्यक प्रयत्न करता है ।

२. यह छोटा जीव और अजीवमय है । जहाँ अजीव का देण आकाश ही है उसे अजीव कहा गया है ।

३. जीव और अजीव की प्रकृति प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ—इन चार दृष्टियों में होती है ।

४. अजीव दो प्रकार का है—कृषी और अकृषी । अकृषी के चार और कृषी के चार प्रकार हैं ।

५. वर्मास्तिनाय और उनका देव तथा प्रदेव, अथवास्तिनाय और उनका देव तथा प्रदेव—

६. आकाशास्तिकाय और उसका देव तथा प्रदेव तथा एव अथवामय (वायु)—ये हम मनु अकृषी अजीव के भाग हैं ।

७. वर्मास्तिनाय और अथवास्तिनाय और अथवास्तिनाय हैं । आकाश और अकाश—दोनों में व्याप्त है । समय समय-द्वेय (मनुष्य-सा) न ही होता है ।

८. अथवास्तिनाय और आकाश—य तीन प्रथम अथवास्तिनाय और आकाशिक भाग हैं ।

९. प्रवाह की अथवास्तिनाय अथवास्तिनाय है । एक-एक क्षण की अथवास्तिनाय न वह भाग-भाग है ।

१०. कृषी पुरुष के चार भाग हैं—१-अथवास्तिनाय २-अथवास्तिनाय ३-अथवास्तिनाय ४-अथवास्तिनाय ।

११. अनेक परमाणुओं के अथवास्तिनाय अथवास्तिनाय है और उनका पृथक् भाग न परमाणु अथवास्तिनाय है । अथवास्तिनाय अथवास्तिनाय (अथवास्तिनाय) अथवास्तिनाय के एव देव

और समूचे लोक में भाज्य है—अमर्य विकल्प युक्त है । अब उनका चतुर्विध काल-विभाग करेंगे ।

१२. वे (स्कन्ध और परमाणु) प्रवाह की अपेक्षा में अनादि-अनन्त है तथा स्थिति (एक क्षेत्र में रहने) की अपेक्षा से मादि-सान्त है ।

१३. रूपी अजीवों (पुद्गलों) की स्थिति जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः असंख्यात काल की होती है ।

१४. उनको अंतर<sup>१</sup> जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः अनन्त काल का होता है ।

१५. वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और मस्यान की अपेक्षा से उनका परिणमन पाँच प्रकार का होता है ।

१६. वर्ण की अपेक्षा से उनकी परिणति पाँच प्रकार की होती है—१-कृष्ण २-नील, ३-रक्त, ४-पीत और ५-शुक्ल ।

१७. गन्ध की अपेक्षा से उनकी परिणति दो प्रकार की होती है—१-सुगन्ध और २-दुर्गन्ध ।

१८. रस की अपेक्षा से उनकी परिणति पाँच प्रकार की होती है—१-तिक्त २-कटु ३-कसैला ४-खट्टा और ५-मधुर ।

१९-२०. स्पर्श की अपेक्षा से उनकी परिणति आठ प्रकार की होती है—१-कर्कश, २-मृदु, ३-गुरु, ४-लघु, ५-शीत, ६-उष्ण, ७-स्निग्ध और ८-रुक्ष ।

२१. मस्यान की अपेक्षा से उनकी परिणति पाँच प्रकार की होती है—१-परिमण्डल, २-वृत्त, ३-त्रिकोण, ४-चतुष्क और ५-आयत ।

२२. जो पुद्गल वर्ण से कृष्ण है वह गंध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्प युक्त) होता है ।

२३. जो पुद्गल वर्ण में नील है वह गंध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य होता है ।

२४. जो पुद्गल वर्ण से रक्त है वह गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान में भाज्य होता है ।

२५. जो पुद्गल वर्ण से पीत है वह गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य होता है ।

---

१. अंतर—स्थान से स्थलित होकर वापिस आने तक का काल ।

२६ जो पुत्र्यन्त वर्ण में होते हैं वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वृज, क्षत्र और मत्स्य में भाग्य प्राप्त है ।

२७ आ पुद्गल मय म भुवच चाना ह बह चय, रम, रम और सन्धान मे भाग्य होता है।

२६ वा पुद्गल तब से दुःख वाला है वह भय, रग, स्पर्श और गन्धान में बाध्य होता है ।

२६. जो बुद्धिमान एक के विषय में कह चुका, वच, स्वयं और सम्मान के भाव्य हाथा हैं।

**॥** वा पुष्पम एतत् कुरुष्व है वह बाउ, म्ब, स्पष्ट और मन्वान से भाग्य हात्रा है ।

३१ ओ पुद्गल रत्न में वसैला है वह बल बध, रत्न और मन्थान से भाज्य होता है ।

३२ ओ पुनः एतन्मतेन संपन्नः सन् बह्विधं भोजनं, वस्त्रं, स्नानं च मत्स्यान् मे  
प्राप्य हर्षितः ।

१३ ओ पुद्गल रज मे मयुर है वह बल, बल, स्वयं और मन्थान से भाग्य ज्ञाता है

१४ जो बुद्धिमान शासक ने कब्र खोई वह कब्र, वन रस और मर्यादा में भाग्य हुआ है।

३५. आ सुदृढ स्वप्न मे कुरु हे मह कम कम, रत्न मीर मंथान मे  
भास्व होगा है ।

१६. जा पुरुषमहात्मा ते मुद ह्यहं वन गच्छ, एव गीर तस्मान् मे भाग्यं प्राप्ताम् ।

१३ जी दुस्मान क्या है जगुई वह बल लम्ब, रक्त और बरमान के मांस  
होता है।

१८ जो दुरुगम स्वर्ग में सीध है वह वन, वन्य वन और गम्भीर से जाय  
होता है ।

१८. जो पुरुष स्वयं से उत्पन्न है वह ब्रह्म, वाक्, रस और अस्मात् न भाव्य  
मोक्ष है ।

४०. जहाँ पुरुषान् शरीरों में स्थित है वह वन, मण्ड, रस और मायात्मक प्रकृतियों में है।



४१. जो पुद्गल स्थान से रुदा है वह वर्ण, गन्ध, रस और मंस्थान से भाज्य होता है।

४२. जो पुद्गल मंस्थान में परिमण्डल है वह वर्ण, गन्ध, रस और स्थान से भाज्य होता है।

४३. जो पुद्गल मंस्थान में वृत्त है वह वर्ण, गन्ध, रस और स्थान से भाज्य होता है।

४४. जो पुद्गल मंस्थान में त्रिकोण है वह वर्ण, गन्ध, रस और स्थान से भाज्य होता है।

४५. जो पुद्गल मंस्थान में चतुष्कोण है वह वर्ण, गन्ध, रस और स्थान से भाज्य होता है।

४६. जो पुद्गल मंस्थान में आगत है वह वर्ण, गन्ध, रस और स्थान से भाज्य होता है।

४७. यह अजीव-विभाग तथेष्ट में कहा गया है। अब अनुक्रम में जीव-विभाग का निरूपण करेगा।

४८. जीव दो प्रकार के होते हैं—मंगाने और मिद। मिद अनेक प्रकार के होते हैं। मैं उनका निरूपण करता हूँ तुम मुझ में सुनो।

४९. स्त्रीलिंग मिद, पुल्लिंग मिद, नपुंसकलिंग मिद, व्यङ्गि मिद अन्यलिंग मिद, गृहलिंग मिद आदि उनके अनेक प्रकार हैं।

५०. उत्कृष्ट, जघन्य और मध्यम अवगाहना<sup>१</sup> में ऊँचे-नीचे और तिरछे लोक में तथा समुद्र व अन्य जनाश्रयों में भी जीव मिद होते हैं।

५१. दश नपुंसक, बीस स्त्रियाँ और एक सौ आठ पुरुष एक ही क्षण में मिद हो सकते हैं।

५२. गृहस्थ वेद्य में चार, वन्यजीविक वेद्य में दस और निर्ग्रन्थ वेद्य में एक सौ आठ जीव एक साथ मिद हो सकते हैं।

५३. उत्कृष्ट अवगाहना में दो, जघन्य अवगाहना में चार मध्यम अवगाहना में एक सौ आठ जीव एक ही क्षण में मिद हो सकते हैं।

५४. ऊँचे लोक में चार, समुद्र में दो, अन्य जनाश्रयों में तीन, नीचे लोक में बीस और तिरछे लोक में एक सौ आठ जीव एक ही क्षण में मिद हो सकते हैं।

२२ मिट्ट बड़ी स्वतः है ? वही स्थित होने है ? वहाँ मरीर को छाड़त है ? वहाँ जाकर मिट्ट हुआ है ।

२३ मिट्ट अलोक में रहते हैं । लोह के अलोक में स्थित होते हैं । मनुष्य लोह मृत्परीर को छाड़त है और लोह के अलोक में जाकर मिट्ट होते हैं ।

२४ मर्त्यमिड विमान से चारह यात्रन ऊपर ईशू शम्भारा नामक पृथ्वी है । वह छायाकार में अवस्थित है ।

२५ उसकी मम्बाई और चौड़ाई पैंतालीस लाख योजन की है । उसकी परिधि उन (मम्बाई-चौड़ाई) न सिधुमी है ।

२६ मध्य भाग में उसकी माटाई जाठ योजन की है । वह कमग पनली हाठी-हाणी अनिम भाग में अपनी के वर से भी अधिक कमली हो जाती है ।

२७ वह स्वैत-स्वयमवी, स्वभाव से निर्मल और उत्तम (मीधे) छायाकार वाली है—ऐसा जिनकर ने कहा है ।

२८ वह शान, मय-रान और कुन्द पुन के ममान स्वैत, निर्मल और शुद्ध है । उस सीमा नाम की ईशू शम्भारा पृथ्वी से एक योजन ऊपर लोह का अलोक है ।

२९ उस यात्रन के ऊपरले काष्ठ के छठे भाग में छिड़ों की अवस्थिति हाठी है ।

३० मनुष्य क्षत्रिजमात्री मय प्रत्य से उच्युप और मयधेष्ठ (मिडि) का प्राण होने वाले वहाँ लोह के अलोक में स्थित होते हैं ।

३१ अनिम मय न जिनकी जिनकी ऊँचाई होनी है, उनसे एक निहाई कम उसकी अवगाहना हाठी है ।

३२ एक एक की अनेका न मिड लानि प्रत्य और कुन्द की अवगाहना न अनानि प्रत्य है ।

३३ वे मिड-जीव अमय, लव दूसर के गटे हुए और शान-प्रान मय उच्युप हात है । उन्हें वंसा मुन प्राण होना है जिनके लव मयार में बाई उमा नही है ।

३४ शान और प्रान के मनुष्य उच्युप लव-मनुष्य न निर्मल और मयधेष्ठ मय (मिडि) की प्राण हात नाम लव मिड लोह के एक देश में अवस्थित है ।

६८. समगरी जीव दो प्रकार के हैं—जग और स्यावर । स्यावर तीन प्रकार के हैं—

६९. (१) पृथ्वी (२) जल और (३) गन्धर्वगति । ये तीन स्यावर के मूल भेद हैं । इनके उत्तर भेद मुझ में गुना ।

७०. पृथ्वी-काय के जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बाह्य । इन दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त—ये दो-दो भेद होने हैं ।

७१. बाह्य पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों के दो भेद हैं—मृदु और कठोर । मृदु के सात भेद हैं :—

७२. (१) कृष्ण (२) नील (३) रक्त (४) पीत (५) श्वेत (६) पादु (भूरी मिट्टी) और (७) पतक । कठोर पृथ्वी के छत्तीस प्रकार हैं :—

७३. (१) शुद्ध पृथ्वी (२) मर्करा (३) वायु (४) द्रव्य (५) जिन्ना (६) लयण (७) नीली मिट्टी (८) गोहा (९) रोगा (१०) ताँबा (११) सीसा (१२) चाँदी (१३) सोना (१४) वज्र—

७४. (१५) हरिताल (१६) टिगुल (१७) मैनगिल (१८) मस्यक (१९) अजन (२०) प्रवाल (२१) अन्न पटन (२२) अन्न चानूर । बाह्य पृथ्वीकाय में भणियों के भेद, जैसे—

७५. (२३) गोमदक (२४) रुचक (२५) धक (२६) स्मटिक और लोहिताल (२७) मरकत एवं मगारगल्ल (२८) भुजमोनक (२९) इन्द्र-नील—

७६. (३०) चन्दन, गेरु, एवं हृमगन (३१) पुलक (३२) गोगन्धिक (३३) चन्द्रप्रम (३४) वैदूर्य (३५) जलकान्त और (३६) सूर्यकान्त ।

७७. कठोर पृथ्वी के ये छत्तीस प्रकार होते हैं । सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव एक ही प्रकार के होने हैं । उनमें नानात्व नहीं होता ।<sup>१</sup>

७८. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव समूचे लोक में और बाह्य पृथ्वीकायिक जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । इनके चतुर्विध फल-विभाग का निरूपण करेंगे ।

१. ७१-७७ इन श्लोकों में मृदु पृथ्वी के सात और कठिन पृथ्वी के छत्तीस प्रकार बतलाए गये हैं । विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तराध्ययन—सटिप्पण-संस्करण ।

७६. प्रवाह की जगह से वे जगह-अनन्त और स्थिति की जगह से सावि-मान्य हैं ।

७७. उनकी आयु-स्थिति जगन्मय अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टता बाईस हजार वर्ष की है ।

७८. उनकी काय स्थिति जगन्मय अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टता अक्षय्यता काय की है ।

७९. उनका अन्तर-जगन्मय अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टता अनन्त काय का है ।

८०. वय, यज्ञ, रस, स्पष्ट और सत्त्वान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

८१. अप्पादिक जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बाह्य । इन दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त—ये दो-दो भेद होते हैं ।

८२. बाह्य पर्याप्त जगन्मय जीवों के पाँच भेद होते हैं ।

(१) शुद्धोदक (२) जीव (३) हरतनु (४) बुद्धात्मा और (५) हिम ।

८३. सूक्ष्म अप्पादिक जीव एक ही प्रकार के होते हैं । उनमें नाशान नहीं होता । वे समूचे लोक में तथा बाह्य अप्पादिक जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं ।

८४. प्रवाह की जगह से वे जगह-अनन्त और स्थिति की जगह से सावि-मान्य हैं ।

८५. उनकी आयु-स्थिति जगन्मय अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टता साठ हजार वर्ष की है ।

८६. उनकी काय स्थिति जगन्मय अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टता अक्षय्यता काय की है ।

८७. उनका अन्तर-जगन्मय अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टता अनन्त काय का है ।

८८. वय, यज्ञ, रस, स्पष्ट और सत्त्वान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

१ कायस्थिति—निरन्तर उसी एक काय में जन्म लेते रहने की काल-समर्थाता ।

२ अन्तर—स्वभाव को छोड़कर पुनः उसी काय में उत्पन्न होने तक का काल ।

३ हरतनु—भूमि की गहर कर निकलता हुआ जल-विन्दु ।

६२. वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बादर। इन दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त—ये दो-दो भेद होते हैं।

६३. बादर पर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवों के दो भेद होते हैं—साधारण-शरीर<sup>१</sup> और प्रत्येक-शरीर<sup>२</sup>।

६४. प्रत्येक-शरीर वनस्पतिकायिक जीवों के अनेक प्रकार हैं—वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली और तृण।

६५. लता-वलय (नारियल आदि), पर्वज (ईख आदि), कुहण (कुकुरमुत्ता आदि), जलरुह (कमल आदि), ओषधि-तृण (अनाज) और हरित-काय—ये सब प्रत्येक-शरीर हैं।

६६. साधारण-शरीर वनस्पतिकायिक जीवों के अनेक प्रकार हैं—आम्र, मूली, अदरक—

६७. हिरलीकन्द, मिरिलीकन्द, मिस्मिरिलीकन्द, जावईकन्द, केद-कंदली-कन्द, प्याज, लहसुन, कन्दली, कुस्तुम्बक—

६८. लोही, स्निह, कुहक, कृष्ण, वज्रकन्द, मूरणकन्द—

६९. अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, मुनुंढी और हरित्रा आदि। ये सब साधारण-शरीर हैं।

१००. सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव एक ही प्रकार के होते हैं। उनमें नानात्व नहीं होता। वे समूचे लोक में तथा बादर वनस्पतिकायिक जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं।

१०१. प्रवाह की अपेक्षा में वे अनादि-अनन्त और स्थिति की अपेक्षा में शादि-सान्त हैं।

१०२. उनकी आयु-न्यति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः दस हजार वर्ष की है।

१०३. उनकी काय-न्यति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः अनन्त काल की है।

१०४. उनका अन्तर जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्टतः असंख्यात काल का है।

१. साधारण-शरीर—जिसके एक शरीर में अनेक जीव होते हैं, वह।

२. प्रत्येक-शरीर—जिसके एक-एक शरीर में एक-एक जीव होता है, वह।

१०१. वध, वध, रत्न, रत्न और मत्तान की दृष्टि में उनके द्वारा ये होते हैं।

१०२. यह तीन प्रकार के स्थावर जीवों का त्रिगुण वर्णन है। अब तीन प्रकार के जन जीवों का वर्णन निरूपण करेंगे।

१०३. तेजस्वाय, वायुकाय और उष्ण प्रकाश—ये तीन भेद वर्णनाय के हैं। अब इनके वर्णनों को मुद्रित मुद्रा।

१०४. तेजस्वायिक जीवों के दो प्रकार हैं—सूक्ष्म और वादर। उन दोनों के वर्णन और वर्णन—ये दो-दो भेद होते हैं।

१०५. वादर वर्णन तेजस्वायिक जीवों के अनेक भेद हैं—अंगार, सुन्दर, अग्नि, अग्नि, अग्नि—

१०६. अग्नि, विद्युत् आदि। सूक्ष्म तेजस्वायिक जीव एक ही प्रकार के होते हैं। उनमें नामात्त नहीं होता।

१०७. सूक्ष्म तेजस्वायिक जीव नवसे कोटि हैं और वादर तेजस्वायिक जीव काय के दस भाग में विभक्त हैं। अब मैं उनके वर्णन का विभाग का निरूपण करूँगा।

१०८. प्रकाश की वर्णना से वे अनादि-अनन्त और स्थिति की अवस्था से नादि-नाद हैं।

१०९. उनकी वायु-स्थिति अनादि-अनन्त और उत्पत्ति तीन विभाग की है।

११०. उनकी काय स्थिति अनादि-अनन्त और उत्पत्ति अनन्त नाम का है।

१११. उनका अन्तर अनादि-अनन्त और उत्पत्ति अनन्त नाम का है।

११२. वध, वध, रत्न, रत्न और मत्तान की दृष्टि से उनके द्वारा ये हैं।

११३. वायुकायिक जीवों के दो प्रकार हैं—सूक्ष्म और वादर। उन दोनों के वर्णन और वर्णन—ये दो-दो भेद होते हैं।

११४. वादर वर्णन वायुकायिक जीवों के दो भेद होते हैं—

(१) उत्पत्ति (२) मरणात्ति (३) वर्णनात्ति (४) वर्णनात्ति और (५) वर्णनात्ति।

११५. उनके वर्णन काय आदि और भी अनेक प्रकार हैं। सूक्ष्म वायुकायिक जीव एक ही प्रकार के होते हैं। उनमें नामात्त नहीं होता।

१२०. मृदम-वायुकायिक जीव समूचे लोक में और बादर वायुकायिक जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं। अब मैं उनके चतुर्विध धान-विभाग का निरूपण करूँगा।

१२१. प्रवाह की अपेक्षा में वे अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा में सादि-सान्त हैं।

१२२. उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः अतर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः तीन हजार वर्ष की है।

१२३. उनकी काय-स्थिति जघन्यतः अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः असंख्य काल की है।

१२४. उनका अंतर जघन्यतः अतर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः अनन्त काल का है।

१२५. वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की दृष्टि में उनके हजारों भेद होते हैं।

१२६. उदार प्रस-वायिक जीव चार प्रकार के होते हैं—(१) द्वीन्द्रिय (२) त्रीन्द्रिय (३) चतुरिन्द्रिय और (४) पंचेन्द्रिय।

१२७. द्वीन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। उनके भेद तुम मुझसे सुनो।

१२८. कृमि, सीमंगल, अलग, मातृवाहक, वामीमुग, मीप, घोंग, घग्गक—

१२९. पल्लोय, अणुल्लक, कोठी, जीक, जालर, चंदनिया—

१३०. आदि अनेक प्रकार के द्वीन्द्रिय जीव हैं। वे लोक के एक भाग में ही प्राप्त होते हैं, समूचे लोक में नहीं।

१३१. प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं।

१३२. उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः अतर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः चार हजार वर्ष की है।

१३३. उनकी काय-स्थिति जघन्यतः अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः संख्यात काल की है।

१३४. उनका अंतर जघन्यतः अतर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः अनन्त काल का है।

१३५. वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं।

१३६. त्रीन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। उनके भेद तुम मुझसे सुनो।

१३७ कुशु, चींटी, छटमछ, मकड़ी, दीमक, मुवाहारक, बाघाहारक (पुन), मानुष, वनाहारक—

१३८ वर्षाणास्त्रि विजक, मिन्दुव, जपुष विजक, सतावरी, कानतवरी, इन्द्रकायिक—

१३९ ईश्वरीयक आदि अनेक प्रकार के श्रीन्द्रिय बीज हैं। वे लोक के एक भाग में ही प्राप्त होते हैं, समूचे लोक में नहीं।

१४० प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-साम्त हैं।

१४१ उनकी आयु-स्थिति अवयव अंतर्मुहूर्त और उत्पत्त्य समवाय दिना की है।

१४२ उनकी वायु-स्थिति अवयव अंतर्मुहूर्त और उत्पत्त्य मस्यात-नाल की है।

१४३ उनका अन्तरावयव अंतर्मुहूर्त और उत्पत्त्य अन्तकाल का है।

१४४ वन, पर्व, रज, साय और संस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं।

१४५ चतुर्दिन्द्रिय बीज दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। उनके भेद तुम मुझ में सुनो।

१४६ अग्निता, पोषिता, यन्त्रिता, मल्लर, प्रवर, कीट, पनग, विष्टुण, कुशुण—

१४७ शृंगिरीटी, कुशुद, मन्दावर्त, विष्णु, सोल, वृमरीटक, विरली, अग्निवेषक—

१४८ अक्षिप्त, मागव, अक्षिरीटक, विविध-मन्त्र, विन्मन्त्र, जीह्विन्त्रिया, जलकारी, भीषक, तन्त्रावक—

१४९ आदि अनेक प्रकार के चतुर्दिन्द्रिय बीज हैं। वे लोक के एक भाग में प्राप्त होते हैं, समूचे लोक में नहीं।

१५० प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि-साम्त होते हैं।

१५१ उनकी आयु स्थिति अवयव अंतर्मुहूर्त और उत्पत्त्य उह मान की है।

१५२ उनकी वायु स्थिति अवयव अंतर्मुहूर्त और उत्पत्त्य मस्यात नाल की है।



१५३. उनका अवतर जघन्यतः अतमूर्तत्वं और उत्कृष्टतः अनन्त काल का है ।

१५४. वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और मस्यान की दृष्टि में उनके हजारों भेद होते हैं ।

१५५. पचेन्द्रिय जीव चार प्रकार के हैं—(१)नैरयिक (२) तिर्यग्न्य (३) मनुष्य और (४) देव ।

१५६. नैरयिक जीव सात प्रकार के हैं । वे सात पृथ्वियों में उत्पन्न होते हैं । वे सात पृथ्वियाँ ये हैं—(१) रत्नाभा, (२) मकराभा (३) बान्नुकाभा—

१५७. (४) पंकाभा (५) घूमाभा (६) तमः और (७) तमस्त्रभः—इन सात पृथ्वियों में उत्पन्न होने के कारण ही नैरयिक सात प्रकार के कहे गए हैं ।

१५८. वे लोक के एक भाग में हैं । अब मैं उनके चतुर्दिग काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१५९. प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादिमान्त हैं ।

१६०. पहली पृथ्वी में नैरयिकों की आयु-स्थिति जघन्यतः दस हजार वर्ष और उत्कृष्टतः एक सागरोपम की है ।

१६१. दूसरी पृथ्वी में नैरयिकों की आयु-स्थिति जघन्यतः एक सागरोपम और उत्कृष्टतः तीन सागरोपम की है ।

१६२. तीसरी पृथ्वी में नैरयिकों की आयु-स्थिति जघन्यतः तीन सागरोपम और उत्कृष्टतः सात सागरोपम की है ।

१६३. चौथी पृथ्वी में नैरयिकों की आयु-स्थिति जघन्यतः सात सागरोपम और उत्कृष्टतः दस सागरोपम की है ।

१६४. पाँचवी पृथ्वी में नैरयिकों की आयु-स्थिति जघन्यतः दस सागरोपम और उत्कृष्टतः सतरह सागरोपम की है ।

१६५. छठी पृथ्वी में नैरयिकों की आयु-स्थिति जघन्यतः सतरह सागरोपम और उत्कृष्टतः बाईस सागरोपम की है ।

१६६. सातवी पृथ्वी में नैरयिकों की आयु-स्थिति जघन्यतः बाईस सागरोपम और उत्कृष्टतः तैतीस सागरोपम की है ।

१६७. नैरयिक जीवों की जो आयु-स्थिति है, वही उनकी जघन्यतः या उत्कृष्टतः काय-स्थिति है ।

१६८ उनका अंतर अथवा अन्तर्गत और उत्पन्न अन्तर्गत वा है ।

१६९ बर्ष, मघ, रत, रत्न और सत्त्वान की दृष्टि से उनके द्वारा भेद होते हैं ।

१७० अथर्विद्य विवेक्य जीव दो प्रकार के हैं—अभ्युत्थित विवेक्य और अन्तर्गत विवेक्य ।

१७१ वे दोनों ही अन्तर्गत, स्वयम्भूत और उत्पन्न के भेद से तीन-तीन प्रकार के हैं । उनके भेद तुम मुझसे सुनो ।

१७२ अन्तर्गत जीव पाँच प्रकार के हैं—(१) मत्स्य (२) कच्छ (३) घाह (४) मकर और (५) लुम्बिक ।

१७३ वे लोक के एक भाग में ही होते हैं, अमुके लोक में नहीं । अब मैं उनके अनुविद्य वाच-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१७४ प्रवाह की अपेक्षा से वे अन्तर्गत-अन्तर्गत और अन्तर्गत की अपेक्षा से सावि-सावि हैं ।

१७५ उनकी आधु-स्वति अथवा अन्तर्गत और उत्पन्न एक करोड़ रूप की है ।

१७६ उनकी वाच विधि अथवा अन्तर्गत और उत्पन्न (दो में भी) रूप की है ।

१७७ उनका अंतर अथवा अन्तर्गत और उत्पन्न अन्तर्गत अन्तर्गत वा है ।

१७८ बर्ष, मघ, रत, रत्न और सत्त्वान की दृष्टि से उनके द्वारा भेद होते हैं ।

१७९ स्वयम्भूत जीव दो प्रकार के हैं—अभ्युत्थित और अन्तर्गत । अभ्युत्थित और अन्तर्गत के हैं । वे तुम मुझसे सुनो ।

१८० (१) एक धुर—बोटे आदि (२) दो धुर—बैल आदि, (३) गंडीय—हाथी आदि, (४) अन्तर्गत—मिह आदि ।

१८१ परित्त के दो प्रकार हैं—(१) अनुपरित्त—हाथी के अन्तर्गत अन्तर्गत आदि । (२) उत्तरपरित्त—वेद के अन्तर्गत अन्तर्गत आदि । ये दोनों अन्तर्गत प्रकार के हैं ।

१८२ वे लोक के एक भाग में होते हैं, अमुके लोक में नहीं । अब मैं उनके अनुविद्य वाच विभाग का निरूपण करूँगा ।

१८२. प्रवाह की अपेक्षा में वे अनादि-अनन्त और स्थिति की अपेक्षा में सादि-मान्त है ।

१८४. स्थलचर जीवों की आयु-स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः तीन पत्योपम की है ।

१८५. जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः पृथक्त्व करोट् पूर्व अधिक तीन पत्योपम की है—

१८६. यह स्थलचर जीवों की काय-स्थिति है । उनका अंतर जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः अनन्त-काल का है ।

१८७. वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और मस्थान की दृष्टि में उनके हजारों भेद होते हैं ।

१८८. स्थलचर जीव चार प्रकार के हैं—(१) घर्म पक्षी (२) रोम पक्षी (३) समुद्रग पक्षी और (४) वितत पक्षी ।

१८९. वे लोक के एक भाग में होते हैं—समूचे लोक में नहीं । अब मैं उनके चतुर्विध काल-विभाग का निरूपण करूँगा ।

१९०. प्रवाह की अपेक्षा में वे अनादि-अनन्त और स्थिति की अपेक्षा में सादि-मान्त हैं ।

१९१. उनकी आयु-स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः पत्योपम के असंख्यातवै भाग की है ।

१९२. जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः पृथक्त्व करोट् पूर्व अधिक पत्योपम का असंख्यातवै भाग—

१९३. यह स्थलचर जीवों की काय-स्थिति है । उनका अंतर जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः अनन्त काल का है ।

१९४. वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और मस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

१९५. मनुष्य दो प्रकार के हैं—सम्पूच्छिम और गर्भ-उत्पन्न ।

१९६. गर्भ-उत्पन्न मनुष्य तीन प्रकार के हैं—(१) अकर्म-भूमिक (२) कर्म-भूमिक और (३) अन्तर्दोषिक ।

१९७. कर्म-भूमिक मनुष्यों के पन्द्रह, अकर्म-भूमिक के तीस तथा अन्तर्दोषिक मनुष्यों के अठारह भेद होते हैं ।

१९८. सम्पूच्छिम मनुष्यों के भी उतने ही भेद हैं जितने गर्भ-उत्पन्न मनुष्यों के हैं । वे लोक के एक भाग में ही होते हैं ।

१६८. प्रवाह की अपन्ना से वे आग्नि-अनग्न और स्थिति की अपन्ना से मादि-मान्त हैं।

२०० उनकी आधु-स्थिति अथग्यत अन्तर्बहुत और उत्कृष्टत तीन पन्थापन की है।

२०१ अथग्यत अन्तर्बहुत और उत्कृष्टत पृथक्त्व कराइ प्रथम अधिक तीन पन्थापन—

२०२ यह मनुष्यों की काय स्थिति है। उनका अन्तर अथग्यत अन्तर्बहुत और उत्कृष्टत अनग्न काय का है।

२०३ वय, वय, रस, लस और मन्वान की दृष्टि से उनके हृदयों में वे होते हैं।

२०४ वे चार प्रकार के हैं (१) भवनवासी (२) अन्तर (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक।

१०५. भवनवासी वे चार प्रकार के हैं। अन्तर आठ प्रकार के हैं। ज्योतिष्क पाँच प्रकार के हैं। वैमानिक दो प्रकार के हैं।

२०६ (१) असुर कुमार (२) नाग कुमार (३) सुष कुमार (४) विष्णु कुमार (५) अग्नि कुमार (६) दीप कुमार (७) उदधि कुमार (८) शिव कुमार (९) वायु कुमार और (१०) स्थिति कुमार—ये भवनवासी देवों के चार प्रकार हैं।

२०७ (१) विद्या (२) वृत्त (३) वस्तु (४) ध्यान (५) धिक्तर (६) विपुल (७) महोरण और (८) मन्त्र—ये अन्तर देवों के आठ नाम हैं।

२०८ (१) वय (२) वय (३) वय (४) वय और (५) वय—ये पाँच वेद ज्योतिष्क देवों के हैं। वे विद्या-विद्यारी—वेद की प्रवृत्ति करने वाले विद्यारण करने वाले हैं।

२०९. वैमानिक देवों के दो प्रकार हैं—कल्पावय और कल्पावय।

२१० कल्पावय आठ प्रकार के हैं—(१) शोध (२) शोध (३) शोध (४) शोध (५) शोध (६) शोध (७) शोध (८) शोध—

२११ (७) शोध (८) शोध (९) शोध (१०) शोध (११) शोध और (१२) शोध।

२१२ कल्पावय देवों के दो प्रकार हैं—वैद्यक और अनुतर। वैद्यकों के निम्नोक्त भी प्रकार हैं।

२१३ (१) वय-अवस्तन (२) वय-अवस्तन (३) वय-अवस्तन (४) वय-अवस्तन—

२१४. (५) मध्य-मध्यम (६) मध्य-उपरितन (७) उपरि-अधस्तन  
(८) उपरि- मध्यम—

२१५. और (९) उपरि-उपरितन—ये त्रैवेद्यक देव हैं । (१) विजय  
(२) वैजयन्त (३) जयन्त (४) अपराजित—

२१६. और (५) सर्वार्थमिदृक्—ये अनुत्तर देवों के पाँच प्रकार हैं । इस  
प्रकार वैमानिक देवों के अनेक प्रकार हैं ।

२१७. वे सब लोक के एक भाग में रहते हैं । अब मैं उनके चतुर्विध काल-  
विभाग का निरूपण करूँगा ।

२१८. प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से  
सादिमान्त हैं ।

२१९. भवनवासी देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः दस हजार वर्ष और  
उत्कृष्टतः किञ्चित् अधिक एक सागरोपम है ।

२२०. व्यन्तर देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः दस हजार वर्ष और उत्कृष्टतः  
एक पत्योपम की है ।

२२१. ज्योतिष्क देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः पत्योपम के आठवें भाग  
और उत्कृष्टतः एक लाख वर्ष अधिक एक पत्योपम की है ।

२२२. सौधर्म देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः एक पत्योपम और उत्कृष्टतः  
दो सागरोपम की है ।

२२३. ईशान देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः किञ्चित् अधिक एक पत्योपम  
और उत्कृष्टतः किञ्चित् अधिक दो सागरोपम की है ।

२२४. सनत्कुमार देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः दो सागरोपम और  
उत्कृष्टतः सात सागरोपम की है ।

२२५. माहेन्द्रकुमार देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः किञ्चित् दो सागरोपम  
और उत्कृष्टतः किञ्चित् अधिक सात सागरोपम की है ।

२२६. ब्रह्मलोक देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः सात सागरोपम और  
उत्कृष्टतः दस सागरोपम की है ।

२२७. सान्तक देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः दस सागरोपम और उत्कृष्टतः  
चौदह सागरोपम की है ।

२२८. महाशुक्र देवों की आयु-स्थिति जघन्यतः चौदह सागरोपम और  
उत्कृष्टतः सतरह सागरोपम की है ।

२७६. महेश्वर देवों की आयु-स्थिति अथवा सतरह मासरोपम और उत्कृष्टत अठारह मासरोपम की है ।

२३०. आनन्द देवों की आयु-स्थिति अथवा सतरह सागरावम और उत्कृष्टत सन्नीप सागरावम की है ।

२३१. आनन्द देवों की आयु-स्थिति अथवा सन्नीपसागरोपम और उत्कृष्टत तीस सागरोपम की है ।

२३२. आनन्द देवों की आयु-स्थिति अथवा तीस सागरावम और उत्कृष्टत दशवीस सागरोपम की है ।

२३३. अथवा देवों की आयु-स्थिति अथवा दशवीस मासरोपम और उत्कृष्टत बाईस मासरोपम की है ।

२३४. प्रथम ईश्वर देवों की आयु-स्थिति अथवा बाईस मासरोपम और उत्कृष्टत तेईस सागरावम की है ।

२३५. द्वितीय ईश्वर देवों की आयु-स्थिति अथवा तेईस सागरोपम और उत्कृष्टत चौबीस मासरोपम की है ।

२३६. तृतीय ईश्वर देवों की आयु-स्थिति अथवा चौबीस सागरोपम और उत्कृष्टत पचीस सागरावम की है ।

२३७. चतुर्थ ईश्वर देवों की आयु-स्थिति अथवा पचीस मासरोपम और उत्कृष्टत छत्तीस सागरावम की है ।

२३८. पंचम ईश्वर देवों की आयु-स्थिति अथवा छत्तीस सागरोपम और उत्कृष्टत सत्ताईस मासरोपम की है ।

२३९. षष्ठ ईश्वर देवों की आयु-स्थिति अथवा सत्ताईस सागरोपम और उत्कृष्टत अठारह मासरोपम की है ।

२४०. सप्तम ईश्वर देवों की आयु-स्थिति अथवा अठारह मासरोपम और उत्कृष्टत उननीस मासरोपम की है ।

२४१. अष्टम ईश्वर देवों की आयु-स्थिति अथवा उननीस मासरोपम और उत्कृष्टत तीस मासरोपम की है ।

२४२. नवम ईश्वर देवों की आयु-स्थिति अथवा तीस मासरोपम और उत्कृष्टत दशवीस मासरोपम की है ।

२४३. विंशत्य ईश्वर अथवा अष्टाविंशत्य देवों की आयु-स्थिति अथवा दशवीस मासरोपम और उत्कृष्टत तेनीस मासरोपम की है ।

२४४. सर्वार्थसिद्धक देवों की जघन्यतः और उत्कृष्टतः आयु-स्थिति तृतीस सागरोपम की है ।

२४५. सारे ही देवों को जितनी आयु-स्थिति है उतनी ही उमकी जघन्यतः या उत्कृष्टतः काय-स्थिति है ।

२४६. उनका अन्तर जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः अनन्त काल का है ।

२४७. वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और मंस्थान की दृष्टि से उनके हजारों भेद होते हैं ।

२४८. संमारी और सिद्ध—इन दोनों प्रकार के जीवों की व्याख्या की गयी है । इसी प्रकार रूपी और अरूपी—इन दोनों प्रकार के अजीवों की व्याख्या की गई है ।

२४९. इन प्रकार जीव और अजीव के स्वरूप को सुनकर, उममें श्रद्धा उत्पन्न कर मुनि सभी नयों के द्वारा अनुमत संयम में रमण करे ।

२५०. मुनि अनेक वर्षों तक श्रामण्य का पालन कर इस श्रमिक प्रयत्न से आत्मा को कैसे—सलेखना करे ।

२५१. सलेखना उत्कृष्टतः बारह वर्ष, मध्यमतः एक वर्ष तथा जघन्यतः छह मास की होती है ।

२५२. सलेखना करने वाला मुनि चार वर्षों में विकृतियों (रसों) का परित्याग करे । दूसरे चार वर्षों में विचित्र तप (उपवास, बेला, तैला आदि) का आचरण करे ।

२५३. फिर दो वर्षों तक एकान्तर तप<sup>१</sup> करे । भोजन के दिन आचाम्ल करे । ग्यारहवें वर्ष के पहले छह महीनों तक कोई भी विकृष्ट तप (तेला, चोला आदि) न करे ।

२५४. ग्यारहवें वर्ष के गिछले छह महीनों में विकृष्ट तप करे । इस पूरे वर्ष में परिमित (पारणा के दिन) आचाम्ल करे ।

२५५. बारहवें वर्ष में मुनि कोटि-सहित (निरन्तर) आचाम्ल करे । फिर पक्ष या मास का आहार त्याग (अनशन) करे ।

२५६. कांक्षी भावना, आभियोगी भावना, कित्त्वपिकी भावना, मोही

१. एकान्तर तप—ऐसी तपस्या जिसमें एक दिन उपवास और एक दिन भोजन किया जाता है ।

भावना तथा आसुरी भावना—ये भीष भावनाएँ दुष्टता की हेतुभूत हैं। शत्रु के समय ये सम्बन्ध-दशन आदि की विराचना करती हैं।

२५७ मिथ्या-दशन में रक्त, सनिदान और हिमक दगा में जो भरते हैं उनके लिए फिर बोधि बहुत दुर्लभ होती है।

२५८ सम्बन्ध-दशन में रक्त, सनिदान और सुबल-वेद्या में प्रवर्तमान जो भीष भरते हैं उनके लिए बोधि मुश्किल है।

२५९ या मिथ्या-दर्शन में रक्त, सनिदान और कूटस्थ केन्द्र में प्रवर्तमान होते हैं उनके लिए फिर बोधि बहुत दुर्लभ होती है।

२६० जो जिन-वचन में अनुरक्त हैं तथा जिन-वचनों का भाव-मूकक आचरण करते हैं वे निमल और असन्निपट्ट होकर अल्प जन्म-मरण मान हो जाते हैं।

२६१ जो प्राणी जिन-वचना से परिचिन नहीं हैं वे बेचारे अनेक बार जन्म-मरण तथा मज्जाम मरण करते रहेंगे।

२६२ जो अनेक वास्तवों के विजाता, समाधि उत्पन्न करने वाले और गुणवाही होते हैं वे अपने इन्हीं गुणों के कारण आलोचना मुक्त के अधिकांसी होन हैं।

२६३ या वाम-कथा करता रहता है, दूसरों को हँसाने की चष्टा करता रहता है, घीस, स्वभाव, हास्य और विद्वत्ता के द्वारा दूसरों को विस्मय करता रहता है, वह कांक्षी भावना का आचरण करता है।

२६४ जो मूल, रस और समृद्धि के लिए मग्न योग और वृत्ति-वर्ग का प्रयोग करता है वह आभिमोही भावना का आचरण करता है।

२६५ जो ज्ञान, केवल ज्ञानी वर्मावाय, सब तथा साधुओं की निन्दा करता है वह मायावी वृक्ष किल्बिषिणी भावना का आचरण करता है।

२६६ जो भीष की तत्त्व बड़ाया देता रहता है और निमित्त कहता है वह अपनी इन प्रवृत्तियों के कारण आसुरी भावना का आचरण करता है।

२६७ जो शस्त्र के द्वारा, विष मल्ल के द्वारा, अग्नि में प्रविष्ट होकर या पानी में डूब कर आत्म-हत्या करता है और या मर्यादा से अधिक उपकरण रखता है वह जन्म मरण की परम्परा को गृह्य करता है—भाही भावना का आचरण करता है।

२६८ इस प्रकार जन्म औरों द्वारा सम्मल उत्पन्न उत्तरात्मयनों का उपवेत्ता, उपधान्ताप्रदा, ज्ञात-अधीन मनवान् महावीर ने प्रादुष्करण किया।

—ऐसा मैं कहता हूँ





## परिशिष्ट

(इकतीसवें अध्याय में आए हुए कुछ-एक विषयों का विवरण)

श्लोक ॥

### १ आहार-सम्बन्धी सात अभिप्राह—

- (१) संवृष्टा—खाद्य वस्तु से लिप्त हाथ या पात्र से देने पर निज्ञा लेना ।
- (२) मर्मवृष्टा—भाजन-आद्य से अलिप्त हाथ या पात्र से देने पर निज्ञा लेना ।
- (३) जडुता—बपने प्रवीजन के लिए रींभने के पात्र में दूसरे पात्र में निवासता हुआ बाहार लेना ।
- (४) अस्पृशिता—अस्पृश्य वाली अर्वाणु चना, चिट्ठा आदि कभी बस्तु लेना ।
- (५) अवपृहीता—नाभ के लिए वाली में परोक्षा हुआ बाहार लेना ।
- (६) प्रपृहीता—वरत्तने के लिए बट्टी या चम्मच से निवासता हुआ बाहार लेना ।
- (७) उज्जितवर्मा—जो भाजन अमनोज्ञ होने के कारण परित्याग करने योग्य है, उसे लेना ।

### २ स्थान-सम्बन्धी सात अभिप्राह—

- (१) मैं अमुक प्रकार के स्थान में रहूँगा, दूसरे में नहीं ।
- (२) मैं दूसरे सामुग्र्यों के लिए स्थान की याचना करूँगा । दूसरा के द्वारा याचित स्थान में मैं रहूँगा ।
- (३) मैं दूसरों के लिए स्थान की याचना नहीं करूँगा, किन्तु दूसरों के द्वारा याचित स्थान में मैं रहूँगा ।
- (४) मैं दूसरों के लिए स्थान की याचना नहीं करूँगा, परन्तु दूसरों के द्वारा याचित स्थान में रहूँगा ।
- (५) मैं अपने लिए स्थान की याचना नहीं करूँगा, दूसरों के लिए नहीं ।
- (६) निमज्ज में स्थान बहुत करूँगा, उसी के वहाँ बरतक आदि का संस्कारक प्राप्त हो या मूना अथवा केकड़ू या अधिक भासन में बैठ-बैठे राम-दिनार्योना ।

- (७) जिनका मैं स्थान ग्रहण करूँगा, उमी के यहाँ ही महज बिछे हुए मिनापट्ट या काठपट्ट प्राप्त हो तो मुगा अन्यथा ऊकटू या नैपथिक आसन में बैठे-बैठे रान बिताऊँगा ।

### ३. भय के सात स्थान—

- (१) अह्लोक-भय—मजातीय में भय, जैसे—मनुष्य को मनुष्य से भय, देव को देव में भय ।
- (२) परलोक-भय—विजातीय में भय, जैसे—मनुष्य को देव, तिर्यक्य आदि का भय ।
- (३) आदान-भय—धन आदि पदार्थों के अपहरण करने वाले में होने वाला भय ।
- (४) अपमान-भय—किसी वास्तु निमित्त के बिना ही उत्पन्न होने वाला भय, अपने ही विकल्पों में होने वाला भय ।
- (५) वेदना-भय—पीड़ा आदि से उत्पन्न भय ।
- (६) मरण-भय—मृत्यु का भय ।
- (७) अह्लोक-भय—अकीर्ति का भय ।

श्लोक १० :

### ४. आठ मद-स्थान—

- |             |                |
|-------------|----------------|
| (१) जाति-मद | (५) तपो-मद     |
| (२) कुल-मद  | (६) धृत-मद     |
| (३) बल-मद   | (७) लाल-मद     |
| (४) रूप-मद  | (८) ऐश्वर्य-मद |

### ५. ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियाँ—

देखें—उत्तराध्ययन का सोलहवाँ अध्याय ।

### ६. दस प्रकार का भिक्षु-धर्म—

- |                      |                 |
|----------------------|-----------------|
| (१) क्षान्ति         | (६) सत्य        |
| (२) मुक्ति (अनामकित) | (७) संयम        |
| (३) मार्दव           | (८) तप          |
| (४) आज्ञव            | (९) त्याग       |
| (५) लाघव             | (१०) ब्रह्मचर्य |

## श्लोक ११

## ७ उपासक की ग्यारह प्रतिमाएँ—

- |                                |                            |
|--------------------------------|----------------------------|
| (१) शयन-आसन                    | स्नान न करने वाला, दिन     |
| (२) वृत्त-जन आसन               | न जीवन करने वाला और        |
| (३) वृत्त-सामाधिक              | बच्य न बाधन वाला ।         |
| (४) पीपधारवास निरस्त           | (७) यथित-परिष्ठापी         |
| (५) दिन में ब्रह्मचारी और      | (८) आरम्भ-परिष्ठापी        |
| रात्रि में परिष्ठाप            | (९) प्रेक्ष्य-परिष्ठापी    |
| करने वाला ।                    | (१०) उद्दिष्ट मन परिष्ठापी |
| (६) दिन और रात में ब्रह्मचारी, | (११) धमन भूत               |

## ८ भिक्षु की बारह प्रतिमाएँ—

- |                                 |                                   |
|---------------------------------|-----------------------------------|
| (१) एक भासिकी भिक्षु प्रतिमा    | रात की भिक्षु प्रतिमा             |
| (२) दो भासिकी भिक्षु प्रतिमा    | (६) दूसरी रात दिन रात की          |
| (३) तीन भासिकी भिक्षु-प्रतिमा   | भिक्षु प्रतिमा                    |
| (४) चार भासिकी भिक्षु-प्रतिमा   | (१०) तीसरी रात दिन रात की         |
| (५) पाँच भासिकी भिक्षु प्रतिमा  | भिक्षु प्रतिमा                    |
| (६) छह भासिकी भिक्षु-प्रतिमा    | (११) एक बहाराच की भिक्षु          |
| (७) सात भासिकी भिक्षु-प्रतिमा । | प्रतिमा                           |
| (८) अष्टादशान् प्रथम सात दिन    | (१२) एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा। |

## श्लोक १२

## ९. तेरह क्रियाएँ—

- (१) मय-दण्ड—शरीर, स्वयं वय वाग्नि प्रयोजन व की जाने वाली हिता ।
- (२) मनर्ष-दण्ड—विना प्रयोजन और-शिव के विना की जाने वाली हिता ।
- (३) हिमा-दण्ड—हमने मुझे पाया वा मारता है, मारेगा—इन प्रतिपाद ने हिता करना ।

- (४) अकस्मात्-दण्ड—एक के वध की प्रवृत्ति करते हुए अकस्मात् दूसरे की हिंसा कर डालना ।
- (५) दृष्टि-विपर्यास-दण्ड—मति-भ्रम में होने वाली हिंसा अथवा मित्र आदि को अमित्र बुद्धि से मारना ।
- (६) मृपावाद-प्रत्यय—स्व, पर या उभय के लिए मृपावाद से होने वाली हिंसा ।
- (७) अदत्तादान-प्रत्यय—स्व, पर या उभय के लिए अदत्तादान से होने वाली हिंसा ।
- (८) आध्यात्मिक—बाह्य निमित्त के बिना, मन में स्वतः उत्पन्न होने वाली हिंसा ।
- (९) मान-प्रत्यय—जाति आदि के मंद से होने वाली हिंसा ।
- (१०) मित्र-द्वेष-प्रत्यय—माता-पिता या दास-दासी के अल्प अपराध में भी बड़ा दण्ड देने से होने वाली हिंसा ।
- (११) माया-प्रत्यय—माया से होने वाली हिंसा ।
- (१२) लोभ-प्रत्यय—लोभ से होने वाली हिंसा ।
- (१३) गेर्या-पथिक—केवल योग (मन, वचन और काया की प्रवृत्ति) से होने वाला कर्म-बन्धन ।

## १० पन्द्रह प्रकार के परमाधार्मिक देव—

- |             |               |
|-------------|---------------|
| (१) अव      | (६) असिपत्र   |
| (२) अवधि    | (१०) धनु      |
| (३) श्यामं  | (११) कुम्भ    |
| (४) शवल     | (१२) बालुक    |
| (५) रुद्र   | (१३) वैतरणि   |
| (६) उपरुद्र | (१४) खरस्वर   |
| (७) काल     | (१५) महाघोष । |
| (८) महाकाल  |               |

## स्तोत्र १३

## ११ सप्तह प्रकार का असयम—

- |                              |                              |
|------------------------------|------------------------------|
| (१) पुरुषोत्तम-असयम          | उपेक्षा और असयम में          |
| (२) कर्णाय-असयम              | व्यापार ।                    |
| (३) सैत्रम्नाय असयम          | (१३) अष्टाक्षर असयम उच्चार   |
| (४) बापुनाय-असयम             | आदि का अविधि में             |
| (५) वनस्पतिनाय असयम          | परिष्ठापन करने में होने      |
| (६) द्वीद्वय-असयम            | वाका असयम ।                  |
| (७) भीद्वय असयम              | (१४) अप्रमात्रन असयम—याम     |
| (८) चतुरभिद्वय-असयम          | आदि का अप्रमात्रन या         |
| (९) पंचभिद्वय असयम           | अविधि में प्रमात्रन करने में |
| (१०) अजीवनाय-असयम            | होने का असयम ।               |
| (११) प्रेक्षा-असयम—अप्रतिमयम | (१५) यम असयम                 |
| या अविधि प्रतिमयम में        | (१६) वचन असयम                |
| होने का असयम ।               | (१७) वाक्य-असयम              |
| (१२) उपेक्षा असयम—असयम की    |                              |

## स्तोत्र १४

## १२ अठारह प्रकार का सहस्रयम—

ये—उत्तराध्वजन का गणितानुसंकरण ।

## १३ ताता यम कथा के अतीस अध्यायम—

- |                |                |                   |
|----------------|----------------|-------------------|
| (१) उल्लिख नाम | (८) मन्त्री    | (१४) ताता         |
| (२) मध्या      | (९) माकन्त्री  | (१५) —मी-यम       |
| (३) मष्ट       | (१०) चन्द्रिका | (१६) अररकटा       |
| (४) कृम        | (११) वाचद्वय   | (१७) जादीला       |
| (५) मलक        | (१२) उन्व-आन   | (१८) मुगमा        |
| (६) तुग्व      | (१३) मद्रुह    | (१९) पुष्टकीक नाम |
| (७) रोहणी      |                |                   |

## १४ बीस असमाधि-स्थान—

- (१) धम धम करने का स्थान ।
- (२) प्रमात्रन किए बिना का स्थान ।
- (३) अविधि में प्रमात्रन कर का स्थान ।

- (४) प्रमाण में अधिक दाय्या, आमन आदि रगना ।
- (५) रालिक नाघुओं का परामव - निरस्कार करना, उनके मामने मर्यादा-रहित बोलना ।
- (६) स्यविरों का उपधान करना ।
- (७) प्राणियों का उपधान करना ।
- (८) प्रति क्षण क्रोध करना ।
- (९) अत्यन्त जोर करना ।
- (१०) पगेल में अवर्णचाद बोलना ।
- (११) बार-बार निश्चयकारी भाषा बोलना ।
- (१२) अनुत्पन्न नए-नए कलहों को उत्पन्न करना ।
- (१३) उपशमित और क्षणिक पुगने कलहों की उदीरणा करना ।
- (१४) सरजस्क हाथ-पैरों का ध्यापार करना ।
- (१५) अकाल में स्वाध्याय करना ।
- (१६) कलह करना ।
- (१७) रात्रि में जोर में बोलना ।
- (१८) जज्ञा (गटपट) करना ।
- (१९) सूर्योदय में सूर्यास्त तक बार-बार भोजन करना ।
- (२०) एषणा-नमिति रहित होना ।

श्लोक १५ :

१५. इक्कीस प्रकार के शवल दोष—

- (१) हस्त-कर्म करना ।
- (२) मैथुन का प्रतिमेवन करना ।
- (३) रात्रि-भोजन करना ।
- (४) आधा-कर्म आहार करना ।
- (५) सागार्गिक (गव्यातर) पिड ग्याना ।
- (६) औद्देशिक, क्रीत या मामने लाकर दिया जाने वाला भोजन करना ।
- (७) बार-बार प्रत्याख्यान कर खाना ।
- (८) एक महीने के अन्दर एक गच्छ से दूसरे गच्छ में जाना ।
- (९) एक महीने के अंदर तीन उदक-लेप लगाना ।
- (१०) एक महीने में तीन बार भाया का सेवन करना ।

- (११) राज विष्ट का भोजन करना ।  
 (१२) जान बूझ कर हिंसा करना ।  
 (१३) जान-बूझ कर कृपावाद बोलना ।  
 (१४) जान बूझ कर बदमाशान सेना ।  
 (१५) जान-बूझ कर अजर रहित (मर्त्ति) पृथ्वी पर स्थान या निपट्टा करना ।  
 (१६) जान बूझकर सचित्त पृथ्वी पर तथा मर्त्ति मित्र पर, पुण वाले वास्तु पर सम्या अपवा निपट्टा करना ।  
 (१७) जीव सहित, प्राण सहित, बीज सहित, हरित सहित, उत्तित सहित, भीषण-भूतन, कीचड़ तथा मकड़ी के जाल वाली तथा हरी प्रकार की जल भूमी पर बैठना, सोना और स्वाध्याय करना । एक का भोजन, प्रवाल का भोजन, पुष्प का भोजन, फूल का भोजन करना ।  
 (१८) जान-बूझकर भुन का भोजन, वन का भोजन, हरित का भोजन करना ।  
 (१९) एक वन में दस उदक-नेत्र लयाना ।  
 (२०) एक वन में दस बार माया-स्थान का भोजन करना ।  
 (२१) सचित्त बल से सिद्ध हार्थी से बार-बार अशन, पान, श्राद्ध और स्वाध्याय की सेवा तथा उन्हें जाना ।

स्तोत्र १६

१६ सूत्रश्रुतांग के लेखित अध्ययन—

सूत्रश्रुतांग के दो विभाग हैं—(१) प्रथम धृतस्कन्ध में १६ अध्ययन हैं और (२) दूसरे धृतस्कन्ध में ७ अध्ययन हैं—

(१) समय	(८) धर्म	(१७) पुष्टरीष
(२) ब्रह्मविष्णु	(९) समाधि	(१८) क्रिया-स्थान
(३) उपनिषद्-परिज्ञा	(१०) मार्ग	(१९) आहार-परिज्ञा
(४) स्त्री-परिज्ञा	(११) समनवरण	(२०) अग्रस्थाक्यान
(५) मरक विमर्शित	(१२) यथाउच्य	परिज्ञा
(६) महावीर-स्तुति	(१३) श्रम्य	(२१) अनपार-श्रुत
(७) कुशील-परिभाषित	(१४) यमक	(२२) माईकुमारीष
(८) धीर्ष	(१५) यात्रा	(२३) नाजरीष ।



## १७ चौबीस प्रकार के देव—

१० प्रकार के भवनगर्भ देव ।

८ प्रकार के वस्त्रगर्भ देव ।

७ प्रकार के ज्योतिष देव ।

१ गम्यमानिक देव ।

अथवा - २४ नोर्वर्तक ।

श्लोक १७ :

## १८ पचीस भावनाएँ—

भावना का अर्थ है— वर प्रिय जिममें आत्मा ता मंथारिन, दामित  
या नाविन किया जाना है । पंच महाशो तो पचीस भावनाएँ हैं ।  
(देवे—आचार्य २।१५)

## १९ छद्बीस उद्देश—

दशाश्रुतसंग्रह, कण और व्यवहार—उन तीन सूत्रों के २६ उद्देशन-  
काल है—दशाश्रुतसंग्रह के १० उद्देशन-काल ।

कण (वृहन्तर) के ६ उद्देशन-काल ।

व्यवहार-सूत्र के १० उद्देशन-काल ।

श्लोक १८ :

## २० साधु के सत्ताईस गुण—

(१) प्राणातिपात में विरमण	(१५) भाव-मत्य
(२) नृपावाद में विरमण	(१६) करण-मत्य
(३) अदत्तादान में विरमण	(१७) योग-मत्य
(४) मैथुन में विरमण	(१८) क्षमा
(५) पशुग्रह में विरमण	(१९) दिगगता
(६) श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह	(२०) मन-ममाधारणता
(७) चक्षु-इन्द्रिय-निग्रह	(२१) वचन-ममाधारणता
(८) घ्राणेन्द्रिय-निग्रह	(२२) काय-ममाधारणता
(९) रमनेन्द्रिय निग्रह	(२३) ज्ञान-सम्पन्नता
(१०) स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह	(२४) दर्शन-सम्पन्नता
(११) क्रोध-विवेक	(२५) चारित्र-सम्पन्नता
(१२) मान-विवेक	(२६) वेदना-अधिमहन
(१३) माया-विवेक	(२७) मारणान्त्रिक-अधिसहन ।
(१४) लोभ-विवेक	

## २१ अठाईस आचार-प्रकल्प—

प्रकल्प का अर्थ है 'वहु शास्त्र जिसमें धुनि के कल्प-अवधार का निरूपण हो'। आचाराय प्रथम धृतस्वयं के नौ अभ्ययन, दूसरे धृतस्वयं के सोलह अभ्ययन और निचोच सूत्र के तीन अभ्ययन [१+१६+३=२०] का आचार-प्रकल्प कहा गया है।

विशेष विवरण के लिये देखें—उत्तराध्ययन, छटिपन्न संस्करण।

श्लोक १६

## २२ उनतीस पाप-धृत-प्रसंग—

पाप के उपागमकारणमूलक या शास्त्र हैं, उन्हें 'पाप-धृत' कहते हैं। उन शास्त्रों का प्रथम अर्थात् अभ्यास पाप-धृत प्रसंग है। वे २६ हैं—

- (१) भौम—सूक्ष्म आदि के फल को बताने वाला निमित्त-शास्त्र।
- (२) उदरान—स्वामाविक उत्पत्तियों का फल बताने वाला निमित्त शास्त्र।
- (३) स्वप्न—स्वप्न के गुमायुष फल को बताने वाला निमित्त-शास्त्र।
- (४) अतरिक्त—आनाय में उत्पन्न होने वाले मनसों के युद्ध का फलफल बताने वाला निमित्त-शास्त्र।
- (५) जग—जग-सकृद्वर्णन का फल बताने वाला निमित्त-शास्त्र।
- (६) स्वर—स्वर के गुमायुष फल का निरूपण करने वाला निमित्त-शास्त्र।
- (७) व्यञ्जन—निरु, जला आदि के फल को बताने वाला निमित्त-शास्त्र।
- (८) लक्षण—अनेक प्रकार के लक्षणों का फल बताने वाला निमित्त-शास्त्र। इन लक्षणों के तीन-तीन प्रकार होते हैं—  
(१) भूत (२) वृत्ति और (३) वास्तविक। इन पर २४ पाप-धृत प्रसंग हुए। अवशेष निम्न प्रकार हैं—
- (२१) विद्यानुयाय—अर्थ और काम के उपाया के प्रतिपादक ग्रन्थ। जैसे—नाम-दक शास्त्रायन भारत आदि।
- (२६) विद्यानुयाय—रोहिणी आदि विद्या की सिद्धि बनाने वाला शास्त्र।
- (२७) मंत्रानुयाय—मंत्र-शास्त्र।
- (२८) योगानुयाय—यौग्यकरण-शास्त्र 'हर-मैत्रेय' आदि शास्त्र।
- (२९) अन्यौलिक प्रवृत्तानुयाय—अन्यौलिकों द्वारा प्रवर्तित शास्त्र।

## २३. मोह के तीस स्थान—

मोह कर्म के परमागु व्यक्ति को मूढ़ बनाते हैं। उनका मंगल व्यक्ति अपनी ही दृष्टप्रवृत्तियों से करता है। यहाँ महामोह उत्पन्न करने वाली तीस प्रवृत्तियों का उल्लेख है। वे इस प्रकार हैं—

- (१) वन-प्राणी को पानी में डुबो कर मारना।
- (२) सिर पर चर्म आदि बाँध कर मारना।
- (३) हाथ से मुग्न बंद कर सिसकते हुए प्राणी को मारना।
- (४) मण्डप आदि में मनुष्यों को घेर, यही अग्नि जला, घुएँ को फुटन में उन्हे मारना।
- (५) मंजिष्ट चित्त में सिर पर प्रहार करना, उने फोड़ टांगना।
- (६) बिद्वान्मथान कर मारना।
- (७) अनाचार को छिपाना, माया को माया में पराजित करना, की दुर्द प्रतिज्ञाओं को अस्वीकार करना।
- (८) अपने द्वारा हन हत्या आदि महादोष का हमारे पर आरोप लगाना।
- (९) यथार्थ को जानते दृष्टभी मभा के ममक्ष मित्र-भाषा बोलना— सत्याग्र की ओट में बड़े झूठ को ऽपाने का यत्न करना और कलह करते ही रहना।
- (१०) अपने अधिकारी की स्त्रियों या अर्थ-व्यवस्था को अपने अर्चान बना उसे अधिकार और भोग-मामग्री में दक्षित कर टालना, रुने शब्दों में उनकी भर्त्सना करना।
- (११) बाल-ब्रह्मचारी न होने पर भी अपने-आप को बाल-ब्रह्मचारी कहना।
- (१२) अब्रह्मचारी होते हुए भी अपने-आप को ब्रह्मचारी कहना।
- (१३) जिसके सहारे जीविका चलाए, उसी के धन को हड़पना।
- (१४) जिस ऐश्वर्यशाली व्यक्ति या जन-समूह के द्वारा ऐश्वर्य प्राप्त किया, उमी के भोगों का विच्छेद करना।
- (१५) पोषण देने वाले व्यक्ति, सेनापति और प्रशान्ता को मार डालना।
- (१६) राष्ट्र-नायक, निगम-नेता (व्यापारी-प्रमुख), सुप्रसिद्ध सेठ का मार डालना।

- (१७) जो जनता के लिए डीप और ताल हो, वैसे जन-सेवा का मार डालना ।
- (१८) समय के लिए तटार मुमुक्षु और समयों मायु का समय से विमुक्त करना ।
- (१९) अनन्त ज्ञानी का अवलंबाद मानना —सर्वज्ञता व प्रति अवलंबा उत्पन्न करना ।
- (२०) माता-भाग की निन्दा कर जनता को समझे विमुक्त करना ।
- (२१) जिन आचार्य और उपाध्याय से शिक्षा प्राप्त की है उन्हीं की निन्दा करना ।
- (२२) आचार्य और उपाध्याय की सेवा और पूजा न करना ।
- (२३) जबहुधुन होते हुए भी अपने-आप का बहुधुन कहना ।
- (२४) अत्यस्वी होते हुए भी अपने-आप का अत्यस्वी कहना ।
- (२५) ग्लान साधार्मिक की 'उमने मरी सेवा नहीं की थी' इन कल्पित भावना से सेवा न करना ।
- (२६) ज्ञान, दशन और चारित्र्य का विनाश करने वाली कथाया का बार-बार प्रयोग करना ।
- (२७) अपन भिक्ष आदि के लिए बार बार निमित्त, वगीकरण आदि का प्रयोग करना ।
- (२८) मानवीय या वारलीकिय योगी की लागा के सामने निन्दा करना और छिपे-छिपे उनका सेवन करते जाना ।
- (२९) दबताओं की कूटि, छुति, बल और नीय का मखोल करना ।
- (३०) देव-दर्शन न होने पर भी 'देव-ग्यान हा रहा है'— ऐसा कहना ।

